बी.एड. द्वितीय वर्ष

ज्ञान एवं पाठ्यचर्या

(KNOWLEDGE AND CURRICULUM)

GEDE-06

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Vandana Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Jyoti S. Parashar
   Assistant Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Vandana Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Pankaj Lata, Principal, Shri Aatm Vallabh Jain Girls P.G College, Sri Ganganagar, Rajasthan
Unit: (1)

Dr Ritika Sharma, Asst. Professor (Grade - I), Amity Institute of Education
Units: (2-4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

ज्ञान एवं पाठ्यचर्या

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 ज्ञान : परिचय एवं चर्चा– मानवीय प्रयास एवं ज्ञान, ज्ञान व सामाजिक व्यवहार में जटिल अंतःक्रिया, संवाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना व बड़े समूह से सहभागिता बनाना, ज्ञान की वृद्धि एवं पुनर्भ्यास, ज्ञान एवं कौशल में अन्तर, प्रशिक्षण एवं शिक्षण में अंतर, ज्ञान एवं सूचना, तर्क एवं विश्वास, तीन संकल्पनाओं का अध्ययन : क्रिया, खोज एवं संवाद; ज्ञान की संकल्पना का विश्लेषण– ज्ञान के प्रस्तावित प्रकार (विश्वास, सत्य एवं औचित्य), प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान, निष्पक्षता/वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता की धारणा, प्रस्तावक, प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान का पाठ्यचर्या में स्थान, अनुशासन एवं विषय की प्रकृति तथा जाँच का स्वरूप; ज्ञान का समाजशास्त्र– ज्ञान के विभिन्न प्रकारों का पाठ्यचर्या में स्थान, शिक्षा के सामाजिक आधार, ज्ञान एवं समाज की संरचना के विभिन्न स्तरों का शक्ति संवर्धन में पारस्परिक संबंध; बालक एवं ज्ञान की संरचना– ज्ञान की संरचना, बालक ज्ञान–निर्माता के रूप में, ज्ञान व समाज, ज्ञान की सीमा व कक्षा के साथी, बालक के अनुभव व ज्ञान, नवीन ज्ञान तथा विचारों को समझने में समुदाय की भूमिका, बालक के नवीन ज्ञान निर्माण में कक्षा कक्ष की भूमिका, पूर्व ज्ञान के पुनर्निर्माण तथा स्थानांतरण हेतु स्थान	**इकाई 1** : ज्ञान की प्रकृति **(पृष्ठ 3–54)**
इकाई–2 नैतिक मूल्य– मूल्य : परिभाषा, विशेषताएं और महत्व, व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता, नैतिक निर्णय लेने की आवश्यकता, समकालीन समाज में मूल्य शिक्षा का महत्व; बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता– विविध धर्मों और समाजों में विभिन्न मूल्य, स्कूलों में नैतिक शिक्षा का महत्व, सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों की उपयोगिता; नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और उद्देश्य– नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत, कोलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत, विश्लेषण, नैतिक प्रश्नों, आदर्श व्यवहार, परीक्षक परिस्थितियों आदि, द्वारा मूल्यों की शिक्षा; आधुनिक मूल्य– आधुनिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा, आधुनिक मूल्य : समता और समानता, व्यक्तिगत अवसर और सामाजिक न्याय, श्रम की गरिमा, आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद एवं लोकतांत्रिक शिक्षा, राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और शिक्षा के साथ उनका अंतर्संबंध	**इकाई 2** : नैतिक मूल्य **(पृष्ठ 55–112)**
इकाई–3 पाठ्यचर्या की अवधारणा– पाठ्यचर्या : अर्थ एवं परिभाषाएं, पाठ्यचर्या विकास की आवश्यकता और नियमन, पाठ्यचर्या निर्माण के लक्ष्य और उद्देश्य, पाठ्यचर्या का पाठ्यपुस्तकों और शिक्षाशास्त्र से संबंध, पाठ्यचर्या रचना के विविध आयाम और उनका शिक्षा के उद्देश्यों से संबंध; पाठ्यचर्या का कार्य क्षेत्र– पाठ्यचर्या के कार्य क्षेत्र के विषय में सामान्य विचार–विमर्श, पाठ्यचर्या निर्माण में सामाजिक समूहों का समावेश, पाठ्यचर्या की सांस्कृतिक अंतर्निहितता; प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की अवधारणा– प्रच्छन्न पाठ्यचर्या : विशेष रूप से लिंग और वंचित समूहों से संबंधित कुछ पाठ्यपुस्तकों की विशेषताओं और कक्षा अभ्यास के संदर्भ में, छात्रों के लचीलेपन में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की भूमिका, प्रच्छन्न पाठ्यचर्या में शिक्षक की भूमिका; पाठ्यचर्या के प्रकार– प्रकृतिवाद और पाठ्यचर्या, व्यवहारवाद और पाठ्यचर्या, आदर्शवाद और	**इकाई 3** : पाठ्यचर्या की रूपरेखा **(पृष्ठ 113–144)**

पाठ्यचर्या, यथार्थवाद और पाठ्यचर्या, समझ और दृष्टिकोण विकसित करने हेतु उदार पाठ्यचर्या, आजीविका के लिए कौशल केंद्रित व्यावसायिक पाठ्यचर्या, मिश्रित पाठ्यचर्या, विचारधारा और पाठ्यचर्या का सम्बन्ध

इकाई–4

एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य की समझ– भारतीय शिक्षा में मूर्त वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करने हेतु उत्पादक गतिविधि की परिकल्पना, वर्तमान समय में कार्य की बदलती प्रकृति, क्या शिक्षा के साथ 'कार्य' असंगत है?; उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा– शिक्षा में उत्पादक कार्य की गांधीवादी धारणा और बेसिक शिक्षा, उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा के कार्यान्वयन के अनुभव की समीक्षा, क्या हम पारंपरिक शिल्पों को आधुनिक औद्योगिक उत्पाद के साथ प्रतिस्थापित कर सकते हैं?, कार्य शिक्षा की गांधीवादी धारणा; पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा– पाठ्यचर्या में कार्य को शामिल करने के लाभ, वास्तविक जीवन की स्थितियों के संदर्भ में ज्ञान, कौशल और मूल्यों को एकीकृत करने में कार्य अनुभव की भूमिका, पाठ्यचर्या से कार्य शिक्षा के अभाव के परिणाम, क्या बच्चों को अपनी पाठ्यचर्या स्वयं निर्धारित करनी चाहिए?, पाठ्यचर्या मूल्यांकन; व्यावसायिक शिक्षा– भारत में व्यावसायिक शिक्षा, उदार शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा, सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के संयोजन की संभावना

इकाई 4 : पाठ्यचर्या और उत्पादक कार्य
(पृष्ठ 145–170)

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 ज्ञान की प्रकृति **3–54**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 ज्ञान : परिचय एवं चर्चा
1.2.1 मानवीय प्रयास एवं ज्ञान
1.2.2 ज्ञान व सामाजिक व्यवहार में जटिल अंतःक्रिया
1.2.3 संवाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना व बड़े समूह से सहभागिता बनाना
1.2.4 ज्ञान की वृद्धि एवं पुनर्भ्यास
1.2.5 ज्ञान एवं कौशल में अन्तर
1.2.6 प्रशिक्षण एवं शिक्षण में अंतर
1.2.7 ज्ञान एवं सूचना
1.2.8 तर्क एवं विश्वास
1.2.9 तीन संकल्पनाओं का अध्ययन : क्रिया, खोज एवं संवाद
1.3 ज्ञान की संकल्पना का विश्लेषण
1.3.1 ज्ञान के प्रस्तावित प्रकार (विश्वास, सत्य एवं औचित्य)
1.3.2 प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान
1.3.3 निष्पक्षता/वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता की धारणा
1.3.4 प्रस्तावक, प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान का पाठ्यचर्या में स्थान
1.3.5 अनुशासन एवं विषय की प्रकृति तथा जाँच का स्वरूप
1.4 ज्ञान का समाजशास्त्र
1.4.1 ज्ञान के विभिन्न प्रकारों का पाठ्यचर्या में स्थान
1.4.2 शिक्षा के सामाजिक आधार
1.4.3 ज्ञान एवं समाज की संरचना के विभिन्न स्तरों का शक्ति संवर्धन में पारस्परिक संबंध
1.5 बालक एवं ज्ञान की संरचना
1.5.1 ज्ञान की संरचना
1.5.2 बालक ज्ञान–निर्माता के रूप में
1.5.3 ज्ञान व समाज
1.5.4 ज्ञान की सीमा व कक्षा के साथी
1.5.5 बालक के अनुभव व ज्ञान
1.5.6 नवीन ज्ञान तथा विचारों को समझने में समुदाय की भूमिका
1.5.7 बालक के नवीन ज्ञान निर्माण में कक्षा कक्ष की भूमिका
1.5.8 पूर्व ज्ञान के पुनर्निर्माण तथा स्थानांतरण हेतु स्थान
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 नैतिक मूल्य **55–112**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य

2.2 नैतिक मूल्य
2.2.1 मूल्य : परिभाषा, विशेषताएं और महत्व
2.2.2 व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता
2.2.3 नैतिक निर्णय लेने की आवश्यकता
2.2.4 समकालीन समाज में मूल्य शिक्षा का महत्व
2.3 बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता
2.3.1 विविध धर्मों और समाजों में विभिन्न मूल्य
2.3.2 स्कूलों में नैतिक शिक्षा का महत्व
2.3.3 सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों की उपयोगिता
2.4 नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और उद्देश्य
2.4.1 नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत
2.4.2 कोलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत
2.4.3 विश्लेषण, नैतिक प्रश्नों, आदर्श व्यवहार, परीक्षक परिस्थितियों आदि, द्वारा मूल्यों की शिक्षा
2.5 आधुनिक मूल्य
2.5.1 आधुनिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा
2.5.2 आधुनिक मूल्य : समता और समानता
2.5.3 व्यक्तिगत अवसर और सामाजिक न्याय
2.5.4 श्रम की गरिमा
2.5.5 आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद एवं लोकतांत्रिक शिक्षा
2.5.6 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और शिक्षा के साथ उनका अंतर्संबंध
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 पाठ्यचर्या की रूपरेखा **113—144**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2. पाठ्यचर्या की अवधारणा
3.2.1 पाठ्यचर्या : अर्थ एवं परिभाषाएं
3.2.2 पाठ्यचर्या विकास की आवश्यकता और नियमन
3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के लक्ष्य और उदेश्य
3.2.4 पाठ्यचर्या का पाठ्यपुस्तकों और शिक्षाशास्त्र से संबंध
3.2.5 पाठ्यचर्या रचना के विविध आयाम और उनका शिक्षा के उद्देश्यों से संबंध
3.3 पाठ्यचर्या का कार्य क्षेत्र
3.3.1 पाठ्यचर्या के कार्य क्षेत्र के विषय में सामान्य विचार–विमर्श
3.3.2 पाठ्यचर्या निर्माण में सामाजिक समूहों का समावेश
3.3.3 पाठ्यचर्या की सांस्कृतिक अंतर्निहितता
3.4 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की अवधारणा
3.4.1 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या : विशेष रूप से लिंग और वंचित समूहों से संबंधित कुछ पाठ्यपुस्तकों की विशेषताओं और कक्षा अभ्यास के संदर्भ में
3.4.2 छात्रों के लचीलेपन में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की भूमिका
3.4.3 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या में शिक्षक की भूमिका
3.5 पाठ्यचर्या के प्रकार
3.5.1 प्रकृतिवाद और पाठ्यचर्या
3.5.2 व्यवहारवाद और पाठ्यचर्या
3.5.3 आदर्शवाद और पाठ्यचर्या

3.5.4 यथार्थवाद और पाठ्यचर्या
3.5.5 समझ और दृष्टिकोण विकसित करने हेतु उदार पाठ्यचर्या
3.5.6 आजीविका के लिए कौशल केंद्रित व्यावसायिक पाठ्यचर्या
3.5.7 मिश्रित पाठ्यचर्या
3.5.8 विचारधारा और पाठ्यचर्या का सम्बन्ध
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 पाठ्यचर्या और उत्पादक कार्य **145–170**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य की समझ
4.2.1 भारतीय शिक्षा में मूर्त वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करने हेतु उत्पादक गतिविधि की परिकल्पना
4.2.2 वर्तमान समय में कार्य की बदलती प्रकृति
4.2.3 क्या शिक्षा के साथ 'कार्य' असंगत है?
4.3 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा
4.3.1 शिक्षा में उत्पादक कार्य की गांधीवादी धारणा और बेसिक शिक्षा
4.3.2 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा के कार्यान्वयन के अनुभव की समीक्षा
4.3.3 क्या हम पारंपरिक शिल्पों को आधुनिक औद्योगिक उत्पाद के साथ प्रतिस्थापित कर सकते हैं?
4.3.4 कार्य शिक्षा की गांधीवादी धारणा
4.4 पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा
4.4.1 पाठ्यचर्या में कार्य को शामिल करने के लाभ
4.4.2 वास्तविक जीवन की स्थितियों के संदर्भ में ज्ञान, कौशल और मूल्यों को एकीकृत करने में कार्य अनुभव की भूमिका
4.4.3 पाठ्यचर्या से कार्य शिक्षा के अभाव के परिणाम
4.4.4 क्या बच्चों को अपनी पाठ्यचर्या स्वयं निर्धारित करनी चाहिए?
4.4.5 पाठ्यचर्या मूल्यांकन
4.5 व्यावसायिक शिक्षा
4.5.1 भारत में व्यावसायिक शिक्षा
4.5.2 उदार शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा
4.5.3 सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के संयोजन की संभावना
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'ज्ञान एवं पाठ्यचर्या' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. द्वितीय वर्ष के निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार किया गया है।

आज का युग नवीनता और रचनात्मकता का युग है। आज के समय में विवेकशील, सच्चरित्र और कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों की अधिक आवश्यकता है, जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में सक्रिय होकर अपना पूर्ण योगदान दे सकें। ज्ञान को अंग्रेजी में 'Knowledge' के रूप में जाना जाता है। ज्ञान की प्राप्ति हम अपने जीवन के अनेक प्रकार के उतार–चढ़ाव और शिक्षा के द्वारा करते हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कुछ उपयोगी अनुप्रयोग के लिए ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जबकि ज्ञान अच्छी शिक्षा, उचित परामर्श और व्यापक अध्ययन के द्वारा प्राप्त होता है अर्थात ज्ञान शिक्षा या अनुभव के माध्यम से अर्जित सूचना या जागरूकता है।

पाठ्यचर्या शिक्षा का आधार है। इसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। यह एक ऐसा साधन है जो अध्यापक और विद्यार्थी को जोड़ता है। पाठ्यचर्या के माध्यम से विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास होता है। यह विद्यार्थियों को जीवन जीने की शिक्षा प्रदान करती है। अतः पाठ्यचर्या शिक्षक और छात्र दोनों के लिए ही पथ प्रदर्शक का कार्य करती है।

इस पुस्तक में ज्ञान और पाठ्यचर्या से संबंधित सभी अहम पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में संदर्भित विषय का परिचय व उद्देश्य स्पष्ट कर दिया गया है। अध्याय के बीच–बीच में शिक्षार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के तहत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को चार इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में ज्ञान की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें ज्ञान के परिचय और विचार–विमर्श के साथ ही ज्ञान की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही ज्ञान का समाजशास्त्र, बच्चे और ज्ञान के निर्माण विषय का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

दूसरी इकाई नैतिक मूल्यों पर आधारित है। इसमें मूल्यों और नैतिकता का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। इसके साथ ही विविध सांस्कृतिक और धार्मिक तथा लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता, नैतिक शिक्षा के उद्देश्य और मनोवैज्ञानिक सिद्धांत तथा आधुनिक मूल्यों का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

तीसरी इकाई में पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विश्लेषण किया गया है। इसमें पाठ्यचर्या की अवधारणा, पाठ्यचर्या के क्षेत्र, प्रच्छन्न पाठ्यचर्या और पाठ्यचर्या के विभिन्न प्रकारों को समझाया गया है।

टिप्पणी

चौथी इकाई पाठ्यचर्या और उत्पादक कार्य पर आधारित है। इसमें एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य की समझ, उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा संबंधी गांधीवादी धारणा, पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की उपयोगिता का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में ज्ञान एवं पाठ्यचर्या से संबंधित सभी आवश्यक पहलुओं का विश्लेषण सरल एवं रोचक रूप से किया गया है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अध्येताओं का ज्ञानवर्धन कर उनके मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 ज्ञान की प्रकृति

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 ज्ञान : परिचय एवं चर्चा
1.2.1 मानवीय प्रयास एवं ज्ञान
1.2.2 ज्ञान व सामाजिक व्यवहार में जटिल अंतःक्रिया
1.2.3 संवाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना व बड़े समूह से सहभागिता बनाना
1.2.4 ज्ञान की वृद्धि एवं पुनर्भ्यास
1.2.5 ज्ञान एवं कौशल में अन्तर
1.2.6 प्रशिक्षण एवं शिक्षण में अंतर
1.2.7 ज्ञान एवं सूचना
1.2.8 तर्क एवं विश्वास
1.2.9 तीन संकल्पनाओं का अध्ययन : क्रिया, खोज एवं संवाद
1.3 ज्ञान की संकल्पना का विश्लेषण
1.3.1 ज्ञान के प्रस्तावित प्रकार (विश्वास, सत्य एवं औचित्य)
1.3.2 प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान
1.3.3 निष्पक्षता/वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता की धारणा
1.3.4 प्रस्तावक, प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान का पाठ्यचर्या में स्थान
1.3.5 अनुशासन एवं विषय की प्रकृति तथा जाँच का स्वरूप
1.4 ज्ञान का समाजशास्त्र
1.4.1 ज्ञान के विभिन्न प्रकारों का पाठ्यचर्या में स्थान
1.4.2 शिक्षा के सामाजिक आधार
1.4.3 ज्ञान एवं समाज की संरचना के विभिन्न स्तरों का शक्ति संवर्धन में पारस्परिक संबंध
1.5 बालक एवं ज्ञान की संरचना
1.5.1 ज्ञान की संरचना
1.5.2 बालक ज्ञान–निर्माता के रूप में
1.5.3 ज्ञान व समाज
1.5.4 ज्ञान की सीमा व कक्षा के साथी
1.5.5 बालक के अनुभव व ज्ञान
1.5.6 नवीन ज्ञान तथा विचारों को समझने में समुदाय की भूमिका
1.5.7 बालक के नवीन ज्ञान निर्माण में कक्षा कक्ष की भूमिका
1.5.8 पूर्व ज्ञान के पुनर्निर्माण तथा स्थानांतरण हेतु स्थान
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

.ज्ञान का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है। ज्ञान के द्वारा ही हमारी मानसिक, बौद्धिक, निरीक्षण, कल्पना व तर्क शक्ति विकसित होती है। ज्ञान मनुष्य के चरित्र और व्यावहारिक जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। यह एक प्रकार की शक्ति है। ज्ञान की शक्ति

टिप्पणी

से मनुष्य जीवन की किसी भी प्रकार की समस्या से निपटने में समर्थ हो सकता है। ज्ञान सीखने या अनुभव के द्वारा प्राप्त की गई जानकारी या विशेषता है। यह सत्य को पहचानने और स्वीकार करने की मानवीय क्षमता है। ज्ञान का कोई अंत नहीं है। जीवन में किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ज्ञान हमारा उचित मार्गदर्शन करता है। ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ मनुष्य अपने जीवन में भी प्रगति करता है।

ज्ञान मानव ह्दय में स्वतः ही उत्पन्न होता है। शिक्षा को ज्ञान प्राप्ति का एक मुख्य स्रोत माना गया है। ज्ञान पर आधारित शिक्षा व्यापक रूप से व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर शिक्षण पर जोर देती है क्योंकि यह भविष्य में सीखने के लिए एक मजबूत आधार तैयार करता है। ज्ञान आधारित शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को ऐसी जानकारी मिलती है जिससे वे ये सीखते हैं कि उस जानकारी को वास्तविक जीवन में कैसे लागू करना है। अतः ज्ञान की प्राप्ति करना व्यक्ति के विकास की दिशा में पहला कदम है।

प्रस्तुत इकाई में ज्ञान का परिचय, ज्ञान की संकल्पना का विश्लेषण, ज्ञान का समाजशास्त्र तथा बालक एवं ज्ञान की संरचना का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद बाद आप–

- ज्ञान के स्वरूप से भलीभांति परिचित हो पाएंगे;
- ज्ञान के महत्व को समझ पाएंगे;
- ज्ञान के प्रकारों के विषय में जान पाएंगे;
- शिक्षा के सामाजिक आधारों से अवगत हो पाएंगे;
- ज्ञान की संरचना का अध्ययन कर पाएंगे।

1.2 ज्ञान : परिचय एवं चर्चा

दर्शनशास्त्र की दृष्टि से ज्ञान की उत्पत्ति स्वतः होती है। यह मानव के ह्रदय में स्वयं उद्भासित होता है। जिसका स्रोत हम शिक्षा को मान सकते हैं, अर्थात् शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास है जिसमें अनुभव आदि का सहयोग लिया जा सकता है। ज्ञान शब्द सामान्यतः किसी वस्तु या विषय के संबंध में यथार्थ जानकारी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। तथापि इसका अर्थ बहुत व्यापक है। सारगर्भित रूप में : 'ज्ञान ऐसे विचारों के समूह को कहा जाता है जो कि चिंतन की विषय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप हो।'

आध्यात्मिक अर्थ में 'ज्ञान' शब्द को संपन्न, ब्रह्मज्ञानी आदि के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है।

ज्ञान के मुख्यतः निम्न पक्ष अनभुवजन्य हैं–

- ज्ञान की प्रक्रिया वैचारिक है। ये विचार ही संकल्प बनकर कार्यरूप में परिणित होते हैं।

- ज्ञान को आँकने का कोई साधन नहीं है किन्तु यथार्थ प्रकृति के अनुसार यदि विचार है तो हम उसे ज्ञान की श्रेणी में रख सकते हैं।
- ज्ञान शब्द संस्कृत भाषा की "ज्ञा" धातु से बना है जिसका अर्थ 'जानना' ;ज्व ादवूद्व है। आंग्लभाषा में इसका समानान्तर शब्द श्ज्ञदवूसमकहमश है, जिसका मुख्य अर्थ भी "जानना" है। इस प्रकार दोनों ही भाषाओं में ज्ञान शब्द का अर्थ जानकारी संग्रहण के लिए किया जाता है।
- ज्ञान की द्वितीय अवधारणा के रूप में ज्ञान एक सामान्य वस्तु है इसे प्राप्त करने के लिए हमें विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती। यह स्वतः निस्तारित होता है व दैनिक जीवन के कार्यों को संपन्न कराता है। किन्तु वास्तविक अर्थ में ज्ञान प्रकृतिप्रदत्त तत्व है जो जीव की उत्पत्ति के साथ प्रारंभ होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मन के तीन रूप बताये गये हैं– ज्ञानात्मक, भावनात्मक और क्रियात्मक। उक्त ज्ञान से उच्चतर श्रेणी का अन्य कुछ भी नहीं है।

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"

1.2.1 मानवीय प्रयास एवं ज्ञान

ज्ञान मानवीय प्रयासों के परिणामस्वरूप ही प्राप्तव्य है, ज्ञान मानव को भविष्यद्रष्टा, निर्णय लेने वाला व बाह्य जगत को समझने योग्य बनाता है। ज्ञान द्वारा जीवन के उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं किन्तु मानवीय प्रयासों के परिणामस्वरूप। मानवीय प्रयासों का संबंध जब सूचनाओं के संग्रहण से होता है तब ज्ञान जाँच का विषय रहता है। दैनिक जीवन से जिस व्यक्ति को नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं उसे उस व्यक्ति विशेष के ज्ञान में वर्धन माना जायेगा।

ज्ञान के लिए जिज्ञासा, अभ्यास और संवाद को महत्वपूर्ण माना गया है–

जिज्ञासा : व्यक्ति विशेष नित नवीन प्रयासों व प्रयत्नों द्वारा निरंतर अपने ज्ञान में वर्धन का प्रयत्न करते हैं। यही प्रयास/प्रयत्न मानवीय प्रयास (Human Endeavor) की श्रेणी में रखे जाते हैं। इस विषय में संस्कृत की उक्ति भी प्रचलित है यथा–

"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते"

अर्थात् मानव के पास प्रत्येक क्रिया का उद्देश्य तत्तद् विषयक ज्ञान है जिसमें सर्वप्रथम ज्ञान के प्रति जिज्ञासा को स्थान मिलता है क्योंकि जिस प्रकार पिपासा के अभाव में पानी पीना निरर्थक है ठीक उसी प्रकार जिज्ञासु बने बिना ज्ञान वर्धन नहीं हो सकता–

मानव जीवन में जिज्ञासा का महत्व सदैव रहा है इसीलिए प्रत्येक शिक्षार्थी या ज्ञानार्थी को ज्ञान का लाभ जिज्ञासु होने पर प्राप्त होता है।

"नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्"

अर्थात् जिज्ञासा के समान अन्य कोई साधन ज्ञान के लिए श्रेष्ठ नहीं है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन शोधों ने यह प्रभावित कर दिया है कि जिज्ञासा अधिगम के स्तर को बढ़ाती है क्योंकि जिज्ञासा अधिगमार्थ सबसे सशक्त साधन है पिछले कई दशकों में अभिप्रेरणा, अधिगम व ज्ञान के अंतर्गत जिज्ञासा की भूमिका मनोवैज्ञानिकों का रुचिकर विषय रहा। "जिज्ञासा का स्तर जितना अधिक होगा ज्ञान

टिप्पणी

का स्तर भी उतना ही उच्च होगा।" यह अधिकांशतः अध्ययनों के परिणाम रहे हैं। जिज्ञासा सदैव पूर्वज्ञान पर आधारित होती है व निश्चित करती है कि पूर्व ज्ञान की दृढ़ता किस प्रकार की है, किसी विषय से संबंधित समझ किस प्रकार की है, अंतर्दृष्टि का क्या संबंध है, प्रेरणा व पृष्ठभूमि के ज्ञान का कितना योगदान है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रस्तावना कौशल के अंतिम प्रश्न को जिज्ञासात्मक प्रश्न की श्रेणी में रखा जाता है जिससे छात्र रुचिकर तरीके से नवीन ज्ञान को ग्रहण कर सकें। किन्तु नवीन ज्ञान तब तक स्थायीत्व की ओर नहीं बढ़ता जब तक उसका अभ्यास न किया जायें अतः जिज्ञासा जिस प्रकार नवीन ज्ञान की ओर अग्रसर करती है ठीक उसी प्रकार अभ्यास उस ज्ञान से आत्म संतुष्टि प्रदान करता है।

अभ्यास : अभ्यास का अर्थ है – एक ही प्रक्रिया को बार–बार दोहराना तथा यह दोहराव की प्रक्रिया का अंत तब तक नहीं होता जब तक त्रुटियाँ न सुधर जायें। अर्थात् जिस कार्य में हम सफलता के इच्छुक होते हैं उस कार्य का उतना ही अधिक अभ्यास किया जाना चाहिये। प्रत्येक क्षेत्र के सफल व्यक्ति के पीछे एकमात्र अभ्यास का ही हाथ होता है। फिर चाहे वह संगीतज्ञ, नर्तक या अभिनेता ही क्यों न होवें।

सारांशतः बड़े–बड़े आध्यात्मिक अध्येता, योग गुरु, तपस्वी आदि ने अभ्यास के महत्त्व की भूरि–भूरि प्रशंसा की है अर्थात् ज्ञान को लालायित होना (जिज्ञासु) ज्ञान के लिए जितना आवश्यक है उतना ही अभ्यास का भी महत्त्व है।

इस संसार में असंख्य लोगों का जन्म हुआ किन्तु महान वहीं कहलाये जिन्होंने अपने क्षेत्र में निरंतर अभ्यास को स्थान दिया।

सारांशतः सांसारिक क्रिया से लेकर आध्यात्मिक क्रिया तक, शारीरिक क्रिया से लेकर मानसिक क्रिया तक अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सफलता निश्चित करता है।

रहीमदास जी ने भी कहा है–

"करत–करत अभ्यास के जड़–मत होत सुजान।

रस्सी आवत–जात से सिल पर परत निसान।।"

अर्थात् किसी भी कार्य में अनवरत अभ्यास करते–करते हम पारंगत हो सकते हैं आवश्यकता केवल उचित मार्गदर्शन की है।

संवाद : ज्ञान के लिए मार्गदर्शन का सर्वोत्तम साधन प्रान्तीय दृष्टिकोण में संवाद है। जिसे आँग्लभाषा में "Diologue" कहा जाता है। प्राचीन काल से ही संवाद ज्ञान का मुख्य स्रोत रहा है। हम सब को विदित ही है भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद है। लिखित सामग्री के अभाव में प्राचीन काल से ही लिखित सामग्री के अभाव में प्राचीन काल से ही संवाद विधि ज्ञान के हस्तांतरण की मुख्य विधि रही है। 'उपनिषद' जिन्हें "ज्ञान का पुञ्ज" कहा जाता है कि परिभाषा भी "उप + नि + सद्" है अर्थात् गुरु के समीप बैठ कर ग्रहण किया गया ज्ञान। इस प्रकार सम्यक् संवाद भारत की एक दीर्घ परम्परा रही है। ज्ञान के लिए लालायित होकर अभ्यास से जिसे पुष्ट किया गया वह ज्ञान संदेह के लेशमात्र भी उपस्थित होने पर संवाद की ओर अग्रसर होता है। क्योंकि यह संवाद ही है, जो समस्त भ्रमों व संदेहों का निवारण करता है व जीवन को ज्ञान से परिपूर्ण कर संमार्ग की ओर ले जाता है क्योंकि संवाद के अभाव में वैचारिक संकीर्णता व जड़ता अज्ञान का मूल बन जाते हैं।

टिप्पणी

अतः संवाद अधिगम या ज्ञान की सच्ची बुनियाद है। इससे मस्तिष्क की क्षमता में वृद्धि होती है। विचार, स्वरूप चर्चा व रचनात्मकता संवाद के मूल हैं।

शिक्षा या ज्ञान का मुख्य उद्देश्य होता है 'सत्य की खोज'। सत्य की खोज केवल जिज्ञासु व्यक्ति ही उचित मार्गदर्शन द्वारा कर सकता है जो मनुष्य को सदैव जानने, समझने हेतु प्रोत्साहित करती है। जिज्ञासा पूरी होनी पर प्रत्येक व्यक्ति खोज, आविष्कार एवं अवलोकन तथा सीखने के माध्यम का उपयोग करके उसे दैनिक व्यवहार में लाता है और अनुभवों को साझा करता है।

आदिम मनुष्य से आज के सुसंस्कृत मानस तक के मार्ग में ज्ञान की उन्मुक्ता या जिज्ञासा का सबसे महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। अर्थात् मानव मस्तिष्क सदैव से ही जिज्ञासु रहा है। जिज्ञासा के वंशीभूत ही हम समाचार पत्र, पुस्तकें पढ़ते हैं। इंटरनेट पर विभिन्न प्रकार के ज्ञान के प्रति उत्कंठित रहते हैं। फिर चाहे वह ज्ञान हमारे लिए भविष्य में लाभप्रद हो या न हो। मूल रूप से जिज्ञासा की प्रकृति जिज्ञासा के उद्देश्य से संबंधित है।

- अर्थात् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जिज्ञासा का सीधा संबंध संज्ञानात्मकता से है।
- अधिगमार्थ मुख्य प्रेरक के रूप जिज्ञासा कार्य करती है।
- निर्णय लेने में प्रभावशाली भूमिका निभाती है।
- स्वस्थ विकास के लिए उत्तरदायी है।
- सूचना संग्रहण/ज्ञान वर्धन के लिए उत्तरदायी व्यवहार जिज्ञासा पर निर्भर रहता है।
- प्रेरणा को प्रभावित करने वाला सर्वोत्कृष्ट कारक जिज्ञासा है।
- जिज्ञासा हमारे सत्कर्म का मूल घटक है।
- अमूर्त मानवीय विचारों की जन्मदाता जिज्ञासा ही है।
- परिवर्तन का मुख्य आधार जिज्ञासा है।

इस प्रकार जिज्ञासा की प्रकृति की चर्चा करते हुए जिज्ञासा की सीमा पर प्रकाश डाले तो ज्ञात होता है कि जिज्ञासा का स्तर सभी व्यक्तियों में, सभी विषयों में एक समान नहीं होता। यतोहि जिज्ञासा का मुख्य संबंध रुचि से है तो व्यक्ति विशेष की जिज्ञासा भी स्वयं के रुचिकर विषय में ही होगी। साथ ही जिज्ञासा को ततद् संबंधित व्यक्ति/स्रोत व समय भी प्रभावित करता है। यहाँ तक भी सृष्टि के सर्वाधिक जिज्ञासु व्यक्ति भी जिज्ञासा को प्रबंधित नहीं कर पाते। यदि जिज्ञासु की सीमा को पंक्तिबद्ध करें तो जिज्ञासा को सीमित या प्रभावित करने वाले कारक इस प्रकार होंगे–

- **रुचि**– जिज्ञासा को सर्वप्रथम सीमित करने वाले कारकों में रुचि महत्वपूर्ण है। किसी नर्तक की जिज्ञासा सदैव नये–नये नृत्य के आयामों के प्रति ही अधिक होगी उसे खेल या खेलों के प्रकार में संभवतः न के बराबर ही जिज्ञासा होगी अर्थात् अरुचिकर विषय में जिज्ञासा का उद्भव नहीं होता। अतः हम इसे रुचि या अरुचि सीमा भी कह सकते हैं।
- **उपयोगिता**– जिज्ञासा की जनक उपयोगिता भी है क्योंकि किसी भी विषय में जिज्ञासा का परिणाम सदैव लाभप्रद ही होना चाहिए। उदाहरणतः एक उत्तम

टिप्पणी

शिक्षक की जिज्ञासा सदैव उसके विषय के नवीन ज्ञान, नवीन विधियों की रहती है क्योंकि वे विधियाँ व ज्ञान शिक्षक को सर्वोत्कृष्टता की ओर अग्रसर होने में सहायक होती हैं। यदि वे विधियाँ या ज्ञान सहायक न हों तो शिक्षक की जिज्ञासा में कमी आना सामान्य होगा। अनुपयोगी तथ्य या ज्ञान कदापि ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता।

- **ऊर्जा व समय**– जिज्ञासा का सीधा संबंध ऊर्जा से है। यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से देखे तब भी स्पष्ट है कि जब हम ऊर्जावान होते हैं तब भी विभिन्न प्रश्न मस्तिष्क में उद्‌भासित होते हैं यथा– क्या है? क्यों है? कहाँ है? किस प्रकार से करना है? आदि–आदि। ऊर्जा का संबंध ततद् समय से न होकर ऊर्जावान आयु से है अर्थात् बाल्यावस्था, युवावस्था में व्यक्ति अधिक ऊर्जावान होता है, तब अधिक जिज्ञासु भी होता है। प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था की तुलना में। साथ ही समय का अपना महत्त्व है। इसी कारण विद्यालयों की समय–सारणी में कठिन विषयों को प्रातःकालीन कालांश दिये जाते हैं जिससे ऊर्जायुक्त बालक प्रातः कालीन समय का उचित प्रकार से सदुपयोग कर सकें।
- **कठिनता व भय**– जो विषय जितना अधिक कठिन होगा उस विषय में जिज्ञासा भी सीमित हो जायेगी क्योंकि उस विषय के सामान्य तथ्य भी कठिन है तो गंभीर तथ्यों के प्रति रुचि का कम होना स्वाभाविक है। साथ ही जिन तथ्यों को जानने में किसी प्रकार का भय हो तो भी व्यक्ति विशेष उस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने से संकोच करता है। यथा– 'पानी में कितने मिनट तक साँस रोकी जा सकती है या कितनी ऊँचाई से गिरने पर बचना संभव है।' इस प्रकार के खतरनाक तथ्यों से उन्हें न जानना ही उचित होगा।
- **प्रोत्साहन व आदत**– बाल्यावस्था से ही यदि बालक की जिज्ञासा को शान्त किया जाये तो बालक अधिकांशतः जिज्ञासु प्रवृत्ति के बन जाते हैं। मनोविज्ञान दृष्ट्या भी जिज्ञासु बालक ही सृजनात्मक अथवा अति प्रतिभाशाली बालकों की श्रेणी में आते हैं क्योंकि उक्त बालकों की जिज्ञासा का समय–समय पर शमन होता रहता है तो यही जिज्ञासा बालकों के व्यवहार में सदैव के लिए आ जाती है अर्थात् उनकी आदतों में सम्मिलित हो जाती है किन्तु यदि बाल्यावस्था से ही जिज्ञासा का शमन नहीं किया गया तो प्रतिभाशाली या सृजनात्मक बालकों की यह प्रतिभा नष्ट प्रायः हो जाती है अर्थात् जिज्ञासा को सीमित कर दिया जाता है।
- **ज्ञान व कौशल की कमी**– यदि बालक या व्यक्ति विशेष में तत्संबंधित ज्ञान व कौशल की कमी है तो प्रश्नों का उद्‌भवन लगभग असंभव है यथा– सामान्य बालकों को भी विषयवस्तु का जब तक अवबोध नहीं होता तब तक जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती। अर्थात् ज्ञान की कमी में जिज्ञासा या प्रश्न मस्तिष्क में नहीं आते। कौशल का संबंध भी विषय के पूर्ण ज्ञान से है। उसके अभाव में जिज्ञासा का स्तर भी सम्यक् नहीं हो सकता।
- **क्षमता, योग्यता व मनोरंजकता का अभाव**– ज्ञान की क्षमता अर्थात् Ability व योग्यता Eligibilty के अभाव में भी जिज्ञासा सीमित हो जाती है क्योंकि उच्च बुद्धि लब्धि युक्त मस्तिष्क ही ज्ञान के अतिरिक्त उच्च स्तर को वहन कर सकता है। साथ ही ज्ञान विशेष से या जिज्ञासा शमन में बालक का

यदि आनन्द की अनुभूति नहीं होती तब भी जिज्ञासा सीमित हो जाती है। ज्ञान सदैव मनोरंजकता अर्थात् हृदय–आह्लादन से युक्त होता है आनंद के अभाव में ज्ञान चमत्कृत नहीं कर पाता।

टिप्पणी

1.2.2 ज्ञान व सामाजिक व्यवहार में जटिल अंतःक्रिया

स्टर्न के अनुसार, "ज्ञान एक व्यक्ति की सामान्य क्षमता है जिसके द्वारा वह चेतनापूर्वक अपने विचारों को नवीन आवश्यकताओं के साथ समायोजित करता है। यह नई समस्याओं तथा जीवन की परिस्थितियों के प्रति सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता है।"

डीयरबर्न के अनुसार, "ज्ञान, सीखने या अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता है।"

इस प्रकार कई दृष्टिकोणों से हम ज्ञान के स्वरूप को जान चुके हैं तथापि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, "ज्ञान व्यक्ति की जन्मजात शक्ति मानसिक योग्यता तथा अभिन्न अंग है।"

अतः स्पष्ट हैं कि ज्ञान जानने की प्रक्रिया है जिसका संबंध पुस्तकीय ज्ञान से है, बौद्धिक कार्यों से है, कार्यों की गति से है। स्वयं को समाज के अनुकूल व्यवस्थित करने की योग्यता को सामाजिक ज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस ज्ञान का संबंध व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों से होता है, वह दूसरों के साथ सदाचरणयुक्त, मिलजुलकर रहने वाला तथा समाज के कार्यों में भाग लेने की योग्यता से संपन्न होता है।

अतः स्पष्ट है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसे सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिए। भारतीय समाज प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित है जहाँ सभी को समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय प्राप्त करने का अधिकार है। इस प्रकार के सामाजिक व्यवहार तथा व्यवस्था का ज्ञान की विशेष शिक्षा द्वारा संभव है, जहाँ पूर्वकालीन शिक्षा वर्ण व्यवस्था आधारित थी वहीं आज की सामाजिक व्यवस्था कर्माधारित है। भारतीय समाज के रीतिरिवाज, सांस्कृतिक परिवेश सांस्कृतिक विकास तथा सामाजिक सद्भावना का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। परिणामस्वरूप ज्ञान इसी सामाजिक–व्यवहार के इर्द–गिर्द घूमता है जो ज्ञानार्थी के लिए एक जटिल प्रक्रिया बन जाता है क्योंकि ज्ञान द्वारा समाज को सर्वोत्कृष्टता की ओर ले जायेगा, समाज का स्थायीकरण व विकास, विश्व व समाज का संयोजक शृंखला, आदर्शों को प्राप्त करना, सिद्धांतों का प्रचार करना, सांस्कृतिक बहुलवाद के विकास का अभिकरण, सांस्कृतिक पर्यावरण का संरक्षण के साथ व्यक्तित्व का समुचित विकास में अपना श्रेष्ठ योगदान देना है। अतः दोनों के मध्य होने वाली अंतःक्रिया एक जटिल प्रक्रिया परिवर्तित हो जाती है।

1.2.3 संवाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना व बड़े समूह से सहभागिता बनाना

संवाद एक मंच है जो प्रतिभागियों को समुदाय के कई भागों से सूचनाओं का आदान–प्रदान एक–दूसरे के समक्ष व्यक्तिगत कहानियों व अनुभवों को साझा करने, अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने तथा सामुदायिक चिंताओं के समाधान विकसित करने में सहयोग देता है। Dialogue शब्द का अर्थ है "The word between us" अर्थात् "हमारे बीच के शब्द" संवादों के माध्यम से ज्ञान का सर्वोत्तम उदाहरण शैक्षिक खेल है। एक उत्तम संवाद ज्ञान का भंडार रहता है जो शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति को सरल बनाते हैं

टिप्पणी

क्योंकि संवाद वह क्रिया है जिसमें शिक्षा के सभी अँग सक्रिय रूप से कार्य करते हैं। ज्ञान को स्थायीत्व के साथ ग्रहण करते हैं क्योंकि शिक्षक छात्र की आकांक्षाओं से परिचित होते हैं व छात्र शिक्षक के भावों से तथा वही छात्र समाज तक उन अमूल्य ज्ञान निधियों को पहुँचाने का कार्य भी करते हैं। संवादों के माध्यम से छात्र मुक्त–मस्तिष्क से विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं, उन विचारों की वैधता, औचित्यता की समीक्षा कर सकते हैं। सर्वप्रमुख बात की संवाद का भाग पूरी कक्षा अर्थात् सभी छात्र बनते हैं जो 100 प्रतिशत उपलब्धि को सुनिश्चित करते हैं, ज्ञान की व्यावहारिक को सुनिश्चित करते हैं। संवाद मुख्यरूप से ज्ञान ग्रहण करने की सभी प्रकार की विधियों का नेतृत्व करता है।

यह ज्ञातव्य है कि किसी भी समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षायें ही जब प्राप्तव्य होती है तब शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तित हो जाती है। विद्यालयों के पाठ्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा के यही उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं जिनमें शिक्षणगण विभिन्न विधियों का सहयोग लेते हैं अर्थात् यही वे विधियाँ जो शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर समाज की आकांक्षाओं को पूरा करती है। सारांश रूप में संवाद जैसी विधियाँ समाज में ज्ञान का प्रचार–प्रसार करने का कार्य करती है।

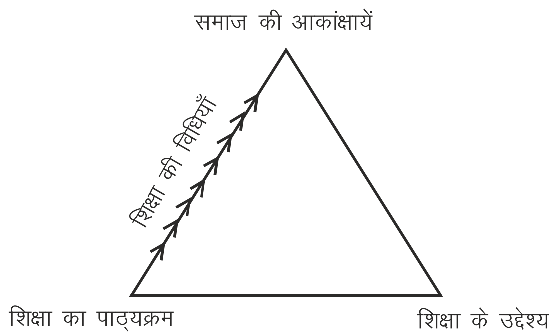

इस प्रकार सर्वदा से ज्ञान व संवाद एक–दूसरे के पूरक रहे हैं। इसी संवाद ने कभी प्रश्नों का रूप लिया व कभी विश्लेषण का। संवाद ने सदैव बालक की दीर्घ–कालीन स्मृति में स्थान पाया है। दीर्घकालीन स्मृति (Long term memory) जो बालक के अनुभवों से उसके मस्तिष्क तक पहुँचती है।

संवाद आधारित ज्ञान अद्वितीय जीवन अनुभवों की पहचान करवाता है जो प्रत्येक ज्ञानार्थी को उसका पात्र बनाता है। यह नया ज्ञान, दृष्टिकोण या कौशल जीवन के सदैव प्रासंगिक रहता है। संवाद ही ज्ञान की कसौटी भी है क्योंकि शिक्षक संवाद के माध्यम से सामान्य ज्ञान, छात्र के दृष्टिकोण नवीन उभरते विचारों को तथा समझने में हुई चूक (Misunderstanding) की परीक्षा ले सकता है। यह सारांश स्पष्ट करने में सहायक है, पूर्व ज्ञान जांचने में सहायक है, कक्षा–कक्ष वातावरण उत्तम बनाने में सहायक है। यह सबसे उचित संबंध स्थापित करने में सहायक है।

1.2.4 ज्ञान की वृद्धि एवं पुनर्भ्यास

ज्ञान का उद्भव अथवा अभिवृद्धि– ज्ञान शब्द संस्कृत भाषा की 'ज्ञा' धातु से बना है जिसका अर्थ या प्रयोग 'जानना' (To Know) के लिए किया जाता है। दार्शनिक दृष्ट्या ज्ञान की अभिवृद्धि के चार स्रोत हैं–

टिप्पणी

1. इन्द्रियानुभव (Sense experience)
2. तर्क व बुद्धि (Reasoning & Reason)
3. शब्द या आप्तवचन (Verbal Testimony or Authority)
4. अंतः प्रज्ञा (Intuition) सहज बोध।

इनके अतिरिक्त श्रृति (Intuition) सहज बोध। इनके अतिरिक्त श्रुति (Revelation) व प्रयोगात्मकता (Expericism) को भी ज्ञान का स्रोत माना जाता है।

आधुनिक दृष्टि से ज्ञान में वे सभी तत्व सम्मिलित हैं जो व्यवहार व अनुभव के पात्र है। यदि हम कहे कि ज्ञान का संग्रहण व अभिवर्द्धन नवीन तकनीकी (Soft copy/Hardcopy) द्वारा संभव है तो ज्ञान संवर्द्धन के विषय में शायद कोई समस्या ही न आये। जबकि ज्ञान संवर्द्धन क्रमबद्ध रूप से ज्ञान संग्रहण कहलाता है जिसमें मानवीय स्रोत (ज्ञानदाता, शिक्षकगण आदि), संगठनात्मक संरचना (ततद् ज्ञान से संबंधित संगठन) तथा संस्कृति के साथ–साथ सूचना तकनीकी भी है। मूलतः उक्त स्रोत है जो ज्ञान संवर्द्धन में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। तथापि ज्ञान संवर्द्धन प्रतिमान के अनुसार सबसे पहले व्यक्ति विशेष के व्यक्तिगत ज्ञान वर्धन होने तदोपरांत उसके दल का (Personal Learning after that Team Learning) ज्ञान वर्धन के विभिन्न सिद्धांत विभिन्न कारकों व तथ्यों की व्याख्या करते हैं तथापि ज्ञान का उद्भव मात्र एक प्रश्न से होता है "How do I Improve what I am doing?" "मैं जिस कार्य को कर रहा हूं उसमें किस प्रकार सुधार करूं?" सभी सिद्धांतों का मूल यही प्रश्न है। मूलतः मस्तिष्क ही ज्ञान का उद्भवकर्ता है जिसमें जिज्ञासा व प्रेरणा का सहयोग रहता है। ज्ञान को मस्तिष्क की ऊर्जा कहा गया है। यह मानसिक एवं बौद्धिक विकास के द्वारा छात्रों की स्मृति, निरीक्षण क्षमता, कल्पना व तर्क आदि शक्तियों द्वारा पुष्ट होता है। ज्ञान भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत को समझने में सहायक है। ज्ञानाभाव में मनुष्य का अस्तित्व पशुवत् है। ज्ञान ही प्रतिभाशाली व्यक्ति की प्रतिभा है, ज्ञान की सृजनात्मक की सृजनात्मकता है। यह बौद्धिक प्रशिक्षण है ज्ञान मुख्यतः तीन बातों पर आधारित है–

1. सूचना (Information)
2. जानना व समझना (knowing cum understanding)
3. बुद्धिमत्ता (Wisdom)

प्राचीन काल से वर्तमान ज्ञान तक की शृंखला ही ज्ञान का विकास है। ज्ञान को केवल प्राप्त करना उद्देश्य की प्राप्ति नहीं है अपितु प्राप्त ज्ञान का पुनर्भ्यास आवश्यक है जिससे ज्ञान दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) में सदैव बना रहे तथा व्यवहार को निर्देशित, नियंत्रित करता रहे। पुनर्भ्यास के लिए आवश्यक है कि एक जाँच सूची (Check List) बनाई जायें जो हमारी आवश्यकता तथा समयानुसार होये। यह मूलतः क्रमबद्ध तथा मूल्यांकन से संबद्ध होनी चाहिए। पुनर्भ्यास हेतु प्रश्नोत्तर, संरचनात्मक आलेख, सारगर्भित लेख, परीक्षादृष्ट्या निर्मित आलेख, शिक्षणार्थ निर्मित सामग्री, चयन व चुनाव, मुख्य बिन्दु लेखन व पूर्व प्रश्नों के अभ्यास द्वारा सरलतया किया जा सकता है।

1.2.5 ज्ञान एवं कौशल में अन्तर

टिप्पणी

ज्ञान के अंतर्गत सूचना संग्रहण ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। पठन, दर्शन, श्रवण, छूकर आदि। यह कार्यात्मक सूचना तथा सैद्धान्तिक संकल्पना से संबंधित है। ज्ञान का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक होता है अथवा स्वयं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से, अवलोकन से या अध्ययन से ग्राह्य है। ज्ञान को समायोजन, अधिगम, कार्य करने को एक विधि, मानसिक ग्रहणशीलता, पुनः व्यवस्थापन की शक्ति, क्षमता व योग्यता आधारित, अनुभव से लाभान्वित तथा समस्या समाधान में सहयोगी के रूप में जाना जाता है। जबकि कौशल–क्रियाओं का एक समूह है जिसमें व्यवहार परिक्षणीय है। यह व्यवहार को परिष्कृत करती है तथा अभ्यास से ही विकसित होते हैं। यह ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान के अदा–प्रदा का सम्मिलित रूप है। यह ज्ञान ज्ञान की उपयोगिता को सिद्ध करता है वह भी किसी विशेष परिस्थिति में। उदाहरणः कौशल अवलोकन, श्रवण, वाचन आदि की अंतःक्रिया से विकसित होते हैं। कौशल में पारंगतता प्राप्त करने के लिए प्रयास व त्रुटि का सिद्धांत सर्वोत्तम है। ज्ञान सैद्धान्तिक हे जबकि कौशल व्यावहारिक। तथापि कौशल विकसित होने की प्रक्रिया में ज्ञान व अभ्यास का योगदान रहता है क्योंकि यह भी ज्ञानेन्द्रिय जनित है।

वे दो शब्द जो किसी व्यक्ति की योग्यता या क्षमता को प्रदर्शित करते हैं वे हैं– 'ज्ञान' व 'कौशल'। प्रथम दृष्ट्या दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं किन्तु वैचारिक दृष्टि से दोनों में पर्याप्त अंतर हे ज्ञान–अधिगम की संकल्पना को प्रकट करता है। उसके सिद्धांतों, सूचना संग्रहण तथा विषय–विशेष को प्रकट करता है जो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा पुस्तकों, मीडिया, अकादमिक संस्थानों तथा शब्द–कोषों आदि से प्राप्त किया जाता है। जबकि कौशल योग्यता शब्द से संबंधित है जिसमें सूचनाओं के उपयोग का स्तर व संदर्भ को ध्यान में रखा जाता है। दूसरे शब्दों में सिद्धांत ज्ञानाधारित व उसी ज्ञान का सफलतापूर्वक उपयोग अभ्यास व इच्छित परिणाम प्राप्त करना कौशल है।

1.2.6 प्रशिक्षण एवं शिक्षण में अंतर

शिक्षण व प्रशिक्षण में अंतर यह है कि शिक्षण ज्ञान बाँटने की प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक कुशल होता है इसमें वे क्रियायें सम्मिलित हैं, जो शिक्षा से संबंधित है। जबकि प्रशिक्षण अधिगम प्रक्रिया है जिसमें ज्ञान के साथ–साथ कौशलों को भी विकसित किया जाता है। कौशलों का अर्थ व नियम व्यवहार में प्रयुक्त किये जाते हैं। दोनों ही शिक्षण व प्रशिक्षण व्यक्ति विशेष के क्षमता वर्धन व योग्यता से जुड़े हैं। मुख्य रूप से शिक्षण का अभ्यास विद्यालयों में होता है व प्रशिक्षण का कार्यक्षेत्र में। शिक्षण बालक को सैद्धान्तिक संकल्पनाओं, ज्ञान के प्रकारों व सूचनाओं से अवगत कराता है। शिक्षक का दायित्व छात्रों को सुविधा प्रदान करना, संवादों का नेतृत्व करना, अधिगम हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग करके अवसर प्रदान करना, निर्देशित करना तथा अधिगम में सक्रिय भूमिका निभाना रहता है। छात्रों में नवीन विचारों को जागृत करना व उन्हें देश व समाज के लिए योग्यतम नागरिक बनाना होता है जो राष्ट्र में समाज को नेतृत्व प्रदान करें। "छात्र ही भविष्य के नेता है, नागरिक हैं। इस दृष्टि से शिक्षक छात्रों को शिक्षित करते हैं। किंतु प्रशिक्षण भी उतना ही महत्वपूर्ण है, यतोहि प्रशिक्षण संगठनात्मक कौशल, ज्ञान व

अभिवृत्ति से संबंधित हैं जो बालक में ततद् क्षेत्र के लिए विकसित किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद निश्चित समय के प्रशिक्षण प्राप्त करता है जिससे वह समाज को अपना सर्वोत्कृष्ट प्रदान कर सके। प्रशिक्षण कार्य में निरंतर रहते व कार्य ग्रहण से पूर्व भी संभव है जिससे वे अपने कार्यक्षेत्र में कम से कम त्रुटियाँ करें। अतः प्रशिक्षण कार्य क्षेत्र में अभ्यास व उससे इतर काल्पनिक परिस्थितियों में अभ्यास द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार–

- शिक्षण सैद्धांतिक पक्ष है व प्रशिक्षण उसी ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष।
- प्रशिक्षण में अधिक स्पष्ट उद्देश्य होते हैं शिक्षण के बजाय।
- शिक्षण अकादमिक क्षेत्र से संदर्भित होता है जबकि प्रशिक्षण कार्य क्षेत्र से संयोजित।
- शिक्षण में शिक्षक छात्रों से प्रतिपुष्टि प्राप्त करते हैं जबकि प्रशिक्षणार्थियों को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।
- इसी क्रम में कुशल व्यवसायी बनाने हेतु एक व्यक्ति को उत्तम सैद्धांतिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक आवश्यकताओं का ज्ञान भी होना चाहिए। इस प्रकार शिक्षण व प्रशिक्षण दोनों का अपना पृथक्–पृथक् महत्व है।

1.2.7 ज्ञान एवं सूचना

ज्ञान सम्यक् रूप से संग्रहित सूचनाओं का समूह है जिसके लिए वह उपयोगी भी है। ज्ञान एक निश्चयात्मक प्रक्रिया है। जब कोई सूचनाओं को स्मृति में स्थान देता है अर्थात् संकलित कर लेता है तो वह ज्ञान की श्रेणी में आ जाता है। इस ज्ञान का उपयोगी अर्थ है क्योंकि यह सूचनाओं को एकीकृत करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

- ज्ञान से हमारा तात्पर्य मानव अवबोध से जो एक विषय–वस्तु से संबंधित हो सकता है जो अध्ययन व अनुभव योग्य हो।
- ज्ञान मुख्य रूप से अधिगम, वैचारिक–प्रक्रिया, अवबोधकत्मकता से संबंधित जो समस्या के क्षेत्र से जुड़े हैं।
- ज्ञान सूचना नहीं है और सूचना आँकड़ों (Data) में नहीं है।
- ज्ञान सूचनाधारित है तथा कुछ परिस्थितियों में सूचनाओं आँकड़ों (Data) के रूप में प्राप्त होती है।
- समस्या से संबंधित क्षेत्र व महत्त्व को अनुभव करते हुए हम इसे अवबोधात्मक श्रेणी में रख सकते हैं।
- सूचनाओं आँकड़ों के रूप में प्राप्त होती है जो क्रमिक संपर्क से अर्थ प्रकट करती है। जो अर्थ उपयोगी होता है किन्तु मात्र कम्प्यूटर में दत्तों के रूप में प्राप्त नहीं होता।
- सूचना को आँकड़ों का एकत्रीकरण माना जा सकता है जिससे निष्कर्ष तक पहुँचा जा सके।
- सूचनाओं का सदैव अर्थ व उद्देश्य होता है।

टिप्पणी

1.2.8 तर्क एवं विश्वास

परम्परागत रूप से तर्क व विश्वास धार्मिक विश्वास से उचित ठहरने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं क्योंकि दोनों के ज्ञानात्मक रूप है। मुख्य रूप से सैद्धांतिकों व दार्शनिकों की तर्क व विश्वास में रुचि होती है कि दोनों में क्या संबंध है व किस सीमा तक अंतर है। कुछ लोगों के अनुसार दोनों में कोई द्वंद्व नहीं है जबकि कुछ मत दोनों को पृथक्–पृथक् या विरोधी घोषित करते हैं।

- विश्वास सदैव सत्य या तथ्याधारित हों या आवश्यक नहीं है।
- विश्वास (Subjective) विषयगत है जो ज्ञान के लिए आवश्यक है।
- विश्वास अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं सभी सत्य हां। ये गलत या सही भी हो सकते हैं।
- दोनों ही सत्य के अन्वेषण में सहायक हैं।
- दोनों ही बुद्धि व ज्ञानाधारित है।
- विश्वास का उद्देश्य सृष्टि को उसी रूप में ??
- यह एक प्रकार की अभिवृत्ति है।
- यह व्यवहारात्मक प्रक्रिया है।
- यह छठी मानव इन्द्रिय है। यह आशा हैडन तथ्यों को जिन्हें देखा नहीं जा सकता।
- दोनों ही मानव मस्तिष्क की क्रियाएं हैं।
- विश्वास आध्यात्मिकता को प्रकट करता है।
- तर्क विज्ञान पर आधारित है।
- यह अपने तथ्यों का निर्माण स्वयं करता है।
- तर्क परिक्षणीय है।
- तर्क को चुनौती दी जा सकती है।
- यह सार्वभौमिक है।
- तर्क कार्य–कारण सिद्धांत पर आधारित है।
- तर्क की व्याख्या की जा सकती है।
- तर्क तार्किक क्रम पर आधारित जो पंच ज्ञानेन्द्रियाँ स्पष्ट करती है।
- तर्क वास्तविकता के धरातल पर स्थिर है।

1.2.9 तीन संकल्पनाओं का अध्ययन : क्रिया, खोज एवं संवाद

यहां पर तीन संकल्पनाओं– क्रिया, खोज एवं संवाद का अध्ययन किया जा रहा है–

क्रिया– किसी भी काम की वह इकाई है जो किसी व्यक्ति को ततद् भूमिका निभाने हेतु प्रदर्शित करनी होती है। क्रिया या गतिविधि का सदैव उद्देश्य रहता है साथ ही निश्चित समय भी।

प्रत्येक गतिविधि एक निश्चित भूमिका से संबंधित होती है। सामान्यतः यह किसी योजना या प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही होती है व प्रगति को निश्चित करती है। इस प्रकार Activity क्रिया या गतिविधि को कुछ सोपानों में बाँट सकते हैं जिन्हें मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में बद्ध करते हैं–

1. **वैचारिक क्रिया (Thinking)**– यह वह क्रिया है जहाँ भूमिका निर्वाहकर्ता कार्य की प्रकृति को समझता है, तत्संबंधी कलाकृतियों को एकत्रित करता है, जाँचता है व परिणाम तैयार करता है।
2. **प्रस्तुतीकरण (Performing)**– इस क्रिया के अंतर्गत निर्वाहकर्ता अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।
3. **समीक्षा (Revieving)**– अंततोगत्वा भूमिका निर्वाह कर्ता कुछ मानदंडों के विरुद्ध परिणामों का निरीक्षण करता है।

उक्त सभी सोपान प्रत्येक क्रिया का भाग हो यह आवश्यक नहीं है, तथापि निम्नांकित क्रम से कुछ क्रियाएँ दृष्टव्य हैं– उदाहरण– किसी क्रिया का चयन जिसमें वैचारिक क्रिया ने कार्य किया तदोपरांत उस क्रिया को करना अंततोगत्वा कृत्क्रिया की समीक्षा करना कि वह क्रिया किस स्तर तक लाभदायक थी। इस प्रकार क्रिया द्वारा कार्यों के लिए योजना निर्माण व निर्देशन तथा सम्यक् मार्ग प्रशस्त होता है। जो व्यावहारिक पृष्ठभूमि के अनुकूल हों।

क्रिया व ज्ञान से तात्पर्य है कि किसी विशेष परिस्थिति में सीखी गई क्रिया को प्रयोग में लाना। उससे संबंधित कौशल का विकास का उसे उत्कृष्टता की ओर ले जाना। ज्ञान सैद्धांतिकता से तथा क्रिया प्रयोगिकता से संबंधित है। ज्ञान अनुभव से तथा क्रिया अभ्यास से विकसित होती है। जिसमें प्रशिक्षण का अपना विशेष महत्व है।

खोज (Discovery): खोज पुरातन काल से शिक्षा व ज्ञान का सर्वोत्तम साधन रहा है जिसने समय–समय पर ज्ञान को पुनर्संगठित किया व व्यवहार के योग्य बनाया क्योंकि यह मूलतः समस्या–समाधान पर आधारित हे। विभिन्न क्षेत्रों में की गई विभिन्न खोजों ने उस क्षेत्र में सर्वोच्चता को प्राप्त किया जिसका पूर्णतः श्रेय खोज को जाता है। जिस क्षेत्र में खोज न हुई हो वे क्षेत्र विकास से भी परे रहे हैं अर्थात् आज विकास व खोज परस्पर समानार्थी बन गए हैं। किसी भी खोज का मुख्य उद्देश्य समस्या के सुलझाने की परिस्थितियों को जानना है, जहाँ खोजकर्ता अपने पूर्व–ज्ञान व अनुभवों का उपयोग करता है। खोज निर्देश की एक विधि है, जिसके माध्यम से नवीन वस्तुओं, नवीन विधियों तथा नवीन विचारों को खोजा जा सकता है। खोजकर्ता नवीनता खोज पूर्व कार्य में फेर–बदल कर, प्रश्नों व विवादों के परिणामस्वरूप तथा नवीन प्रयोग कर करते हैं जिसमें वे पूर्व की खोज करने वालों, शिक्षकों तथा अनुभवी व्यक्तियों की सहायता लेते हैं, तर्क की कसौटी पर उसे जाँचते हैं व अनुभवाधारित परिणामों तक पहुँचते हैं। इस प्रकार खोज के साधनों में–

- कक्षा की संस्कृति
- उद्देश्यनिष्ठता
- प्रश्न पूछने की संस्कृति
- अन्वेषण की आवश्यकता
- शिक्षक–छात्र स्वस्थ संवाद
- प्रायोगिकता
- अंवेषण के प्रति रुचि
- प्रोत्साहन

टिप्पणी

- उचित निर्देशन
- सामग्री की उपलब्धता
- समय व धन की व्यवस्था
- समीक्षात्मकता
- विधियों का ज्ञान
- पूर्व ज्ञान व अभ्यास
- आधारभूत शिक्षा
- उचित प्रतिपुष्टि
- अतिरिक्त सूचनाओं व ज्ञान की उपलब्धता
- ज्ञान को एकीकृत करने का कौशल
- समस्या समाधान के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति

समीक्षा चिंतन तथा कुशलता आदि की गणना की जानी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में खोज को प्रोत्साहन देने के लिए उक्त सभी का समावेश पाठ्यक्रम में किया जाना चाहिए।

संवाद (Dialoge): "The word between us" के रूप में संवाद की संक्षिप्त भूमिका हम पूर्व में ही जान चुके हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम एवं पुरातन साधन। दर्शनशास्त्र में सबसे अधिक बल संवाद पर ही दिया गया क्योंकि यही वह विधि है जिसमें शंकाओं का निराकरण साथ–ही–साथ हो जाता है।

संवाद की प्रथम शर्त है, संवाद उन्हीं के मध्य संभव है, जिनके बीच किसी भी तरह की औपचारिकता न हों अर्थात् दोनों में समान स्तर पर एक दूसरे से बात करने की संभवता हों। खोज की विधियों में सर्वप्रथम संवाद ही परिगणित होता है। संवाद मनुष्य के भीतर निर्माण व पुनर्निर्माण की शक्ति विकसित करता है। प्रेम, विनम्रता तथा विश्वास पर आधारित संवाद समस्तरीय व ज्ञानप्रदाता बन जाता है। संवाद–आधारित विधियों मात्र की चर्चा करें तो–

- व्याख्यान विधि
- चर्चा विधि
- मस्तिष्क उद्वेलन विधि
- Buzz Group Teaching
- Tutorial/टयूटोरियल विधि
- प्रायोजना विधि
- भूमिका निर्वाह विधि
- सेमीनार
- कार्य–समूह
- समूह चर्चा विधि आदि विधियाँ हैं जिनमें 'संवाद' की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही संवाद शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण है जिससे शिक्षक को व्याख्यान में सहायता मिलती है।
- प्रतिपुष्टि का सर्वोत्तम साधन है।
- नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़ना संभव है।
- सामान्य वार्तालाप से विशेष ज्ञान–संबंधी वार्तालाप तक छात्रों को सहजता से ले जा सकते हैं।

टिप्पणी

- रुचिकर रूप से अपना पक्ष व विषय छात्रों के समक्ष रखा जा सकता है।
- छात्रों की अभिवृत्ति जानने में सहायक।
- यह संवादकर्ता के स्वयं के चरित्र को भी स्पष्ट करता है।
- छात्रों के साथ सौहार्दपूर्वक संबंध स्थापित करने में सहायक।
- शिक्षक को सकारात्मकता की ओर प्रोत्साहित करने में सहायक। इस प्रकार आपसी संवाद नवीन ज्ञान–सृजन में सदैव सहायक होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. प्रत्येक शिक्षार्थी या ज्ञानार्थी के लिए ज्ञान प्राप्ति में सबसे अधिक महत्व किसका है?

   (क) जिज्ञासा (ख) अभ्यास

   (ग) संवाद (घ) क्रिया

2. अभ्यास का अर्थ है–

   (क) किसी प्रकार की प्रक्रिया न करना

   (ख) प्रक्रिया को एक बार दोहराना

   (ग) एक ही प्रक्रिया को बार–बार दोहराना

   (घ) इनमें से कोई नहीं

3. 'ज्ञान' शब्द संस्कृत की किस धातु से बना है?

   (क) जा (ख) ज्ञा

   (ग) गम् (घ) झा

1.3 ज्ञान की संकल्पना का विश्लेषण

इसका अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1.3.1 ज्ञान के प्रस्तावित प्रकार (विश्वास, सत्य एवं औचित्य)

ज्ञान को समग्र रूप से समझना एक सरल कार्य नहीं है अतः ज्ञान को सरलता से समझने के लिए उसकी विशेषताओं, प्राप्त करने की प्रक्रिया, स्वरूप एवं प्रकारों आदि में विभाजित कर दिया गया है। ज्ञान के प्रस्तावात्मक रूप की व्याख्या परंपरागत रूप से प्लेटो के सिद्धांतों में प्राप्त होती है। यह प्लेटो के प्रारंभिक संवादों में से एक है। जिसमें सुकराती संवाद का रूप भी सम्मिलित है। सुकरात एक ऐसे व्यक्ति से पूछताछ करने के लिए एक नैतिक शब्द को विच्छेदित करने का प्रयास करते हैं जो शब्द के अर्थ को जानता है अंततः वह न तो विशेषज्ञ जान पड़ता है व न ही शब्द का ज्ञाता। अंततः यह विचार कि आत्मा शाश्वत है व सर्वज्ञाता है किन्तु सीखने के लिए केवल 'स्मरण' करना पड़ता है। इस प्रकार ज्ञान में तीन मुख्य अवयव हैं। ये अवयव ही ज्ञान के सत्य, विश्वास व औचित्यपूर्ण रूप से जाने जाते हैं। पारंपरिक परिभाषा के अनुसार विश्वास एक विशेष प्रकार है जो मुख्यतः दो स्थितियों को संतुष्ट करता है–

1. सत्य जो विश्वसनीय है।
2. जिस पर विश्वास किया जा रहा है वह कितना औचित्यपूर्ण है।

टिप्पणी

विश्वास की स्थिति, सत्य की स्थिति तथा औचित्यता की स्थिति जिसका ज्ञान से सीधा संबंध है, दार्शनिकों का मत है कि ये तीनों ही शर्तें व्यक्तिगत रूप से आवश्यक है तथा संयुक्त रूप में प्रस्तावक ज्ञान (Propositional Knowledge) के लिए पर्याप्त है।

विश्वास– विश्वास के लिए अत्यावश्यक है कि ज्ञान ग्रहणकर्ता किसी प्रकार से किसी प्रस्ताव को स्वीकार करें क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक रूप से संबंधित है। विश्वास के विषय में कहा जाता है। किसी वस्तु के संबंध में हमारे द्वारा लगाये गये अर्थों का एक स्वरूप जो वस्तु से संबंधित 'ज्ञानों' का समग्र रूप है।

विश्वास व्यक्ति के मन की वह स्थिति है जिसके द्वारा मनुष्य अनुभवजन्य साद्य, तथ्यात्मक निश्चितता को एक साथ प्रकट करता है अर्थात् जो वास्तविक है। सत्य है उसकी कोई न कोई वास्तविक सत्ता है जिसे विश्वास कहा जाता है। विश्वास वह मानसिक प्रतिनिधित्व है जो सकारात्मकता के साथ किसी कार्य को करने की संभावना की ओर केन्द्रित दृष्टिकोण है।

According to Encychopaedia of Religion and Ethics विश्वास आश्वासन अथवा दृढ़ धारणा की मानसिक स्थिति है। यह अपनी आंतरिक अनुभूतियों के प्रति मन की वह मनोवृत्ति है जिसमें वह अपने द्वारा निर्दिष्ट वास्तविकता को यथार्थ महत्व या मूल्य के रूप में स्वीकृत और समर्पित करता है।

सत्य– सुकरात के अनुसार, "विचार व विचारों की अभिव्यक्ति ही शाश्वत सत्य है। ज्ञान केवल उसका प्रतिबिम्ब है।"

अरस्तु के अनुसार, "सत्य दृश्य जगत है जिसे अनुभव से जानना ज्ञान है।"

ज्ञान मीमांसा के अनुसार, "हमें क्या ज्ञात करना है? व किस प्रकार ज्ञात करना है? के उत्तर ही सत्य व ज्ञान में विभाजित है। 'सत्' शब्द से सत्य शब्द का प्रावुर्भाव हुआ है, सत्य वह शब्द है जिसकी सहायता से लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। क्योंकि यह 'सते हितम्' अर्थात् सर्वकल्याण की भावना से संबंधित है। हम पूर्व में अध्ययन कर चुके हैं कि ज्ञान सदैव विश्वासधारित होता है। जब कोई ज्ञान का इच्छुक ज्ञान के लिए प्रयासरत होता है तो वह प्रथम शर्त के रूप में विश्वास रहता है। यह विश्वास सत्य। तथ्य को व्यक्त करता है अतः ज्ञान को सदैव सत्य की आवश्यकता रहती है। ये दोनों ही विश्वास व सत्य तथ्य के औचित्य, अनौचित्य पर विचार किये बिना ज्ञान के प्रति अग्रसर नहीं होते।"

औचित्य– यदि हम ज्ञान की आवश्यकता को अनुभव करते हैं तो उसके तीन प्रस्ताव रूपों को भी समान स्थान देना होगा। अर्थात् विश्वास, सत्य और औचित्य तथ्य की जानकारी के लिए व्यक्तिगत रूप से या संयुक्त रूप से पर्याप्त है। सामान्य रूप से औचित्यतता किसी मानक, मूल्यांकन या व्यवहार की कुछ क्रियाएँ, अभिवृत्ति आदि से संबंधित है। उदाहरणतया किसी व्यक्ति के किसी विशेष को वैधानिक रूप से उचित साबित करना औचित्यतता की श्रेणी में आता है। अपनी मूल्यांकनात्मक भूमिका के कारण औचित्य का उपयोग मुख्यतः तर्कसंगतता के पर्याय के रूप में भी

होता है। अपनी तर्कसंगतता के कारण औचित्य दार्शनिकों के लिए आदर्श रूप में उपस्थित रहता है क्योंकि न्यायसंगत मान्यताएँ अनुचित मान्यताओं को समाज से बहिष्कृत कर सकती है।

1.3.2 प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान

सामान्य रूप से ज्ञान एक जटिल तथ्य है जिसे समझना सरल नहीं है। दूसरी अवधारणा के अनुसार ज्ञान वह है जिसके लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है। इसे ही हम सामान्य ज्ञान एवं विशिष्ट ज्ञान की श्रेणी में रखते हैं। चूँकि ज्ञान का संबंध चेतनता, ज्ञाता, कुशलता आदि से है, यह अमूर्त अर्थात् मानसिक प्रक्रिया से संबंधित है। समयानुसार परिवर्तित होने वाला है। ज्ञान को समग्र रूप से समझना एक कठिन कार्य है। अतः विद्वानों द्वारा ज्ञान को उनकी विशेषताओं, प्राप्त करने की प्रक्रिया एवं स्वरूप के आधार पर विभाजित कर दिया गया है। जिससे ज्ञान की प्रक्रिया, स्वरूप एवं व्यवहार के माध्यम से मूल्यांकन किया जा सके। हम यहाँ ज्ञान के मुख्य दो प्रकारों की चर्चा कर रहे हैं– प्रक्रियात्मक (Procedural) एवं परिचयात्मक (Acquaintance) ज्ञान।

प्रक्रियात्मक ज्ञान (Procedural Knowledge): प्रक्रियात्मक ज्ञान वह ज्ञान है जो किसी कार्य के प्रस्तुतीकरण के रूप में जाना जाता है। किस प्रकार जानना है? जैसे प्रश्नों का उत्तर प्रक्रियात्मक ज्ञान द्वारा मिलता है। यह प्रायोगिक ज्ञान की श्रेणी में आता है। ज्ञान की इस श्रेणी की व्याख्या की सक्षमता के स्थान पर यह ज्ञात करना की कार्य का प्रस्तुतीकरण कैसे किया जाये। प्रक्रियात्मक ज्ञान का मुख्य उद्देश्य "समस्या–समाधान" रहता है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अनुसार प्रक्रियात्मक ज्ञान "ज्ञान को किस प्रकार संग्रहित, संगठित किया जाये जो पूर्णतः व्यवहारात्मक हों।"

यह समस्याओं के समाधानार्थ तत्संबंधी दृश्य को निष्पादित करने की क्षमता है, इस प्रकार का ज्ञान विशिष्ट समस्या प्रकारों से जुड़ा होता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान लक्ष्य–उन्मुख है। शब्द 'प्रक्रियात्मक ज्ञान' का व्यापक रूप से गणित शोधों में उपयोग किया जाता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान से छात्राओं की कक्षा कक्ष उपलब्धि का मापन किया जा सकता है। ज्ञान की यह श्रेणी छात्रों की वैज्ञानिक जाँच की प्रकृति को समझने में सहायक है। यह परिकल्पना बनाने तथा उन्हें परखने की नवीन विधियों से परिचित कराती है। जिन्हें छात्र नवीन परिस्थितियों में प्रयुक्त करते हैं क्योंकि यह व्यावहारिक ज्ञान पर बल देता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान के पक्ष नवीन विधियों की खोज, नवीन आयामों की खोज आदि से संबंधित होने के कारण प्रशिक्षण प्रक्रिया से जुड़ी है। प्रक्रियात्मक ज्ञान के अंतर्गत ऐसी गतिविधियाँ प्रदान की जाती है जिससे छात्रों हेतु समस्याएँ प्रदान करती है जिसका विश्लेषण शिक्षकों के सहयोग से छात्रों द्वारा ही किया जाये। अंतहीन प्रश्न (Open ended Question) उपलब्ध कराये। समस्या–समाधान हेतु प्रेरित करें जिससे मस्तिष्क ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से निकले व व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति हो। अर्थात् निरंतर ज्ञान व नियमों के रूप में व्यक्त ज्ञान प्रक्रियात्मक ज्ञान है। प्रक्रियात्मक ज्ञान विशेष प्रकार के ज्ञान के लिए किसी विशेषज्ञ से पूछताछ करके प्राप्त किया जाता है कि कार्य कैसे पूरा किया जाता है। नियम जटिल एवं संदर्भ पर निर्भर

हो सकते हैं और विशेषतः पर निर्भर एवं बाधाओं से युक्त भी हो सकते हैं। किन्तु घोषित कथनों के परिणामस्वरूप ज्ञान तक पहुँचना प्रक्रियात्मक ज्ञान है।

टिप्पणी

परिचयात्मक ज्ञान (Acquaintance Knowledge)– अवधारणात्मक अनुभव पर आधारित ज्ञान जो परिचित व्यक्ति द्वारा या परिचित वस्तु से संबंधित हों। किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु से संबंधित ज्ञान जो प्रत्यक्षीकरण पर आधारित हों अर्थात् व्यक्ति विशेष जो किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान को प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हो, यह दोनों के बीच प्रत्यक्ष अंतःक्रिया पर आधारित होता है।

सामान्यतः व्यक्ति को अनेक प्रकार का परिचयात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त होता है यथा–कोई अपने कार्य में पूर्वतः व्यस्त है कि यकायक उसे सिरदर्द अनुभव होने लगा अथवा भूख अनुभव होने लगी। ये दोनों प्रकार के अनुभव इस व्यक्ति से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हैं तथा किसी अन्य व्यक्ति के लिये वे अप्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार हैं–भूख लगना, सिर दर्द का अनुभव, प्यास का अनुभव आदि। अनुभव संबंधी परिचयात्मक ज्ञान की श्रेणी में आता है। इसी प्रकार छूकर, सूँघकर, चखकर ज्ञात किया गया ज्ञान इंद्रिये संबंधी परिचयात्मक ज्ञान की श्रेणी में आता है। पूर्व घटना के पक्षों की याद करके नवीन परिस्थितियों से समायोजन स्मृति आधारित परिचयात्मक ज्ञान कहलाता है।

परिचयात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष संपर्क, इंद्रियों द्वारा, अनुभव द्वारा, आत्म सजगता द्वारा, संवेगों द्वारा संभव है। परिचयात्मक ज्ञान तर्क एवं विचारों पर आधारित है जिसका सीधा संबंध भौतिक जगत से है। परिचयात्मक ज्ञान में विश्वास की अधिकता रहती है पूर्वज्ञान से संबंधित अर्थात् स्मृत्यात्मक ज्ञान भी परिचयात्मक की श्रेणी में आता है। परिचयात्मक ज्ञान का शिक्षा व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान की तुलना में कोई भी अन्य ज्ञान महत्वपूर्ण नहीं होता। यह छात्र की अधिगम प्रक्रिया व विकास को प्रभावित करता है।

1.3.3 निष्पक्षता/वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता की धारणा

वस्तुनिष्ठता में अंकन की प्रक्रिया स्पष्ट होती है अर्थात् एक ऐसा परीक्षण जोकि सरल प्रश्नों द्वारा सही उत्तर उपलब्ध करायें।

वस्तुनिष्ठता : वस्तुनिष्ठता शब्द का प्रयोग दर्शन, विधि तथा नीतिशास्त्र जैसे विषयों में विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होता है। सामान्य अर्थ के रूप में व्यक्ति को कोई निर्णय करते समय इन सभी आधारों से मुक्त होना चाहिए जो उसकी व्यक्तिगत चेतना में सम्मिलित है, यथा– स्वयं का दृष्टिकोण, पूर्वाग्रह, रूढ़िगत धारणाएँ, मान्यताएँ, कल्पनाएँ एवं स्वयं के विचार। अर्थात् वहीं नैतिक कथन वस्तुनिष्ठ कहलायें जिनकी सत्यता की स्थितियों किसी भी व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क से स्वतंत्र होते। वस्तुनिष्ठता पूर्णतः यथार्थ अवलोकन या जाँच पर आधारित है। जब व्यक्ति विशेष द्वारा अपने विशेष क्षेत्र, जाति–प्रजाति आदि संस्कृति धर्म से परे सोचना या करे की उक्त के प्रभावों से निर्लिप्तता ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठता का मुख्य उद्देश्य औचित्यता व अनौचित्यता की जाँच न करके निष्पक्ष रूप से सत्य व तथ्यों की विश्लेषण, व्याख्या एवं समीक्षा करना है जिससे वास्तविकता तथा ततद् विषय की वैज्ञानिकता को स्पष्ट किया जा सके।

टिप्पणी

फेयर चाइल्ड के विचारों में, वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक् रख सके जिसका वह स्वयं एक अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावनाओं के स्थान परपक्षपात रहित और पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्कों के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके सार्वभौमिक रूप में देख सकें। वस्तुनिष्ठता का अर्थ विचारों या दृष्टिकोण का अभाव नहीं है इसका अर्थ है संघर्ष या द्वंद्व का अभाव।

अपने विशुद्ध अर्थ में वस्तुनिष्ठता शोधकर्ता के व्यक्तिगत आयामों से अछूती वास्तविकता को स्पष्ट करता है। यह धारणा कि– एक शोधकर्ता घटना को प्रभावित किए बिना स्पष्ट कर सकता है।

सार्वभौमिकता– शाब्दिक दृष्टि से सार्वभौमिकता का तात्पर्य– किसी संस्कृति की विशेषता आदि का प्रत्येक स्थान में प्रसार होना है। जिसमें स्थानीय एवं लघु परंपराओं से धीरे–धीरे बहुल परंपरा का निर्माण होता है। समाज के सांस्कृतिक जीवन को सुस्पष्ट करने के लिए सार्वभौमीकरण की अवधारणा की आवश्यकता होती है क्योंकि सार्वभौमीकरण की क्रिया में लघु परंपराएँ अपना अस्तित्व नहीं छोड़ती वरन् वृहत् परंपरा की ओर मार्ग प्रशस्त करती है। जिसमें समाज के सभी वर्गों की बराबर प्रतिभागिता रहती है तथा पुरातन परंपराएँ नवीन संकल्पना के साथ विकसित होती है।

सार्वभौमीकरण– अंग्रेजी शब्द Universalition का हिन्दी रूपांतरण है जिसका प्रथमतया प्रयोग इंग्लैंड में हुआ जिसका अर्थ या अनिवार्य रूप से, सर्वत्र।

1.3.4 प्रस्तावक, प्रक्रियात्मक एवं परिचयात्मक ज्ञान का पाठ्यचर्या में स्थान

ज्ञान शब्द की कोई व्यापक परिभाषा देना सरल नहीं है क्योंकि दर्शन की प्रत्येक विचारधारा में ज्ञान के विविध स्वरूप उपलब्ध है किन्तु यह प्रमाणिक है कि ज्ञान ज्ञाता व ज्ञेय के पारस्परिक संबंध पर टिका है। ज्ञान–ज्ञाता व ज्ञेय के साथ कभी इंद्रिय संपर्क द्वारा कभी चेतना तो कभी प्रत्यक्षीकरण व अनुभव पर आधारित होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार, "ज्ञान का अर्थ" समझने के लिए सत्य की वस्तुनिष्ठता, सार्थकता, तार्किकता व तार्किक प्रतिज्ञप्ति सत्यता पर आधारित रहता है।

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम के लिए "करीकुलम" Curriculum या Syllabus सिलेबस शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है तथापि करीकुलम शब्द का उपयोग ही व्यापक अर्थ में होने लगा है क्योंकि पाठ्यक्रम के सभी अनुभव इसके अंतर्गत आ जाते हैं।

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार, "पाठ्यक्रम विषयवस्तु (कोर्स) और नियोजित अनुभवों का समूह है, जिसे एक छात्र विद्यालय अथवा महाविद्यालय के निर्देशन में प्राप्त करता है।"

कनिंघम के अनुसार, "पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपनी सामग्री (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपनी चित्रशाला (विद्यालय) में ढ़ाल सके।"

सी.वी. गुड द्वारा सम्पादित शिक्षा कोष में पाठ्यक्रम की तीन परिभाषाएँ दी गई है, जो इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

(1) "अध्ययन के किसी प्रमुख क्षेत्र में उपाधि प्राप्त करने के लिए निर्धारित किये गए क्रमबद्ध विषयों अथवा व्यवस्थित विषय–समूह को पाठ्यक्रम कहा जाता है।"

(2) किसी परीक्षा को उतीर्ण करने अथवा किसी व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए किसी शिक्षालय द्वारा छात्रों के लिए प्रस्तुत विषय–सामग्री की समग्र योजना को पाठ्यक्रम कहते हैं।

(3) व्यक्ति को समाज में समायोजित करने के उद्देश्य से विद्यालय के निर्देशन में निर्धारित शैक्षिक अनुभवों का समूह पाठ्यक्रम कहलाता है।"

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शैक्षिक प्रक्रिया के तीन अभिन्न अंग 1. शिक्षार्थी 2. शिक्षक व पाठ्यक्रम जिन तीनों के माध्यम से छात्र ज्ञान अर्जन तक पहुँचाता है। यही ज्ञानार्जन प्रक्रिया 1. ज्ञानात्मक 2. भावात्मक तथा 3. क्रियात्मक उद्देश्य के रूप में शिक्षण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की जाती है। उद्देश्य के अनुसार ज्ञान को समग्र रूप से समझना एक कठिन कार्य है। अतः विज्ञानों द्वारा ज्ञान को उसकी विशेषताओं, प्राप्त करने की प्रक्रिया एवं स्वरूप के आधार पर विभाजित कर सरलता से समझा जा सकता है, क्रियाओं व व्यवहार के माध्यम से मूल्यांकन किया जा सकता है। ज्ञान तर्क संगत है, क्रियाशीलता है, प्रतिदिन की प्रतिदिन की आवश्यकताएँ पूर्ण करता है, वस्तुनिष्ठ है, व्यक्तिनिष्ठ है। उक्त विशेषताओ के आधार पर ज्ञान को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है।

ज्ञान के प्रकार

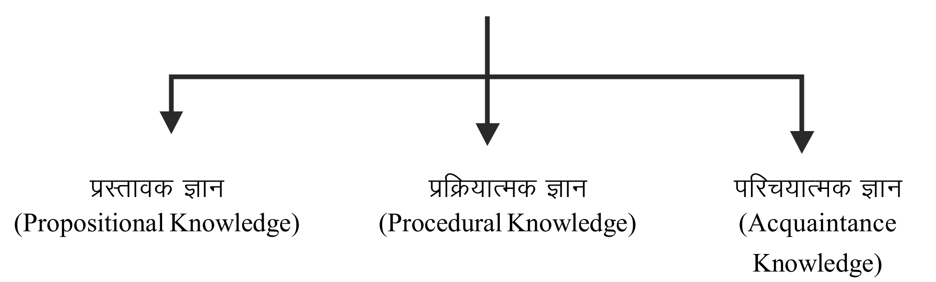

[प्रस्तावक ज्ञान वह ज्ञान है जो विभिन्न वस्तुओं से प्राप्तव्य है] जिसके विभिन्न प्रकार संभव है।

[किस प्रकार कार्य को किया जावें] [Knowledge of How to do tasks]

[जिसका परिचय प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त ज्ञान के साथ है इसे Personal Knowledge या Introdvctory Knowledge भी कहा जा सकता है]

(i) प्रस्तावक ज्ञान (Propositional Knowledge)– Also Called as Descriptive or Deelarative Knowledge- वह ज्ञान जो विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त होता है यथा 10/2 = 5 होता है। प्रस्तावक या तथ्यात्मक ज्ञान तथ्यों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण में Systmatic Presentation of facts करने में सहायक है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाता है ज्ञान के एकत्रीकरण यथा–पाठ्यपुस्तकों, पत्रिकाओं आदि के माध्यम से में सहायक है। तथ्यात्मक ज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान को सरलता से आदान–प्रदान किया जा सकता है। प्रस्तावक ज्ञान द्वारा अनुसन्धानों का सार्वभौमिक उपयोग संभव है। सर्वमहत्वपूर्ण प्रस्तावक अथवा तथ्यात्मक ज्ञान पाठ्यक्रम एवं शिक्षाक्रम के निर्माण में सहायक

टिप्पणी

है। विद्यालयी व्यवस्था का आधार शिक्षाक्रम एवं पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम में अनेक प्रकार के तथ्यों का संकलन किया जाता है, जो कि छात्रों व शिक्षकों के लिये शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आधार बनता है उसी प्रकार शिक्षाक्रम में विभिन्न विषयों की पुस्तकों का स्वरूप निश्चित किया जाता है। किस स्तर पर कौन–कौन सी पुस्तकों तथा किन किन विषयों का शिक्षण छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है? इस प्रकार शिक्षाक्रम व पाठ्यक्रम को व्यवस्थित एवं उपयोगी स्वरूप प्रदान करने में तथ्यात्मक या प्रस्तावक ज्ञान की ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

2. **प्रक्रियात्मक ज्ञान**– प्रक्रियात्मक ज्ञान व्यावहारिक या कौशलात्मक ज्ञान की श्रेणी में आयेगा अर्थात् जिस ज्ञान का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के कौशलों से होता है जिससे मनुष्य अपना जीवन सुखमय बनाता है। कौशलात्मक ज्ञान को सामान्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है–

   (1) शरीर सम्बन्धी कौशलात्मक ज्ञान (Body related skill Knowledge)- वे क्रियाएँ जिन्हें शरीर के द्वारा सम्पन्न किया जाता है बिना किसी अन्य साधन या उपकरण की सहायता के जैसे– नाचना, कूदना, गाना व अन्य शारीरिक क्रियाएँ

   (2) उपकरण सम्बन्धी कौशलात्मक ज्ञान–Instsument related skill knowledge - इस प्रकार के ज्ञान में किसी न किसी उपकरण की आवश्यकता रहती है यथा– वाद्ययन्त्र बजाना, उपकरण बनाना, साइकिल चलाना आदि।

कौशलात्मक या प्रक्रियात्मक ज्ञान की पाठ्यक्रम में उपयोगिता इस प्रकार स्पष्ट है–

(1) शिक्षक के लिये विभिन्न कौशलों में पारंगत होने में सहायक।

(2) छात्रों के लिये भाषायी कौशल व विभिन्न गत्यात्मक कौशलों के ज्ञानार्थ।

(3) श्रवण, वाचन, पठन एवं लेखन कौशलों के अधिकाधिक व कुशलतापूर्वक उपयोग में सहायक।

(4) वैज्ञानिक अभिवृति एवं शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग में उपयोगी।

(5) श्रृव्य–दृश्य सामग्री के प्रयोग में उपयोगिता हेतु।

(6) शिक्षण विधियों के प्रयोग एवं सम्सक् सम्प्रेषण हेतु।

(3) परिचयात्मक ज्ञान (Aequaintance Knowledge)– परिचयात्मक ज्ञान का सम्बन्ध इन्द्रिय–अनुभव के आधार पर प्राप्त ज्ञान से सम्बन्धित है। ज्ञान के इस प्रकार को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें समय भी कम लगता है। 1. इन्द्रिय सम्बन्धी परिचयात्मक ज्ञान, 2. प्रत्यक्ष अनुभव सम्बन्धी परिचयात्मक ज्ञान 3. स्मृति आधारित परिचयात्मक ज्ञान 4. आत्म–सजगता आधारित परिचयात्मक ज्ञान आदि प्रकार है। परिचयात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष सम्पर्क अर्थात् जहाँ प्रमाण की आवश्यकता न हों प्राप्त होता है जैसे–गाय व कुत्ते को प्रत्यक्ष देखकर दोनों की विशेषताओं को बालक स्पष्ट रूप से बता सकता है।

टिप्पणी

परिचयात्मक ज्ञान इन्द्रिय–सम्पर्क, अनुभव तथा स्मृति आधारित प्राप्त किया जा सकता है। यह ज्ञान भौतिक जगत से सम्बन्धित है न कि अमूर्त ज्ञान से। परिचयात्मक ज्ञान में विश्वास की अधिकता, संवेगों से सम्बद्धता, स्वविवेक से उत्पन, तर्क एवं विचाराधारित आदि विशेषताओं से युक्त रहता है। जिस प्रकार प्रक्रियात्मक एवं प्रस्तावक ज्ञान की व्यावहारिक जीवन अर्थात् पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका है उसी प्रकार परिचयात्मक ज्ञान का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। परिचयात्मक ज्ञान द्वारा छात्रों को भौतिक जगत के सम्बन्ध में पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जा सकता है क्योंकि परिचयात्मक ज्ञान–

(1) शिक्षण विधियों का आधार है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं को दिखाने से अधिगम स्तर में रूचिपूर्ण विकास के साथ–साथ स्थायीत्व भी प्राप्त होता है।

(2) परिचयात्मक ज्ञान प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहायक है।

(3) आधुनिक शैक्षिक व्यवस्था के अनुरूप है क्योंकि तथ्यात्मक ज्ञान तब प्रदान किया जाता है जब परिचयात्मक ज्ञान की संभावनायें नही होती।

(4) परिचयात्मक ज्ञान द्वारा इन्द्रियों की क्षमता विकसित होती है।

(5) शारीरिक एवं मानसिक क्रियाशीलता बढ़ती है।

(6) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है।

(7) संवेगात्मक स्थिरता तथा तर्कशक्ति का विकास होता है।

1.3.5 अनुशासन एवं विषय की प्रकृति तथा जाँच का स्वरूप

शिक्षा के बदलते परिदृश्य में अध्ययन विषय क्षेत्र के विकास के परिणामस्वरूप अनेक नवीन शब्दावलियों की व्याख्या में परिवर्तन आया है अतः अध्यापक, चिन्तक एवं शिक्षाविदों के अनुसार अनुशासन शिक्षा का साधन न होकर नवीन परिस्थितियों व विकास दृष्ट्या विषय क्षेत्रों के रूप में विषय–अध्ययन के रूप में समझने की आवश्यकता है। इस प्रकार अनुशासन समाज, राष्ट्र व विश्व के विकास से सम्बन्धित लगभग प्रत्येक पक्ष एवं आधारों पर विचार करता है।

शाब्दिक रूप से अनुशासन के लिए अंग्रेजी भाषा में Discipline शब्द प्रयुक्त होता है जो डिसारप्लिन से निर्मित है जिसका अर्थ है 'शिष्य'। अर्थात् छात्र के जीवन में जो आदेशित व्यवहार परिलक्षित होते थे वही अनुशासन है। अनुशासन का सामान्यतया अर्थ "बालक द्वारा विद्यालय के विषयों का पालन किया जाना है।"

टी.पी. नन के अनुसार, "अनुशासन का अभिप्रास अपनी प्रवृतियों, भावनाओं तथा शक्तियों को रोककर इस प्रकार नियंत्रित करना है कि विफलता, अव्यवस्था, प्रभावहीनता व अपव्ययता के स्थान पर सफलता, व्यवस्था, कार्यकुशलता तथा मितव्ययता प्रदान की जा सके। हमें छात्र को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी है जिससे छात्र उचित अनुचित में भेद कर उचित व्यवहार को अपना सके।"

बविट के अनुसार– "उच्चतर जीवन के लिए प्रतिदिन की जा रही समस्त क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आ जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुशासन ज्ञान के अंगों का वह पुंज है जिसे अधिगम, मानसिक प्रशिक्षण तथा उच्च स्तरीय अध्ययन एवं अनुसन्धान हेतु उपयुक्त प्रकार से नियमित एवं समूहित कर लिया गया हो।

वस्तुओं तथा घटनाओं के किसी विशिष्ट क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान के संगठन को अनुशासन कहा जाता है। इन वस्तुओं तथा घटनाओं के अन्तर्गत वे तथ्य, प्रदत्त, पर्यवेक्षण, अनुभूतियाँ आदि भी सम्मिलित रहते है जो उस ज्ञान के आधारभूत घटकों को निर्मित करते हैं। इस प्रकार अनुशासन को प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

टिप्पणी

(1) प्रत्येक अनुशासन की एक मान्य संरचना होती है।

(2) उसकी अपनी विषय वस्तु होती है तथा नवीन ज्ञान को समाहित करने के सम्बन्ध में निश्चित नियम होते हैं।

(3) प्रत्येक अनुशासन अपने अन्दर इतिहास व परम्परायें समाहित किये रहता है।

(4) प्रत्येक अनुशासन की अपनी अध्ययन व अनुसन्धान की परम्पराएँ होती हैं।

(5) प्रत्येक अनुशासन का अपना मूल्य एवं चिन्तन क्षेत्र होता है।

हरबर्ट क्लीबाई ने अनुशासन के प्रमुख लक्षणों में विश्लेषणात्मक सरलीकरण, संश्लेषणात्मक समन्वय एवं गत्यात्मकता के साथ–साथ निश्चित क्षेत्र विधि, इतिहास, परम्परा, संकल्पनात्मक एवं संश्लेषणात्मक दिशा को माना है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुशासन अकादमिक अध्ययन की शाखा के रूप में उपस्थित हुआ है। जैसे–समाजशास्त्र, गणितशास्त्र, मनोविज्ञान आदि। जो विभिन्न विश्वविद्यालय में अध्ययन करवायें जाते है। अनुशासन मुख्यतया सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के लिए, अनुसंधान व प्रयोग के लिए विषयविशेषज्ञों के समूह सहित निर्मित होता है। उदाहरणार्थ– कोई व्यक्ति विशेष किसी विशेष अनुशासन में अध्ययन कर रहा है तो वह उस क्षेत्र में अनुसंधान व प्रयोग भी कर सकता है व भविष्य में अपनी विषय–विशेषज्ञता हेतु उसी क्षेत्र विशेष का चयन भी कर सकता है। इस प्रकार अनुशासन अध्ययन उस विषय के नियमों व सिद्धान्तों को गम्भीरता से जानने के साथ–साथ उस विषय को प्रशिक्षण के लिए भी चयनित कर सकते हैं। अतः अनुशासन में–

1. विषय–विशेष का ज्ञान
2. सिद्धान्तों व संकल्पनाओं का ज्ञान
3. विशेष नियमों प्रविधियों का ज्ञान
4. अनुसन्धानार्थ विशेष वस्तुओं का ज्ञान
5. अनुसन्धानार्थ विशेष विधियों का ज्ञान
6. संस्थागत अभिव्यक्ति जो तदत् संस्था में अध्ययन करवाई जा रही है।
7. व्यावसायिक संगठन का ज्ञान आदि समाहित है।

विषय– विषय या अध्ययन क्षेत्र ज्ञान की एक शाखा है जो विद्यालय व विश्वविद्यालय में पढ़ाया जाता है। इसे अधिगम उपकरण भी कहा जा सकता है या वह क्षेत्र जिससे अधिकाय सम्बन्धित है। विषय वह क्षेत्र है जिससे अधिगम को विभाजित किया गया है।

इसे अनुशासन के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो एक क्रमबद्ध रूप से सूचनाओं को प्रेषित करता है। सामाजिक दक्षता के दृष्टिकोण से विद्यालयीय विषय का निर्माण छात्रों में नागरिकता के विकास के लिए अपेक्षित ज्ञान, कौशल तथा आर्थिक सामाजिक उत्पादकता को बनाए रखने व बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है।

टिप्पणी

जोनेंगी डेन्ग (Zongyi Dengd) के अनुसार, "एक विद्यालयीय विषय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सीखने के एक क्षेत्र को संदर्भित करता है जिससे शिक्षण व सीखने के लिए ज्ञान व अभ्यास के एक संस्थागत रूप से परिभाषित क्षेत्र का गठन होता है।" विद्यालीय विषय छात्र को संस्कृति समाज एवं आधारभूत मूल्यों का ज्ञान प्रदान करते है। विद्यालीय विषय सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित तक आत्म–निरीक्षण द्वारा व्यक्तिगत विकास की ओर ले जाते हैं।

अनुशासन एवं विषय में अन्तर

	विद्यालीय विषय	अनुशासन
शिक्षा के उद्देश्य के आधार पर अन्तर	समाजिक नागरिक बनाना मूलभूत कौशलों का विकास।	विशेष ज्ञान का विकास करना। अनुसंधानकर्ता, अकादमिक विशेषज्ञ तथा विषय विशेषज्ञ विकसित करना।
विषयवस्तु की प्रकृति	साधारण विचार व सूचनायें प्रदान करना	शिक्षाविदों के जटिल सिद्धान्तों का ज्ञान
पाठ्यक्रम निर्माण	अधिगमार्थी की आवश्यकता की पूर्ति, बाल केन्द्रित शिक्षण विधियों पर बल।	जटिल एवं व्यापक स्तर पर विशेष कौशलों के अध्ययन पर बल।
कौशल विकास	आधारभूत कौशल यथा– पढ़ना, लिखना व गणित संबंधी कौशलों का विकास।	विशेष कौशलों मुख्यतया व्यावसायिक कौशलों पर बल
कार्य क्षेत्र	विद्यालय तक सीमित	उच्च एवं उच्चतर स्तर तक शिक्षा।
विकासात्मक आयाम	विद्यालीय विषयों का अध्ययन किसी व्यक्ति के विकास में सर्वोपरि है।	अनुशासन अधिगम की यात्रा में विद्यालय स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक विकसित करना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यालीय विषय व अकादमिक अनुशासन से किस स्तर तक भिन्न है किंतु साथ ही दोनों में सम्बन्ध भी है। विद्यालीय विषय का उद्देश्य, विषय–वस्तु तथा विकासात्मक पहलू अकादमिक अनुशासन की ही देन हैं। विषय की संरचना तथा प्रक्रिया भी अनुशासन द्वारा ही निर्धारित होती है। विषयों को वैद्य एवं विश्वसनीय संविधान अनुशासन द्वारा ही प्राप्त होता है। छात्र सामान्य विचार एवं विधियों का अध्ययन विद्यालीय विषयों में करते है जबकि अकादमिक अनुशासन में उन्हीं विचारों एवं विधियों का अध्ययन विषय विशेषज्ञों द्वारा करवाया जाता है। इस प्रकार विद्यालीय विषयों की सरलता अकादमिक अनुशासन की जटिलता में परिवर्तित हो जाती है। विद्यालीय विषय, विद्यालय में पढ़े जाने वाले ज्ञान के क्षेत्र को संदर्भित

करता है जिसे Leasning tool या मापदण्ड भी कहा जाता है जिसका अधिगम हम करते हैं। विषय एक व्यवस्थित रूपरेखा का गठन करता है जो अर्थ प्रदान करता है व पाठ्यक्रम सामग्री, शिक्षण व अधिगम को आकार प्रदान करता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

4. ज्ञान के कौन–से मुख्य तीन अवयव माने गए हैं?

   (क) सत्य, असत्य और अविश्वास (ख) सत्य, अभ्यास और संवाद

   (ग) सत्य, विश्वास और औचित्य (घ) सत्य, कर्म और जिज्ञासा

5. "सत्य दृश्य जगत है जिसे अनुभव से जानना ज्ञान है।" यह किसका कथन है?

   (क) अरस्तु (ख) सुकरात

   (ग) प्लेटो (घ) उपर्युक्त सभी

6. ज्ञान को कितने वर्गों में विभाजित किया गया है?

   (क) चार (ख) पांच

   (ग) दो (घ) तीन

1.4 ज्ञान का समाजशास्त्र

ज्ञान का समाजशास्त्र, विचारों तथा सामाजिक संदर्भ के बीच संबंध का अध्ययन है इसके अंतर्गत ज्ञान उत्पन्न होता है यह आधारभूत रूप से समाजशास्त्र का विषय नहीं है किंतु समाज के आयामों संस्कृति सभ्यता का सीधा संबंध ज्ञान से है, जिसमें ज्ञान–विज्ञान, अज्ञानता, ज्ञान–अंतराल या ज्ञान निर्माण की अंतर्निहित विशेषताओं का अध्ययन सम्मिलित है। संकल्पनात्मक विचार, भाषा तथा तर्क सदैव सामाजिक संकट तथा उत्कृष्टता दोनों से प्रभावित रहते हैं। ज्ञान का समाजशास्त्र ज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग, भाषा, संकल्पना तथा वर्गीकरण की परीक्षा को सामाजिक स्थितियों में प्रयुकत करता है। ज्ञान का समाजशास्त्र समाजशास्त्र के अनुशासन के अंतर्गत एक उपक्षेत्र है, जिसमें शोधकर्ता एवं सिद्धांतकार सामाजिक रूप से स्थापित प्रक्रियाओं के रूप में ज्ञान पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यह पारस्परिक वार्तालाप, जाति, वर्ग, राष्ट्रीयता, संस्कृति, धर्म आदि द्वारा मौलिक स्वरूप को प्राप्त करता है।

1.4.1 ज्ञान के विभिन्न प्रकारों का पाठ्यचर्या में स्थान

आज के प्रत्येक बुद्धिजीवी वर्ग का व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रयासरत है। यही प्रयास मानव को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाते हैं। ज्ञान मानव जीवन को विकसित करने, समाज को उन्नत करने, राष्ट्र को विकास की ओर अग्रसर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह ज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्व संबंधी भावी जीवन संबंधी अतिरिक्त शक्तियों को विकसित करने संबंधी तथा मानवीय गुणों के विकास संबंधी कार्यों में महती भूमिका का निर्वहन करता है। उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित पाठ्यक्रम में विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के ज्ञान को स्थान दिया गया है। जैसे– प्रस्तावक ज्ञान, प्रक्रियात्मक ज्ञान तथा परिचयात्मक ज्ञान के रूप में।

टिप्पणी

प्रस्तावक ज्ञान : प्रस्तावक ज्ञान के अंतर्गत किसी वस्तु या व्यक्ति के संदर्भ में तथ्य निश्चित किए जाते हैं। इस तथ्य को अनेक प्रयोग, मानयताओं के आधार पर विभाजित किया जाता है, इस तथ्य की जांच भी संभव होती है। इसे भाषा द्वारा वर्णित किया जाता है, उचित अनुचित की संभावना के साथ क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण होता है।

शिक्षा व्यवस्था अर्थात पाठ्यक्रम में तथ्यात्मक ज्ञान महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि तथ्यात्मक ज्ञान के अंतर्गत तथ्यों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण किया जाता है। प्रत्येक शिक्षक की कुशलता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह अपने ज्ञान को किस प्रकार क्रमबद्ध रूप से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है। पाठ्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान से संबंधित समस्त तथ्य, गणित के समस्त सूत्र, भाषा संबंधी समस्त सूत्र, भाषा की व्याकरण, ज्ञान का एकत्रीकरण (पत्र–पत्रिकाओं आदि के माध्यम से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है) आदि तथ्यात्मक ज्ञान की ही देन है जिसे शिक्षक कक्षा कक्ष में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है। $2 + 2 = 4$ की अवधारणा को सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में यह अवधारणा पूर्ण रूप से प्रामाणिक एवं सत्य है। यह तथ्या आत्मज्ञान की श्रेणी में आता है।

शैक्षिक क्षेत्र में होने वाले विभिन्न प्रकार के अनुसंधान एवं उनसे प्राप्त परिणामों का उपयोग सार्वभौमिक रूप से करने में तत्यात्मक ज्ञान की महत्वपूर्ण उपयोतगिता है। विद्यालय व्यवस्था में तथ्यात्मक ज्ञान का उपयोग व्यापक स्तर पर किया जा सकता है। विद्यालय में निर्धारित समय सरणी विद्यालय में प्रचलित नियमों का निर्धारण और विद्यालय व्यवस्था के समस्त शैक्षिक क्रियाकलापों का आधार तथ्यात्मक ज्ञान ही होता है। विद्यालय में विभिन्न विषयों का ज्ञान जो सैद्धांतिक रूप से छात्रों को दिया जाता है वह तथ्यात्मक ज्ञान के रूप में ही होता है। अतः कहा जा सकता है कि विद्यालय व्यवस्था का प्रमुख आधार तथ्यात्मक ज्ञान ही होता है। पाठ्यक्रम एवं शिक्षा के निर्माण में भी यह सहायक है जो पाठ्यश्म का, छात्रों और शिक्षकों के लिए अधिगम प्रक्रिया का आधार बनता है। अतः पुस्तकों का स्वरूप निश्चित करना, किस स्तर पर कौन–कोन सी पुस्तकों का चयन किया जाए, किन विषयों का शिक्षण छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है, यह निर्धारित करना तथ्यात्मक ज्ञान पर ही आधारित होता है। इस प्रकार शिक्षा क्रम एवं पाठ्यक्रम को व्यवस्थित एवं उपयोगी स्वरूप प्रदान करने में तत्यात्मक ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा व्यवस्था अर्थात पाठ्यक्रम में तथ्यात्मक ज्ञान महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि तथ्यात्मक ज्ञान के अंतर्गत तथ्यों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण किया जाता है। प्रत्येक शिक्षक की कुशलता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह अपने ज्ञान को किस प्रकार क्रमबद्ध रूप से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

प्रक्रियात्मक ज्ञान– सामान्यतः प्रक्रियात्मक ज्ञान का संबंध मानव की उन क्रियाओं से होता है जिन्हें वह अपने व्यावहारिक जीवन में सामान्य एवं विशेष रूप से संपन्न करता है जैसे एक व्यक्ति साइकिल चलाना जानता है, नदी में तैरना जानता है, आदि। व्यावहारिक ज्ञान की दृष्टि से तैरना, साइकिल चलाना आदि प्रक्रियात्मक या कौशलात्मक ज्ञान की श्रेणी में आते हैं। कौशलात्मक ज्ञान के प्रमुख उदाहरण भागना, कूदना, नाचना, साइकिल चलाना, गाना, बजाना, हारमोनियम बजाना, कार चलाना आदि आते हैं। कौशलात्मक ज्ञान का क्षेत्र या प्रक्रियात्मक ज्ञान का क्षेत्र व्यापक रूप से माना जाता है, प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में कुशलताओं को प्राप्त करने का प्रयास करता

टिप्पणी

है। व्यक्ति अपने स्वभाव के कारण अपनी रुचि की गतिविधियों को सीखने का प्रयास करता है। पाठ्यक्रम में संगीत एवं तकनीकी के क्षेत्र में प्राप्त ज्ञान प्रक्रियात्मक ज्ञान की क्षेणी में आता है। शैक्षिक क्षेत्र में प्रक्रियात्मक ज्ञान की आवश्यकता शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भी होती है। सूक्ष्म शिक्षण द्वारा शिक्षकों में शिक्षण क्वेश्चनों का विकास होता है। यह प्रक्रियात्मक पाठ्यक्रम पर ही आधारित होता है। यथा– प्रस्तावना कौशल, प्रश्न–कौशल, व्याख्या कौशल, उदाहरण कौशल, पुनर्बलन कौशल इत्यादि। इन कौशलों के द्वारा ही एक शिक्षक कुश्लतापूर्वक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को संपन्न कर सकता है। भाषाई विकास एवं भाषाई कौशलों के विकास में भी प्रक्रियात्मक ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रक्रियात्मक ज्ञान के क्षेत्र में बालकों में प्रमुख भाषाएं कौशल श्रवण पठन लेखन वाचन आदि का विकास किया जाता है जो कि उनको भाषा के क्षेत्र में योग्य बनाता है। साथ ही इंजीनियरिंग आदि का कार्य भी प्रक्रियात्मक ज्ञान पर ही आधारित होते हैं। शारीरिक विकास के लिए की गई शारीरिक क्रियाएं प्रक्रियात्मक ज्ञान का ही एक भाग है– दौड़ना, कूदना, व्यायाम करना आदि प्रक्रियात्मक ज्ञान के अंतर्गत आते हैं। इन कौशलों को गत्यात्मक कौशल भी कहते हैं। इन कौशलों का विकास ही शारीरिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। मनोरंजन के क्षेत्र से लेकर ज्ञान कक्षा, स्वास्थ्य के क्षेत्र में दृष्टिगोचर विकास क्रियात्मक ज्ञान का ही प्रभाव है। इस प्रकार राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय विकास के मूल में प्रक्रियात्मक ज्ञान का ही प्रभाव देखा जा सकता है। अतः कौशल आत्मज्ञान सर्वांगीण विकास का प्रमुख साधन माना गया है। स्पष्ट है कि प्रक्रियात्मक ज्ञान के दो रूप हैं– शरीर संबंधी, उपकरण संबंधी।

अतः स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अभिवृद्धि के विकास से संबंधित समस्त पाठ्यक्रम शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण, प्रयोग, शैक्ष तकनीकी के प्रयोग, समस्त कौशल आत्म ज्ञान आदि प्रक्रियात्मक ज्ञान का ही भाग है।

परिचयात्मक ज्ञान : परिचयात्मक ज्ञान का संबंध सामान्य रूप से उस ज्ञान से होता है। इसका परिचय हम प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार के ज्ञान में इंद्रियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इंद्रियां अनुभव के आधार पर हम जिस ज्ञान के संबंध में अनुभव करते हैं उसे परिचय आत्मज्ञान का रूप में स्वीकार करते हैं। हम किसी वस्तु को देखकर यह बता सकते हैं कि यह किस प्रकार की वस्तु है, जैसे– एक बार हाथी या कुत्ते को देखता है तो यह बता सकता है कि हाथी की तुलना में कुत्ता छोटा जानवर है। इस प्रकार हमें अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं के संबंध में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान को परिचयात्मक ज्ञान के रूप में जाना जाता है।

परिचय आत्मज्ञान का क्षेत्र अन्य ाान की तुलना में अधिक विस्तृत है। परिचय आत्मज्ञान को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के ज्ञान में समय भी कम लगता है। इसे इंद्रिय संबंधी परिचयात्मक ज्ञान, प्रत्यक्ष अनुभव संबंधी परिचयात्मक ज्ञान, स्मृति आधारित परिचयात्मक ज्ञान, आत्म सजगता संबंधी परिचयात्मक ज्ञान इत्यादि भागों में बांटा जा सकता है, जो तर्क एवं चिंतन आत्म सजगता संबंधी ज्ञान पर आधारित होते हैं। पाठ्यक्रम में संपर्क आधारित पाठ्यक्रम, इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान, अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान, स्मृति आधारित ज्ञान, इंद्रिय विषयों से संबंधित ज्ञान, भौतिक जगत से संबंधित ज्ञान, संवेगों से संबंधित ज्ञान, तर्क एवं विचार पर आधारित ज्ञान, अवधारणात्मक ज्ञान, स्वविवेक से सृजित ज्ञान आदि पचियात्मक ज्ञान की श्रेणी में आते हैं।

टिप्पणी

परिचयात्मक ज्ञान ही शिक्षण विधियों का आधार है, स्थाई अधिगम का स्रोत, प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का स्रोत, रुचिपूर्ण अधिग करने में सहायक, आधुनिक शैक्षिक व्यवस्था के अनुरूप, इंद्रियों की क्षमता को विकसित करने में सहायक, शारीरिक और मानसिक क्रियाशीलता पर बल देने वाला, वैज्ञज्ञनिक दृष्टिकोण का विकास करने वाला, तर्कशक्ति का विकास करने वाला, समायोजन क्षमता के विकास में सहायक है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि परिचयात्मक ज्ञान का शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतयक्ष ज्ञान की तुलना में कोई विज्ञान महत्वपूर्ण नहीं होता क्योंकि छात्र प्रत्येक क्रिया को प्रत्यक्ष रूप से देखना चाहता है। इस प्रकार छात्रों उन क्रियाओं में अधिक रुचि रखता है जो उस क्रिया को विशेष रूप से किसी प्रत्यक्ष वस्तु का ज्ञान कराती है। उदाहरणार्थ एक विद्यालय में चित्र के माध्यम से राष्ट्रीय पशु शेर के बारे में बताया जाता है। वहीं दूसरी ओर दूसरे विद्यालय में छात्रों को चिड़ियाघर में ले जाकर शेर को दिखाया जाता है तो दूसरे विद्यालय के छात्र प्रथम विद्यालय की तुलना में शेर के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। आवश्यकतानुसार शारीरिक विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे। इस प्रकार परिचयात्मक ज्ञान प्रत्येक दशा में शैक्षिक व्यवस्था छात्र विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है, इसका विशेष स्थान है।

इस प्रकार परिचयात्मक ज्ञान, कौशलात्मक ज्ञान, प्रस्तावक ज्ञान के आधार पर पाठ्यक्रम चिंतनशील मानव के लिए आधार प्रस्तुत करता है। उसकी बुद्धि को सत्य–असत्य तथा व्यक्ति की पहचान करना सिखाता है। पाठ्यक्रम समस्त छात्रों की आवश्यकता और योग्यताओं, क्षमताओं, अभिव्यक्ति आदि की तृप्ति करता है। छात्रों के सामाजिक, प्राकृतिक, प्राकृतिक विज्ञान व कला धर्म के साथ परस्पर घनिष्ठ संपर्क मूल्यों का निर्धारण करने के योग्य बनाता है। ऐसे वातावरण का सृजन करता है जहां पर चिंतन, तर्क के आधार पर आधारित है।

निर्णयों का विकास संभव हो सके तथा छात्रों के प्रदेश के संबंध बनाने के लिए तैयार करता है। सत्य, सेवा, त्याग, परोपकार जैसे नैसर्गिक गुणों को विकसित कर उन्हीं के अनुसार आचरण कराना पाठ्यक्रम का उद्देश्य रहता है, जो उन्हें राष्ट्रीय विरासत को समझने योग्य बनाता है। पाठ्यक्रम को बाल केंद्रित विषय केंद्रित अनुभव केंद्रित शिल्पकला केंद्रित कार्य केंद्रित बनाया जाता है जिससे कि विभिन्न पृष्ठभूमि से आने वाले बालक अधिगम की प्राप्ति कर सकें। तथापि ज्ञान के विभिन्न प्रकारों का अधिगम अवसरों की समानता पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्रत्येक बालक की रुचि, अनुभवजन्य साक्ष्य का अभाव, विद्यालय विषयों की विभिन्नता, लिंग भेद, राष्ट्रीयता, परिवार का वातावरण, सामाजिक वर्ग, उपलब्धि, आय, स्वास्थ्य, राजनैतिक भागीदारी, प्रयासों का प्रभाव, इच्छाशक्ति का प्रभाव, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, राजनैतिक आदि विभिन्न परिप्रेक्ष्य का पूर्णतः प्रभाव रहता है। प्रत्येक बालक अपनी बौद्धिक स्थिति के अनुसार प्रस्तावक ज्ञान, कौशलात्मक ज्ञान, अथवा प्रक्रियात्मक ज्ञान में अपनी रुचि स्थापित करते हैं तथा रुचि अनुसार उस क्षेत्र में उत्तरोत्तर अन्नति करते हैं।

1.4.2 शिक्षा के सामाजिक आधार

शिक्षा के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक आधारों के महत्व के समान शिक्षा के सामाजिक आधारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकता और आकांक्षाओं तथा दर्शकों को आधार

टिप्पणी

बनाकर की गई व्यवस्था है। समाज व्यक्तियों का एक संगठन है। यह संगठन व्यक्तियों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। यद्यपि समाज का निर्माण व्यक्ति से मिलकर होता है फिर भी समाजवादियों के अनुसार व्यक्ति के पीछे समाज की आवश्यकता, आकांक्षाओं एवं आदर्शों को अधिक महत्व दिया जाता है। विद्वानों के अनुसार समाज की श्रेष्ठता किसी व्यक्ति पर किसी भी उत्तरदायित्व को बलपूर्वक नहीं थोप सकती फिर भी समाज सामाजिक बंधनों का एक ऐसा जाल है जो स्थिर न रहकर सदैव बदलता रहता है अर्थात समाज गतिशील है किंतु समाज के कुछ राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विचारधारा होती हैं, जिनके अनुसार वह व्यक्ति की समस्त शक्तियों के विकास हेतु ऐसे अवसर प्रदान करता रहता है, कि विकसित होने के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति उसे सबल, सुदृढ़, शक्तिशाली बनाने में अपना यथाशक्ति योगदान देता रहे।

मेकाइवर के अनुसार, "मनुष्य समाज पर अपनी सुरक्षा, आराम, पालन–पोषण, शिक्षा तथा अन्य महत्वपूर्ण अवसरों और सेवाओं के लिए निर्भर रहता है। यह समाज पर अपने विचारों, स्वप्नों तथा आकांक्षाओं एवं मन तथा शरीर की बहुत सी व्याधियों के लिए भी निर्भर है। उसका समाज में जन्म लेना ही समाज की आवश्यकताओं को अपने साथ लाता है।"

समाज : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही विकसित होता है। बिना समाज के व्यक्ति का कोई जीवन ही नहीं है। यही कारण है कि प्रत्येक देश तथा काल में व्यक्ति ने अपने मित्रों, साथियों के संपर्क में रहने की इच्छा प्रकट की। मानव ने अपने सामाजिक विकास में सदैव मित्रता, सहयोग, नेतृत्व की इच्छा प्रकट की है। यह इच्छा केवल सामाजिक संपर्क के द्वारा ही पूरी हो सकती है। अतः व्यक्ति तथा समूह में सदैव अंतःक्रिया हुई, हो रही है और सदैव होती रहेगी। इस परस्पर होने वाली अंतःक्रिया में सामाजिक प्रक्रिया तथा सामाजिक तत्व सम्मिलित होते हैं। सभी सामाजिक तत्व समाजशास्त्र की विषय–वस्तु के अंतर्गत आते हैं।

समाजशास्त्र मानव पर प्रभाव डालने वाले सभी तत्वों का अध्ययन करता है। जैसे– रीति–रिवाज,ख परंपराएं, सामाजिक संस्थाएं, भौगोलिक परिस्थितियां, सहयोग, सहानुभूति, धर्म, राज्य, जाति, समुदाय आदि समाजशास्त्र संपूर्ण मानव संस्कृति का अध्ययन करता है। शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र के उद्देश्यों को शिक्षित प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाए। अतः यह विज्ञान समाज की संपूर्ण संस्थाओं जैसे– परिवार, विद्यालय, समुदाय धर्म, राज्य तथा समाचार–पत्र, वीडियो आदि का अध्ययन करके व्यक्ति को एक श्रेष्ठ और सामाजिक प्राणी बनाने के लिए शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धतियां तथा अन्य सभी अंगों को निर्धारित करता है। इस प्रकार शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक विकास और उसकी उन्नति के लिए उन सभी सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं सामाजिक अंतर क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनको जाने बिना शिक्षा के स्वरूप तथा समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता।

ओटावे के अनुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र का आरंभ इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए होता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया है जो समाज में होती है और वह समाज, जिसमें यह शैक्षिक प्रक्रिया होती है, वह अपनी प्रकृति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षण पद्धतियों को निर्धारित करता है।"

टिप्पणी

गुडे के विचारानुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति सामाजिक समूह में किस प्रकार रहते हैं, वह कैसी शिक्षा प्राप्त करते हैं तथा सामाजिक समूहों में कुशलतापूर्वक रहने के लिए उनको किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है।"

शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार बालकों में जनतांत्रिक भावनाओं, सामाजिक गुणों, सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है, जिससे वे भी समाज के साथ अपना व्यवस्थापन स्थापित कर सके। अपने कर्तव्यों, अधिकारों को समझते हुए सामाजिक उत्तरदायित्व को निभा सके और अपने व्यक्तित्व को विकसित करते हुए समाज राष्ट्र विश्व का कल्याण कर सकें। इस प्रकार बालकों को नागरिकता की शिक्षा देना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन जाता है जिसमें शैक्षिक समाजशास्त्र अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और परिणामस्वरूप एक नवीन सामाजिक व्यवस्था का उदय हुआ जिसके निर्माण एवं परिवर्तन की प्रक्रियागतिमान है। इस नवीन भारत के निर्माण में भारतीय आध्यात्मिक चिंतकों, समाजसुधारकों, राजनीतिज्ञों एवं मनीषियों के साथ–साथ पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति ने भी बहुत अधिक योगदान दिया है। पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप भारतवासियों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण में अनेक परिवर्तन हुए तथा परंपरागत मूल्यों के प्रति उदासीनता उत्पन्न होने लगी और नवीन मूल्यों का विकास होने लगा। भारतीय मनीषियों ने भारतीय शिक्षा में परंपरागत एवं नवीन मूल्यों का समन्वय करने का प्रयास किया है, क्योंकि भारतीय जीवन एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों पर इसका प्रभाव पड़ा। आधुनिक भारतीय समाज के नवीन मूल्यों के प्रतिपादन में अंग्रेजी शासन अंग्रेजी शिक्षा का विशेष योगदान रहा। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय समाज में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उदाहरणार्थ– धर्म एवं जाति के आधार पर उत्पन्न विभेद को समाप्त करने, सभी नागरिकों को समान समझने, मजदूरों एवं किसानों की दशा में सुधार करने, स्त्रियों की स्थिति को सुधारने और समुचित सम्मान प्रदान करने, प्रति–प्रथा की बुराइयों को समाप्त करने, आर्थिक एवं तकनीकी विकास करने, क्षेत्रीयता, प्रांतीयता की भावना को दूर करने तथा समाज में फैली कुरीतियां आदि दूर करने के लिए प्रयास किए गए। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनों ने भारतीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया तथा एक नवीन आधुनिक समाज की आधारशिला रखी।

संस्कृति : साधारण बोलचाल में संस्कृति का अर्थ सुंदर परिष्कृत रुचिकर या कल्याणकारी व्हार या गुणें से लिया जाता है, परंतु यह संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा नहीं है। समाजशास्त्र में संस्कृति की निश्चित परिभाषा की जाती है। यथा–

टायलर के मत में, "संस्कृति एक जटित संपूर्ण है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएं, रीति–रिवाज, विधियां और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएं एवं आदतें सम्मिलित हैं।"

व्हाइट के अनुसार, "संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरंतर, संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।"

जोसेफ पीपल के मत में, "संस्कृति प्राणी के सभी प्राकृतिक वस्तुओं और उन उपहारों तथा गुणों का सार है जो मनुष्य से संबंध रखते हुए भी उनकी आवश्यकताओं की तात्कालिक क्षेत्र से परे हैं।"

टिप्पणी

इस प्रकार संस्कृति में वह सब सम्मिलित है, जो मानव ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में आज तक अर्पित किया है।

मैकाइवर और पेज के शब्दों में, "यह मूल्यों, शैलियों, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है। संस्कृति हमारे रहने और सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्य–कलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"

संस्कृति में मनुष्य निर्मित सभी वस्तुएं सम्मिलित होती हैं, जिनमें मनुष्य संशोधन कर सकता है। नए तत्वों के समावेश से संस्कृति की जटिलता और गुण बढ़ते हैं, यह पीढ़ी दर पीढ़ी मानसिक रूप से संचारित होती है और केवल मानव समाजों में ही पाई जाती है, संस्कृति आदर्शात्मक स्थिति होती है, और कुछ आवश्यकताओं को पूरा भी करती है। संस्कृति में उपयोजन की योग्यता होती है अर्थात बाहरी शक्तियों से उसका उपयोजन होता रहता है, परंतु विकसित होने पर प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव घटता जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृति के विभिन्न अंगों का भी विकास होता रहता है और उनमें आंतरिक उपयोजन की जरूरत पड़ती है। संस्कृति में एकीकृत होने के गुण भी हैं।

इस प्रकार संस्कृति सामाजिक, आदर्शात्मक और सीखी हुई होती है तथा मनुष्य की बहुत आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। उसमें संचार, उपयोजन तथा एकभूतता के गुण होते हैं। वह मनुष्य का विशेष गुण है, उसकी सामाजिक विरासत ही उसकी श्रेष्ठता का प्रतीक है।

बोगाड्र्स के अनुसार, "संस्कृति एक समूह के समस्त रीति–रिवाजों, परंपराओं, प्रचलित व्यवहार, प्रतिमानों मानव से बनती है संस्कृति एक समूह का मूलधन है। यह मूल्यों की ऐसी पूर्ववर्ती समष्टि है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है। एक माध्यम है जिसमें, व्यक्ति पैदा होते हैं और विकसित होते हैं।"

अलैग्जैंडर ए. गोल्डनवाइजर ने संस्कृति में निम्नलिखित तत्व माने हैं– हमारी प्रवृत्तियां, विश्वास, विचार, हमारे निर्णय और मूल्य हमारी संस्थाएं राजनीतिक और कानूनी, धार्मिक और आर्थिक, हमारी नैतिक संगीत और शिष्टाचार के नियम हमारी पुस्तकों में संस्कृति के अंतर्गत परीगणित होते हैं।

जे एल. गिलिन और जे.पी. गिलिन ने एक सामाजिक समूह के सामान्य सीखे हुए व्यवहार को संस्कृत कहा है। इस प्रकार संस्कृति में वह सब कुछ सम्मिलित है जो कुछ मनुष्य समाज में सीखता है। जैसे– ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, कानून, नैतिकता, रीति–रिवाज, व्यवहार के तौर–तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा आदि।

स्पष्ट है कि संस्कृति के दो प्रकार होते हैं– भौतिक और अभौतिक संस्कृति।

भौतिक संस्कृति में वे वस्तुएं आती हैं, जो कि मनुष्य के व्यवहार में स्पष्ट होती है। जैसे– रहने के मकान, घरों का सामान, विविध प्रकार के उपकरण, औजार, हथियार, बर्तन, आवागमन के साधन इत्यादि।

अभौतिक संस्कृति के अंतर्गत अमूर्त वस्तुएं सम्मिलित होती हैं। यथा– विभिन्न रीति–रिवाज, रूढ़ियां, विधियां, कलाएं, ज्ञान और धर्म इत्यादि।

टिप्पणी

शिक्षा के दृष्टिकोण से संस्कृति और शिक्षा में घनिष्ठ संबंध है। शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करना है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों सालों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नीवन पीढ़ी को सौंप दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है। इस सांस्कृतिक विरासत से उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने के निश्चित प्रतिमान प्राप्त करने के मूल्य मिल जाते हैं और साथ ही उसे नवीन प्रयोग करने पड़ते हैं। इस प्रकार संस्कृति का मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व है। संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा से मनुष्य प्राकृतिक परिवेश में समायोजन कर सकता है, सामाजिक परिवेश से समायोजन कर सकता है, विभिन्न रीति–रिवाजों, मूल्यों, व्यवहार के प्रतिमान से परिचित हो सकता है, उन प्रतिमानों के अनुसार अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, सौंदर्यात्मक विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। समाज के आदर्शों, सिद्धांतों विश्वासों को जीवन में अपनाकर सुसंस्कृत व्यक्ति बन सकता है।

आधुनिकता : आधुनिकता एक ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन है जो परंपरावादी समाज को विकसित आर्थिक रूप से संपन्न और राजनीतिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक स्थर समाज में परिणित करता है।

आधुनिकता की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया आधुनिकीकरण कहलाती है। यह प्रक्रिया परंपरागत समाज को एक ऐसे समाज में परिवर्तन करने का प्रयास करती है जिसका आधार विज्ञान तथा तकनीकी हो। यह प्रक्रिया परंपरावादी समाज राष्ट्र को सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, प्राद्योगिक, राजनीतिक, संस्कृति एवं शिक्षा के क्षेत्र में नवीनता की ओर बढ़ाती है। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के द्वारा भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में सकारात्मक परिवर्तन किए जाते हैं अर्थात इस प्रक्रिया में प्राचीन मूल्यों सहित नवीन परिवर्तन की ओर ले जाना है, मुख्यतः आधुनिकीकरण को पश्चिमीकरण, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण, लोकतांत्रिकरण, शिक्षा के व्यवसायीकरण, नवीन–सामाजिक एवं राजनीतिक पद्धतियों का निर्माण तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आदि के संदर्भ में व्यक्त किया जा सकता है।

श्यामचरण दूबे के अनुसार, "आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जो परंपरागत या अर्द्धनपरंपरागत अवस्था में प्रौद्योगिकी के किन्हीं इच्छित प्रारूपों तथा उनसे जुड़ी हुई सामाजिक संरचना के स्वरूपों, मूल्यों, प्रेरणाओं और सामाजिक आदर्श नियमों की ओर से होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करती है।"

मूल के अनुसार, "आधुनिकीकरण का अर्थ ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन है जो परंपरागत समाज को विकसित, आर्थिक रूप से संपन्न और राजनीतिक रूप से अपेक्षाकृत स्थिर समाज में परिणत करता है।"

डेनियल लर्नर के अनुसार, "आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसका संबंध मुख्य रूप से विचारों एवं मनोवृत्तियों के तरीकों में बदलाव, नगरीकरण में वृद्धि,

साक्षरता का बढ़ना, प्रति व्यक्ति आय का अधिक होना तथा राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि जैसे परिवर्तन से होता है।"

टिप्पणी

सी.ई. ब्लैक के अनुसार, "आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिससे ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न संस्थाएं तेजी से बदलती हुई नई जिम्मेदारियों के साथ अनुकूलित होती हैं जिसमें वैज्ञानिक प्रगति से जुड़ी अपने परिवेश पर नियंत्रण की क्षमता वाले मनुष्य के ज्ञान में अभूतपूर्व वृद्धि परिलक्षित होती है।"

आधुनिकीकरण (आधुनिकता की विशेषताएं)

1. आधुनिकीकरण परिवर्तन की सार्वभौमिक प्रक्रिया है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में होती है।
2. आधुनिकीकरण (आधुनिकता) विज्ञान और प्रौद्योगिकी विकास की आत्मा है। आधुनिकता से भिन्न प्रकार के ज्ञान और अनुभव में वृद्धि होती है।
3. आधुनिकीकरण में नगरीकरण में वृद्धि, समानता, स्वतंत्रता तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है।
4. आधुनिकता आर्थिक तथा राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि करती है।
5. आधुनिकता की प्रक्रिया में प्राचीन प्रथाओं, रूढ़ियों तथा मूल्यों का विरोध होता है अतः आधुनिकीकरण में व्यावहारिक विज्ञान का विकास होता है।
6. आधुनिकीकरण में नवीन विचारों को स्वीकर किया जाता है।
7. स्त्रीतर बहुमुखी शिक्षा का रूप है।
8. एक क्रियात्मक एवं यथार्थवादी दृश्टिकोण है।

आधुनिकीकरण के क्षेत्र : प्रत्येक क्षेत्र में जहां प्रौद्योगिकी नवीनता नवाचार इत्यादि को प्राचीन मूल्यों के साथ स्वीकार किया जाता है उस प्रत्येक क्षेत्र में आधुनिकीकरण का प्रयोग होता है। यह सभी क्षेत्र अंतर संबंधित है अर्थात इन सभी क्षेत्रों का आपस में कोई न कोई संबंध रहता ही है किंतु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सभी एक–दूसरे को सहयोग करते हैं।

आधुनिकीकरण के निम्नलिखित क्षेत्र हैं–

1. सामाजिक
2. आर्थिक
3. राजनीतिक
4. शैक्षिक
5. सांस्कृतिक
6. कलात्मक इत्यादि।

आधुनिकीकरण व शिक्षा : शिक्षा एवं आधुनिकीकरण का परस्पर गहरा संबंध है। दोनों विभिन्न क्षेत्रों में एक–दूसरे की सहायता कराते हैं। शिखा आधुनिकीकरण में सहायक होती है और आधुनिकीकरण शिक्षा को उत्तम बनाने में सहायता प्रदान करता है। शिक्षा प्रभावशाली आधुनिकीकरण का साधन है, यदि समाज को आधुनिक बनना है तो स्वयं को शिक्षित बनाना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा का तेजी से विस्तार

टिप्पणी

अनिवार्य है। शैक्षिक मंथन द्वारा ही बौद्धिक प्रतिभाओं का निर्माण संभव है अतः शिक्षा का दूसरा नाम ही मानवीय संसाधनों का विकास है। यह आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी तथा अन्य सामाजिक क्षेत्रों में कुशल व्यक्तियों का निर्माण करती है। अपनी रचनात्मक योग्यताओं तथा उत्पादक प्रयासों से राष्ट्रीय धन की वृद्धि में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। इस प्रकार शिक्षा की गति आधुनिकीकरण के स्तर की ओर इंगित करती है।

कोठारी आयोग के अनुसार, "आधुनिकीकरण की प्रगति प्रत्यक्ष रूप से शैक्षिक विकास की गति के साथ संबंधित है और जल्दी से आधुनिक बनाने का एक सुनिश्चित साधन यह है कि शिक्षा का विस्तार किया जाए, शिक्षित एवं कुशलता प्राप्त नागरिकों का निर्माण किया जाए और पर्याप्त संख्या में कुशल प्रतिभाशाली व्यक्तियों का प्रशिक्षण किया जाए।"

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि करने के लिए शिक्षा के उद्देश्यों में उपादेयता में वृद्धि, सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति, जिज्ञासा को जागृत करना, नवीन मूल्यों को विकसित करना, लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास करना, नेतृत्व का विकास करना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा प्रयोगात्मकता बढ़ाना, व्यक्तितव का विकास करना आदि उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।

उद्देश्यों के अनुसार पाठ्यक्रम की दृष्टि से पाठ्यक्रम उसी प्रकार का निश्चित किया जाना चाहिए जिससे उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल हो। यथा– व्यापक एवं विद्यार्थी केंद्रित पाठ्यक्रम की उपादेयता में वृद्धि हों, आधुनिकीकरण की गति में सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों का विकास प्रत्येक स्तर पर किया जाए। समुदासय केंद्रित पाठ्यक्रम से स्थानीय आवश्यकताओं की तथा पर्यावरण की मांग के अनुसार शिक्षा दी जा सके। सामाजिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने वाला संयुक्त पाठ्यक्रम रखा जाना चाहिए, जो रुचिकर भी हो तथा जिसका आधार वैज्ञानिक हो। सहिष्णुता उदार मानसिकता, विश्व व्यापक सहयोग और जीवन की बदलती हुई स्थितियों में समायोजन की योग्यता को विकसित करने के लिए विज्ञान जैसे विषय पढ़ाए जाने चाहिए। वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज की जानी चाहिए तथा उनका विकास होना चाहिए। शिक्षा उत्तम व्यवसाय को प्रदान करने वाली होनी चाहिए अतः बहुउद्देश्यीय विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करवाया जाना चाहिए, जिससे छात्रों का समायोजन सरलता से हो। नवीन पक्षों पर भी बल दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण की प्रकृति को सीधा शैक्षिक प्रगति के साथ संबंधित किया जाना चाहिए। तेजी से आधुनिकीकरण का यही एक निश्चित मार्ग है कि शिक्षा का विस्तार किया जाए। शिक्षित एवं कौशल संपन्न नागरिकों का निर्माण किया जाए और पर्याप्त संख्या में सक्षम बौद्धिक व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जाए। बौद्धिक व्यक्ति समाज के सभी वर्गों के लिए चुने जाएं परंतु आकांक्षाएं सदैव राष्ट्रीय मूल्यों से जुड़ी रहे। शिल्प कौशल में परिवर्तन व्यवसाय की दृष्टि से किए जाने चाहिए। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में विज्ञान तकनीकी पर आधारित शिक्षा एक सशक्त साधन है किंतु यदि आधुनिकीकरण को एक सचिव शक्ति बनना है तो इसे आत्मा से शक्ति लेनी होगी। आधुनिक समाज में निरंतर बढ़ रहे ज्ञान में विकास शक्ति को सामाजिक दायित्व एवं नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों से संबंधित करना होगा। पं. जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार, "हम विज्ञान के सत्य को झुठला नहीं सकते क्योंकि वह जीवन के

बुनियादी तथ्य प्रस्तुत करता है किंतु हम उन अनिवार्य सिद्धांतों को भी झुठला नहीं सकते जिनका युगों से पालन–पोषण होता आ रहा है, अतः हमें पूरी शक्ति के साथ औद्योगिक प्रगति की ओर बढ़ना चाहिए साथ ही सहिष्णुता, करुणा एवं विवेक के साथ भौतिक समृद्धि को प्राप्त करना है।"

1.4.3 ज्ञान एवं समाज की संरचना के विभिन्न स्तरों का शक्ति संवर्धन में पारस्परिक संबंध

सामाजिक संरचना शब्द का सबसे पहले प्रयोग हर्बर्ट स्पेंसर ने अपनी पुस्तक 'Principles of Sociology' में किया था, जिस प्रकार मानव शरीर अनेक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है उसी प्रकार समाज की भी संरचना है।

दुर्खीम ने भी अपनी पुस्तक 'The Rules of Sociological Methos' में संरचना शब्द का प्रयोग किया है।

सामाजिक संरचना की इकाई व्यक्ति है।

सामाजिक संरचना किसी भी समाज में अपने लोकाचार, इतिहास या किसी सांस्कृतिक परिवर्तनशीलता की अपेक्षा के बिना रहेगी। उदाहरण के लिए, परिवार समाज में हमेशा से ही रहा है, चाहे उसके स्वरूप में परिवर्तन क्यों न हो गया हो। हम सत्ता को भी उदाहरण के रूप में ले सकते हैं।

संरचनाओं के कार्यों के बिना मानव समाज में जीवित नहीं रह सकता है।

सामाजिक संरचना की परिभाषा : टालकाट पारसंस के अनुसार, "सामाजिक संरचना परस्पर संबंधित संस्थाओं, एजेंसियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किए गए पदों एवं कार्यों की विशिष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।"

इग्गन के अनुसार, "अंतःवैयक्तिक संबंध सामाजिक संरचना के अंग हैं, जो कि व्यक्तियों द्वारा अधिकृत पद–स्थितियों के रूप में सामाजिक संरचना के अंग बन जाते हैं और उसका निर्माण करते हैं।"

फोर्ट्स के अनुसार, "व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक संबंध ही सामाजिक संरचना के अंग हैं। इसमें जिन अंगों का समावेश होता है, उसकी प्रकृति परिवर्तनशील हैं तथा इनमें पर्याप्त भिन्नता भी है।"

मैकाइवर तथा पेज के मत में, "समूह निर्माण के विभिन्न रूप से सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान की रचना करते हैं। सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक प्राणियों की विविध मनोवृत्तियों तथा रुचियों के कार्य प्रदर्शित होते हैं।"

कार्ल मानहीम के शब्दों में, "सामाजिक संरचना परस्पर क्रिया में निहित सामाजिक शक्तियों का जाल है।"

लेवीस्ट्राम के अनुसार, "एक समाज की संरचना उस समाज में रहने वाले लोगों के दिमाग की संरचना है।"

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "सामाजिक संरचना के अंग मनुष्य ही हैं और स्वयं संरचना संस्था द्वारा परिभाषित और नियमित संबंधों में लगे हुए व्यक्तियों की क्रमब;ता है।"

गिन्सबर्ग के अनुसार, "सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरूपों, समूह, समितियों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इनकी संपूर्ण जटिलता जिनसे कि समाज का निर्माण होता है, से संबंधित है।"

टिप्पणी

सामाजिक संरचना की विशेषताएं

1. सामाजिक संरचना अमूर्त होती है। अमूर्त का अर्थ है कि जो मूर्त या साकार न हो, निराकार, देहरहित, निरवयव, अप्रत्यक्ष। सामाजिक संबंधों का आधार सामाजिक संस्थाएं, सामाजिक प्रतिमान तय करते हैं जो कि अमूर्त होते हैं।
2. सामाजिक संरचना अनेक उपसंरचनाओं से मिलकर बनती है जैसे कि परिवार, नातेदार, संस्थाएं, समितियां, समूह आदि। इस प्रकार अनेक उप संरचनाएं मिलकर सामाजिक संरचना का स्वरूप तय करती है।
3. सामाजिक संरचना से हमें समाज के बाहरी स्वरूप का ज्ञान होता है। संरचना की इकाइयां परस्पर संबंधित होकर एक ढांचे का निर्माण करती है जिससे हमें संरचना के स्वरूप का बोध होता है।
4. सामाजिक संरचना में विभिन्न इकाइयों का पद और स्थान पूर्व निर्धारित होता है। इन्हें प्रतिस्थापित नहीं किया जाता। समाज की जितनी भी इकाइयां हैं वे अपना–अपना पूर्व निर्धारित कार्य करती हैं।
5. सामाजिक संरचना इकाइयों की क्रमबद्धता होती है। संरचना इकाइयों का महज संयोग नहीं बल्कि एक विशिष्ट क्रम संरचना का स्वरूप निर्धारित करता है। इस क्रम के अभाव में संरचना कायम नहीं रह सकती।
6. प्रत्येक समाज की संस्कृति भिन्न–भिन्न हासेती हैं, अतः संस्कृति द्वारा निर्धारित प्रतिमानों में भिन्नता होने के कारण संरचना भी भिन्न–भिन्न होती हैं। सामाजिक संरचना की प्रकृति उसके अंगों पर निर्भर करती है और अंगों का स्वरूप हर हर समाज में अलग होता है। इसलिए सामाजिक संरचना में विभिन्नता पाई जाती है।
7. सामाजिक संरचना स्थानीय विशेषताओं से प्रभावित होती है। प्रत्येक समाज की संस्कृति स्थानीय परिवेश से अनुकूलन के परिणामस्वरूप विकसित होती है।
8. सामाजिक संरचना की एक विशेषता यह भी है कि यह अपेक्षाकृत स्थाई होता है।
9. सामाजिक प्रक्रियाएं सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण पक्ष है। समाज में सहयोग, व्यवस्थापन, अनुकूलन, सात्मीकरण, प्रतिस्पर्धा जैसी अनेक प्रक्रियाएं चलती रहती हैं। सामाजिक संरचना इन प्रक्रियाओं से प्रभावित होती हैं।
10. सामाजिक संरचना के भाग व्यक्ति एवं समूह तथा सामाजिक संबंध एवं संस्थाएं क्रमशः मूर्त तथा अमूर्त होते हैं। भाग परिवर्तनशील भी होते हैं, किंतु संरचना अमूर्त एवं तुलनात्मक रूप से अपरिवर्तनशील होती है। सामाजिक संरचना में परिवर्तन होता है, किंतु सामान्यतः भागों में परिवर्तन की तुलना में संरचना में परिवर्तन कम होता है।
11. सामाजिक संरचना समाज में समूहों, संस्थाओं को प्रकट करती हैं, न कि उनके प्रकार्यों को।

टिप्पणी

12. सामाजिक संरचना के निर्माण में सामाजिक परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकताओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती हैं। यही कारण है कि सामाजिक संरचना में अनुकूलन करने की क्षमता होती है।
13. सामाजिक संरचना का निर्माण सदस्यों के उत्तरदायित्व की भावना में होता है, जबकि समाज की संरचना का निर्माण अनेक सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य की व्यवस्था में होता है।
14. सामाजिक संरचना में सामाजिक प्रक्रियाओं में संबंधित व्यक्तियों या कर्ताओं की अंतःक्रियाएं सम्मिलित रहती हैं।

ज्ञान के निर्माण की अवधारणा प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान रही है। ज्ञान के निर्माण के विविध रूप समाज में प्राचीन काल से ही देखने को मिलते हैं। विविध प्रकार के पुस्तकालय एवं विविध प्रकार के ग्रंथ ज्ञान निर्माण के प्रमुख उदाहरण हैं। भारतीय वेद एवं पुराणों की प्राचीनकालीन ज्ञान की संरचना के रूप में स्वीकार किया जाता है जो भारतीय संस्कृति की ही देन है अर्थात सामाजिक संरचना विज्ञान की संरचना एक–दूसरे के प्रतिपूरक हैं। इसमें मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को सर्वोत्तम रूप से प्रस्तुत किया है। आज भी रामायण, वेद एवं पुराणों के आधार पर भारतीय समाज का संचालन होता है।

वर्तमान समय में ज्ञान के निर्माण का आशय विविध सूचनाओं के संगठन से तथा उनके प्रस्तुतीकरण की विधियों से लिया जाता है। ज्ञान के निर्माण में पुस्तकालय विज्ञान को समाहित किया जाता है जिसमें एक पुस्तकालय अक्ष्यक्ष विविध प्रकार की पुस्तकों की सूची बनाकर समाहित करता है। ज्ञान के निर्माण का संबंध दर्शनशास्त्र विचारधाराओं जीवन जीवन समृद्धि संज्ञानात्मक विकास भाषाई विकास एवं सामाजिक संरचना से होता है। इस प्रकार ज्ञान के निर्माण को एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है तथा समाज में इसके विविध प्रकार के रूप देखे जाते हैं। जब यही ज्ञान निर्माण सर्वोत्तम रूप में छात्रों के समक्ष उपलब्ध होता है तो छात्रों को इसका लाभ प्राप्त होता है। छात्र सरलता से ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। ज्ञान निर्माण को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने अपने विचारों को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

प्रो. एस.के. दुबे के शब्दों में, "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगीण विकास हेतु ज्ञानात्मक सामग्री की उपलब्धता सरलता से होती है तथा छात्र स्वयं बिखरी हुई सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करता है और स्वयं के सर्वांगीण विकास का पथ प्रशस्त करता है।"

श्रीमती आर.के. शर्मा के अनुसार, "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं के प्रबंधन, संगठन एवं पुनः प्राप्ति की प्रक्रिया से है जिसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से संबंधित तथ्यों को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षक, शिक्षालय, शिक्षार्थी तीनों को ही सहायता मिलती है।"

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान का निर्माण एक व्यक्ति प्रक्रिया है जिसके आधार पर छात्रों द्वारा विविध प्रकार के क्षेत्र में सत्य एवं वास्तविक तथ्यों को सरलतम रूप से प्राप्त किया जाता है। ज्ञानात्मक निर्माण के आधार पर ही

सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया संपन्न होती है, इसी के आधार पर तथ्यों एवं घटनाओं को क्रमबद्ध संगठित रूप प्रदान किया जाता है। इसके अंतर्गत दिए गए ज्ञान का विभाजन, वर्गीकरण का श्रेणीकरण की व्यवस्था भी की जाती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. मानव जीवन को विकसित करने, समाज को उन्नत बनाने और राष्ट्र को विकास की ओर अग्रसर करने में कौन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है?
   (क) ज्ञान (ख) क्रिया
   (ग) गुण (घ) जाति
8. किस ज्ञान के अंतर्गत किसी वस्तु या व्यक्ति के संदर्भ तथ्य निश्चित किए जाते हैं?
   (क) प्रक्रियात्मक ज्ञान (ख) परिचयात्मक ज्ञान
   (ग) प्रस्तावक ज्ञान (घ) वर्णनात्मक ज्ञान
9. तैरना, साइकिल चलाना आदि किस प्रकार के ज्ञान की श्रेणी में आते हैं?
   (क) प्रस्तावक ज्ञान (ख) दार्शनिक ज्ञान
   (ग) परिचयात्मक ज्ञान (घ) प्रक्रियात्मक या कौशलात्मक ज्ञान

1.5 बालक एवं ज्ञान की संरचना

बालक गर्भकालीन अवस्था से ही ज्ञान प्राप्त करने लगते हैं। जैस– अभिमन्यु ने चक्रव्यूह का ज्ञान अपनी माां के गर्भ के समय में प्राप्त किया था। इस सांसार में आने के बाद बालक प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखते रहते हैं, उनके ज्ञान की वृद्धि में माता–पिता, परिवार, विद्यालय , मित्र–मंडली शिक्षक एवं राजनीतिक समूह तथा सामाजिक समूह सभी सहायक होते हैं, लेकिन कुछ ज्ञान बालक अनुभव के आधार पर सीखता है, तो कुछ समाज एवं विद्यालय गतिविधियों द्वारा। अनुभव सीखा गया ज्ञान स्थायी होता है, वह बालक के मन पर अपनी गहरी छाप छोड़ देता है जो उसके साथ जीवन भर चलता है।

प्लेटो के अनुसार ज्ञान तीन प्रकार का होता है– इंद्रिय–जन्य–ज्ञान, सम्मत–जन्यज्ञान तथा चिंतन–जन्यज्ञान। मानव जीवन के लिए ज्ञान का बहुत महत्व है। आधुनिक युग में ज्ञान का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। इसे मनुष्य का तीसरा नेत्र परिगणित किया जाता है। ज्ञान मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। भारतीय दर्शन अनुसार ज्ञान मानव जीवन का सार है, विश्व का नेत्र है। ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नही है। ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान है। ज्ञानी मनुष्य ही अपना तथा दूसरों का कल्याण करने में समर्थ होता है। ज्ञान विश्व के रहस्य को प्रकाशित करने वाला है, ज्ञान से ही चरित्र का बोध होता है और ज्ञान की आरधना करने से अज्ञान का नाश होता है। मनीषियों के अनुसार तो "ज्ञान समुद्र के बिना अमृत है, बिना औषधि के रसायन है और किसी भी अपेक्षा न रखने वाला ऐश्वर्य है।"

1.5.1 ज्ञान की संरचना

टिप्पणी

ज्ञान ही मनुष्य का मार्गदर्शक है। नए–नए ज्ञान का अभ्यास ज्ञान पाचन में सहायक है ज्ञान चैतन्य है शक्ति प्रदाता है। मनुष्य का मनोबल प्रबल करने वाला है, आत्मविश्वास का वर्णन करने वाला है, ज्ञान से मनुष्य में विवेक शक्ति का विकास होता है जिससे बालक अच्छे–बुरे, कुमति–सुमति, सत्य–असत्य, ज्ञानी–अज्ञानी, पाप–पुण्य, लाभ–हानि, सुख–दुख, धर्म–अधर्म, मान–अपमान, यश–अपयश की पहचान कर सकता है। ज्ञान मस्तिष्क का भोजन है जिससे मानसिक विकास होता है। मानसिक, बौद्धिक विकास के द्वारा छात्रों की समृद्धि, निरीक्षण, कल्पना एवं तर्क आदि शक्तियों का विकास होता है। ज्ञान भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत को समझने में सहायक है। बिना ज्ञान के नैतिक प्राप्त नहीं हो सकते हैं, न हीं आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकते हैं कहा भी गया है–

> "येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः
> ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।13।।

जिन मनुष्यों के पास विद्या, तप, दान की भावना, ज्ञान, शील (सत्स्वभाव), मानवीय गुण, धर्म में संलग्नता का भाव हो वे इस मरणशील सांसार में धरती पर बोझ बने हुए मनुष्य रूप में विचरण करने वाले पशु हैं।

ज्ञान के निर्माण की अवधारणा प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान रही है। ज्ञान के निर्माण के विविध रूप समाज में प्राचीन काल से ही देखने को मिलते हैं। विविध प्रकार के पुस्तकालय, विविध प्रकार के ग्रंथ, ज्ञान निर्माण के उदाहरण हैं। भारतीय वेद और पुराणों को प्राचीनकालीन ज्ञान की संरचना के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार रामायण को भी ज्ञान की संरचना के रूप में स्वीकार किया जाता है, इसमें मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में ज्ञान के निर्माण का आशय विविध सूचनाओं के संगठन से और उनके प्रस्तुतीकरण की विधि ायों से लिया जाता है। ज्ञान के निर्माण में पुस्तकालय विज्ञान को समाहित किया जाता है जो छात्र के ज्ञान में वृद्धि करने में सहयोग करती हैं। ज्ञान के निर्माण के संबंध दर्शनशास्त्रीय–विचाधाराओं, उद्देश्य, निश्चितजीवन, समृद्धि, संज्ञानात्मक विकास, भाषाई–विकास, सामाजिक संरचना से भी होता है। इस प्रकार ज्ञान के निर्माण को एक प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है तथा समाज में इसके पवपवि प्रकार के रूप देखे जाते हैं। यही ज्ञान निर्माण सर्वोत्तम रूप में छात्रों के समक्ष उपलब्ध होता है तो छात्र इससे लभान्वित होते हैं, छात्र सरलता से ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं।

प्रोफसेर एस. के. दुबे के शब्दों में "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगीण विकास हेतु ज्ञानात्मक सामग्री की उपलब्धता सरलता से होती है तथा छात्र स्वयं प्राप्त हुई सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करता है और स्वयं के सर्वांगीण विकास का पथ प्रशस्त करता है।"

श्रीमती आर.के. शर्मा और बरोलिया के अनुसार, ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं के प्रबंधन, संगठन एवं पुण्य प्राप्ति की प्रक्रिया से है जिसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन, सामाजिक–व्यवस्था से संबंधित तथ्यों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है

जिसमें सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षक, शिक्षालय, भिशक्षार्थी तीनों की ही सहायता मिलती है।

टिप्पणी

स्पष्ट है कि ज्ञान का निर्माण एक व्यापक प्रक्रिया है जिसके अधार पर छात्रों द्वारा विविध प्रकार के क्षेत्र में सत्य वास्तविक तथ्यों को सरल रूप में प्राप्त किया जाता है। ज्ञानात्मक विकास के आधार पर ही सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया संपन्न होती है। इसके आधार पर ही बिगड़े हुए तथ्यों घटनाओं को क्रम पशु संगठित रूप प्रदान किया जाता है तथा ज्ञान का विभाजन वर्गीकरण की व्यवस्था भी की जाती है।

1.5.2 बालक ज्ञान–निर्माता के रूप में

ज्ञान के शिक्षा में प्रमुख रूप से आवश्यकता होती है, क्योंकि ज्ञान के अभाव में बालकों का सर्वांगीण विकास अवरुद्ध हो जाता है। अतः शिक्षक द्वारा संपूर्ण प्रकार से ज्ञान की अवधारणा को समझ कर छात्रों को शैक्षिक विकास एवं शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में अपनी भूमिका का निर्वहन करना चाहिए। ज्ञान के निर्माण के द्वारा ही छात्रों में नैतिकता, सहनशीलता, परोपकार आदि चारित्रिक गुणों का विकास होता है। ज्ञान द्वारा ही बालक व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त करता है तथा स्वयं को उच्च जीवन स्तर के लिए तैयार करता है। बालक के शारीरिक विकास, साांस्कृतिक विकास, आध्यात्मिक विकास, समायोजन क्षमता तथा अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में ज्ञान की महती भूमिका है। ज्ञान द्वारा छात्रों का संतुलित विकास होता है, अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करते हैं तथा आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वयं को तैयार करते हैं।

ज्ञान निर्माण को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों के लिए छात्रों को आलोचनात्मक और रचनात्मक विचारों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। अपनी समझ उत्पन्न करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाएँ तथा छात्रों को परिणामों में कुछ लचीलापन देने की अनुमति होती हैं। ज्ञान का प्रयोग उनके काम के लिए, तथा इन परिणामों को विकसित करने के लिए उपयोग करते हैं।

यह ज्ञान के निर्माण की ओर ले जाने वाली विचार प्रक्रियाओं को विकसित करने और अभ्यास करने के अवसर प्रस्तुत करता है। वस्तुतः वास्तविक दुनिया में ज्ञान अंतःविषयक हैं।

ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया विशष संदर्भ में पथृक–पथृक रूप में संपन्न होती है, यहां ज्ञान की प्रक्रिया निर्माण का संबंध शिक्षक के साथ शिक्षाथी से भी संबंधित है। ज्ञान निर्माण में शिक्षक द्वारा छात्रों की मात्र सहायता की जाती है, इस सहायता की प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षक विषय विशेष के संदर्भ में छात्रों की समझने, यह अधिगम की योग्यता विकसित करने के साथ–साथ विषय संबंधी ज्ञान को खोजने में भी सहायता करता है। शिक्षक छात्रों को उस विषय में विविध प्रकार की गतिविधियाँ प्रदान करता है जिससे छात्र की तत्व विषय के प्रति जिज्ञासा को शांत किया जा सकता है। उस विषय के ज्ञान को शंकाहीन बनाने में अर्थात स्पष्ट पारदर्शी बनाने में विविध प्रकार की कल्पनाओं के परीक्षण करने में उस विषय के झुकाव यह प्रवृत्ति को समझने में विषय संबंधी दृश्यों को समझने में तथा विषय के प्रत्येक पक्ष को समझने में सहायता करता है जैसे गणित का शिक्षक सर्वप्रथम यह जानने का प्रयास करता है कि उसके समक्ष जो छात्र है वह विषय के संदर्भ में कितना ज्ञान रखता है। छात्र गणित में जोड़, घटाव,

गुणा, भाग की क्रिया जानता है तो छात्रों को उत्तरोत्तर ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाता है। गणितीय आकृतियों का ज्ञान प्रदान करने में तथा छात्र की गणितीय जिज्ञासा को शांत करने में उसकी सहायता शिक्षक के द्वारा की जाती है। इस आधार पर शिक्षक द्वारा छात्र के पास जो ज्ञान है शिक्षक के पास जो ज्ञान है दोनों का सहयोग करके गणितीय ज्ञान का निर्माण किया जाएगा। अतः प्रत्येक विषय का ज्ञान छात्र के लिए उस विषय में उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि करने वाला सिद्ध होता है। इस प्रकार ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया संपन्न होती है, इसी प्रक्रिया के अंतर्गत ही छात्रों का संज्ञानात्मक ज्ञान, अवबोध आत्मज्ञान, अनुप्रयोगात्म ज्ञान, कौशलात्मक ज्ञान का निर्माण हो जाता है। ज्ञान निर्माण को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों के लिए छात्रों को आलोचनात्मक और रचनात्मक विचार का उपयोग करने की आवश्यकता होती है।

अपनी समझ उत्पन्न करने के लिए प्रक्रियाएँ तथा छात्रों को परिणामों में कुछ लचीलापन देने की अनुमति है, यह उनके काम के लिए, और परिणामों को विकसित करने के लिए उपयोग करते हैं, यही ज्ञान प्रदान करने की उचित प्रक्रिया है। कक्षा में बच्चे समूह में रहते हैं। यह बच्चे विभिन्न प्रकार के होते हैं। कुछ बच्चे अध्यापन कार्य में सहयोग देते हैं उनमें रुचि लेते हैं, अध्यापक की बातों को ध्यान से सुनते हैं, उनके प्रति आदर का भाव रखते हैं। इसके विपरीत कुछ बच्चे अध्यापन कार्य में सहयोग नहीं देते हैं, रुचि नहीं लेते हैं, उनके प्रकत आदर भाव भी नहीं रखते हैं, समूह में होने के कारण सभी बच्चे अध्यापक और उसके अध्यापन से कुछ न कुछ मात्रा में प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव अंतःक्रिया के परिणाम स्वरूप बालक में ज्ञान उत्पन्न करने के लिए एक उद्दीपक का कार्य करते हैं। इस अंतःक्रिया के कारण बच्चे एक–दूसरे को अपने व्यवहार से उद्दीप्त करते हैं और स्वयं भी होते हैं तथा इस प्रकार एक–दूसरे के व्यवहार को प्रबल बनाते हैं। इन बातों से परिचित होने के कारण अध्यापक यह जानता है कि सीखने की मात्रा मुख्यतः छात्रों की अंतःक्रिया द्वारा निश्चित होती है। निर्माण इन बातों से परिचित होने के कारण अध्यापक यह जानता है कि सीखने की मात्रा मुख्यतः छात्रों के अंतःक्रिया द्वारा निश्चित होती है और यह ज्ञान निर्माण का सबसे प्रबल साधन है। कक्षा की सामाजिक स्थिति में छात्रों की अंतःक्रिया के फलस्वरूप सामूहिक अधिगम की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, जिसके कारण बच्चे कुछ न कुछ सीखते रहते हैं और उनके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार सामूहिक अधिगम में अंतर क्रिया का केंद्रीय स्थान देता है, क्योंकि ज्ञान को उद्दीप्त करने का यह सबसे प्रबल साधन रहता है। इसके अतिरिक्त बालक खेल–खेल में विभिन्न कौशलों का उपयोग करता है जिन कौशलों के परिणाम स्वरूप वह किसी वस्तु के प्रारूप, आकार, रंग, स्थान आदि का ज्ञान स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। उक्त कौशलों से संबंधित अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप बालक शब्द–वाक्य–गद्यांश लिखने–पढ़ने का आनंद लेता है, जिससे ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि बालक के अंतःकरण में होती रहती है। परिणामस्वरूप बालक भाषा कौशल में, गणितीय कौशल में शब्दकोश तथा समस्या समाधान जैसे कौशलों में पारंगत हो जाता है।

1.5.3 ज्ञान व समाज

मानव एक सामाजिक प्राणी है अतः उसका विकास सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिए। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में विद्यालय व्यवस्था भी समाज के अनुरूप होनी

टिप्पणी

चाहिए। भारतीय समाज प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित है, यहां पर सभी को समानता, स्वतंत्रता, न्याय प्राप्त करने का अधिकार है तो शिक्षा व्यवस्था भी इस प्रकार की होनी चाहिए जो प्रजातांत्रिक मूल्य में वृद्धि करने वाली हो। ज्ञान प्राप्ति के संदर्भ में सामाजिक विकास में विद्यालय शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि बालक में सामाजिक नियमों का ज्ञान समाज द्वारा ही प्रदान किया जाता है। परिवार या समाज की नियमावली बालक में सिद्धांतों का निर्माण करती है। यथा– बालक को माता–पिता ही बताते हैं कि हमें अपने बड़ों की चरण छू ने चाहिए, अभिवादन करना चाहिए। जब शिक्षक भी इस तथ्य को कहता है तो बालक आवश्यक रूप से इस नियम को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार समाज बालक के मन में ज्ञान का बीज प्रस्फुटित कर देता है। इसी क्रम में विभिन्न कालों की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान बालक को शिक्षा के माध्यम से समाज द्वारा ही दिया जाता रहा है जिससे अंधविश्वासों का समापन हो गया वह बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो गया। समाज द्वारा निर्देशित पथ पर अग्रसर होते हुए बालक में स्वतः ही सामाजिक गुणों का विकास हो जाता है वह अपनी सांस्कृतिक धरोहर का विकास करता है, हस्तांतरण करता है, धर्मनिरपेक्षता को विकसित करता है वह सामाजिक सदभावना को अपने व्यवहार में उतारता है। अनुशासन की भावना भी समाज के द्वारा ही बालक में विकसित की जाती है।

ज्ञान के सथान के रूप में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। बालक समाज या समुदाय में ही बढ़ता है विकसित होता है जीवनयापन करता है उसे अपने समाज की उपलब्धियों को संरक्षित रखने और उसको उपयोग में लाने की शिक्षा दी जाती है। यह समुदाय ही है जो अपने सभी सदस्यों में संस्कृति और शिक्षा की भावना विकसित और प्रोत्साहित करता है। प्रत्येक समाज में अपने सदस्यों विशेष रूप से बालकों, किशोरों को उद्देश्य पूर्ण और प्रभावपूर्ण ज्ञान प्रदान करके अपनी प्रगति और विकास को नियोजित करने का प्रयत्न किया जाता है। समाज अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आवश्यकताओं या आकांक्षाओं के अनुसार ज्ञान को विकसित करने का प्रयत्न करता है जो एक अनवरत प्रक्रिया है।

ज्ञान के दृष्टिकोण से यदि समाज की भूमिका को जांचा जाए तो बालक पर समुदाय या समाज के महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ते हैं जैसे शारीरिक विकास पर प्रभाव, बौद्धिक विकास पर प्रभाव क्योंकि समाज ही बालक के ज्ञान के लिए विभिन्न पुस्तकालयों, संघ–गोष्ठियों, सम्मेलनों साहित्यिक–कलात्मक क्रियाकलापों, प्रदर्शनियों, शिक्षण–चलचित्रों की व्यवस्था करता है जो बालक के मनोरांजन के साथ–साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं। सामाजिक विकास तो समाज के बिना संभव ही नहीं है क्योंकि सामाजिक विकास के उद्देश्य से ही विभिन्न मेलों, त्योहारों, सम्मेलनों, धार्मिक उत्सवों की व्यवस्था की जाती है जिससे बालक रीति–रिवाज परंपराओं, विश्वासों और सहयोग सहाभूति समाज सेवा त्याग की भावना तथा सामाजिक समायोजन जैसे मूल्यों को सीखने के लिए प्रेरित हो सकें। उसे अपने अधिकार व कर्तव्य से अवगत कराता है, समाजीकरण की प्रक्रिया की ओर आगे बढ़ाता है। समाज जिससे बालक का चारित्रिक व नैतिक विकास हो। राजनीति समाज का ही विषय है तो राजनीतिक विज्ञान भी बालक को समाज के द्वारा ही प्रदान किया जाता है जहां वह सिद्धांतों के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान को भी प्रत्यक्ष देखता है।

टिप्पणी

कक्षा में भी बच्चे समूह में रहते हैं। यह समूह समाज का ही प्रतीक होता है जहां विभिन्न प्रकार के बच्चे होते हैं। बालक अपने सहपाठियों तथा शिक्षक के साथ अंतःक्रिया करता है और अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप ज्ञान स्वयं उदित होता है तथा परस्पर व्यवहार इस ज्ञान को व्यवहार मे परिवर्तित करने में सहायता करता है अर्थात अंतःक्रिया वह प्रबल साधन है जो बालकों में ज्ञान को उद्दीप्त करता है। बच्चे अभिप्रेरित होकर कुछ न कुछ नया सीखते रहते हैं, व्यवहार में परिवर्तन करते रहते हैं। उनके तर्क, निर्णय, स्मतृि, कल्पना, चिंतन आदि मानसिक क्रियाओं का निरंतर विकास होता रहता है। वह बालक नित नवीन ज्ञान से परिचित होता रहता है। इसी क्रम में हम आगे सामूहिक अधिगम के प्रभाव को भी देखते हैं।

1.5.4 ज्ञान की सीमा व कक्षा के साथी

स्कैफफोल्डिंग (Scaffolding) ज्ञान का अस्थायी समर्थन है। वे एक संरचना को स्थिर करने के लिए काम करते हैं क्योंकि यह तब बनाया जाता है जब यह अपने दम पर खड़ा होने के लिए पर्याप्त मजबूत नहीं होता है। यह बाल्यावस्था के विकास की दुनिया में, एक व्यक्ति हो सकता है; एक वयस्क या सहकर्मी मॉडलिंग या निर्देशन, सामग्री या उपकरण जो एक कार्य के साथ एक बच्चे की सहायता करते हैं, या यहां तक कि सावधानी से निर्मित कक्षा का वातावरण भी है जो सीखने में सहायता करता है। Scaffolding के लिए विशिष्ट शैक्षणिक कौशल के लिए नहीं है। सामाजिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित अधिगम के स्थान पर अप्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित अधिगम अर्थात अवलोकन अधिगम सीखने की प्रक्रिया में अधिक सार्थक सिद्ध होती है। समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्राणी जो कुछ भी सीखता है उसका अधिकांश भाग दूसरों को देखकर सुनकर समझ कर लिखा हुआ होता है। जन्म से ही बालक अपने आस–पास के वातावरण में विद्यमान व्यक्तियों तथा माता–पिता परिवार के अन्य सदस्य सहयोगियों सदस्य पड़ोसी अध्यापक समाज के अन्य सदस्यों के व्यवहार का अवलोकन करने लगता है।

जब एक शिक्षक या सहकर्मी एक छात्र को पैटर्न ब्लॉक को गिनने में मदद करके मॉडलिंग करते हैं कि कैसे गिनती करते समय प्रत्येक ब्लॉक को स्पर्श करें, तो वे उस बच्चे को एक से एक संप्रेषण कौशल विकसित करने में मदद कर रहे हैं। वे इसे एक बार में उचित प्रकार से नहीं कर सकते हैं, लेकिन इसकी मदद से जैसे कोई व्यक्ति इसे मॉडलिंग करता है, वे कार्य पूरा कर सकते हैं। Scaffolding अधिगम का एक वैकल्पिक स्थान है जो पूर्णता है अंतःक्रिया पर निर्भर करता है यह है ज्ञान निर्माण की सतह निर्धारित किया है जिसमें छात्र अपने ज्ञान के क्वेश्चन दोनों को विकसित करते हैं में आवश्यकतानुसार कठिनाई स्तर बढ़ाकर निदेशात्मक कार्य भी संभव है यह है स्वनिर्मित क्रमबद्ध अधिगम के लिए वातावरण का निर्माण करता है। उदाहरण के रूप में वे बच्चे जिन्हें रंग का पूर्णतः ज्ञान है किंतु आकार का संप्रत्य पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है उन बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के आकार की आकृतियां निर्धारित रंगों में ले ली जावे जैसे सभी त्रिभुज– लाल रंग के, सभी आयत– हरे रंग के, सभी वर्ग– नीले रंग के, सभी बेलन– सफेद रंग के, सभी गोलाकार आकृतियां– गुलाबी रंग में रख ली जावे तथा छात्रों को परस्पर अंतःक्रिया के लिए छोड़ दिया जाये तो लगभीग सभी छात्रों का संप्रत्यय पूरी तरह से स्पष्ट हो जाएगा उनका ज्ञान दृढ़ हो जाएगा क्योंकि अब रंगों

टिप्पणी

के साथ–साथ उनका आकृतिक–ज्ञान भी स्पष्ट हो गया है। शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस सिद्धांत को सामाजिक अधिगम सिद्धांत के नाम से जाना जाता है जिस पर हमें वाइगोत्सकी की सामाजिक अधिगम सिद्धांत भी प्राप्त होता है। इसी सिद्धांत को उन्होंने ZPD के रूप में–स्पष्ट किया है क्योंकि बालक इस सामाजिक अधिगम सिद्धांत में दूसरे बच्चों से अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप ही सीखता है उसे स्पष्ट तथा नियमों का ज्ञान नहीं दिया जाता है तू नियंत्रण का स्थानांतरण उत्तरदायित्व का स्थानांतरण क्रम चाहा होता रहता है सोच भाषा एक निश्चित क्रम में जो उपयोगी तकनीकी है कार्य है उसी को निर्धारित किया जाता है और ज्ञान ज्ञान का पूर्णता व्यवहारिक दृष्टि से प्रयोग किया जाता है इस प्रकार स्कैफोल्डिंग एक सामाजिक अधिगम की प्रक्रिया है। इसमें महत्वपूर्ण भूमिका हमारे अग्रज यह हमारी कक्षा के साथ ही लोग ही निभाते हैं जो हमारे कक्षा के साथियों को आता है वह ज्ञान धीरे–धीरे हमारे व्यवहार में भी परिलक्षित होने लगता है।

1.5.5 बालक के अनुभव व ज्ञान

ज्ञान एक साधन के रूप में तब तक बन जाता है जब तक ज्ञान प्राप्त करके किसी प्रत्यय की समझ विकसित करनी है, जैसे– अधिगम का सिद्धांत ज्ञान के रूप में तब साधन बनता है जब इसका प्रयोग सीखने की प्रक्रिया को समझने हेतु किया जाए। जब हम खुद सीखते हैं, समझते हैं तब ज्ञान का प्रयोग इस साधन के रूप में करते हैं। समझने के लिए सैद्धांतिक ज्ञान का प्रयोग करना पड़ता है। मानव में बोध उत्पन्न करने हेतु वैध ज्ञान का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि वह ज्ञान की मदद से एक इसी अवधारणा के नियमों को समझा जा सकता है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु या प्रकरण का ज्ञान अर्जित करके उसका अनुप्रयोग करने हेतु उसका व्यवहारिक जीवन में प्रयोग किया जाए। इस प्रकार ज्ञान का किसी वास्तविक परिस्थिति में प्रयोग किया जाए।

विषय–ज्ञान को ही अनुभव कहा जाता है। अनुभव ज्ञान से ही बनता है। यह दो प्रकार का होता है– यथार्थ एवं अयथार्थ। अनुभव को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि उस ज्ञान में अनुभव करते हैं जिसमें विशेष अनिवार्य रूप से विद्यमान हो अर्थात ज्ञान निर्विषय नहीं होता। ज्ञान में विषय का होना अनिवार्य है। यथार्थ क अंतर्गत प्रत्यक्ष, अनुमति, उपमिति तथा शब्द ज्ञान आते हैं एवं यथार्थ के अंतर्गत संशय, विपर्यय आदि आते हैं। किसी वस्तु का अनुभव होने पर उसके संस्कार आत्मा में रह जाते हैं और सुप्त संस्कार प्रबुद्ध होकर दृष्टा के मन में पूर्व अनुभूत वस्तु को उपस्थित कर देते हैं।

ज्ञान को सामान्य तौर पर सूचनाओं के संकलन के रूप में समझा जाता है परंतु वास्तविकता यह है कि ज्ञान के द्वारा ही अनुभव का निर्माण होता है। हम जो भी वस्तु देखते हैं यह किसी परिस्थिति का साक्षात्कार करते हैं तो वह वस्तु या परिस्थिति हमारे मानस पटल पर एक स्मृति चिह्न छोड़ देती है जो हमें उस वस्तु या परिस्थिति से परिचित करा देती है और यही वस्तु या परिस्थिति जब उन्हें हमारे सामने आती है या हम इस से साक्षात्कार करते हैं तो हमें उसका पहले से अनुभव होता है और हम उसके बाधक तत्वों से भी परिचित हो जाते हैं जब उन्हें हम उस वस्तु या परिस्थिति का साक्षात्कार करते हैं तो तत्काल ही मस्तिष्क में पूर्व के अनुभव घूमने लगते हैं। हम उनसे सीख ले कर या त्रुटियों को अलग करके कार्य संपादित करते हैं। किसी वस्तु का

अनुभव होने पर उसके संसार आत्मा में रह जाते हैं बाद में यही सुक्त संस्कार प्रबुद्ध होकर दृष्टा के मन में पूर्व अनुभव की गई घटना या वस्तु को प्रस्तुत कर देते हैं। ज्ञान चक्षु से गुजरकर ही कोई वस्तु अनुभवों की श्रेणी में आती हैं।

वर्तमान का ज्ञान भविष्य का अनुभव बन जाता है और इसका हस्तांतरण सदैव आगामी पीढ़ियों के लिए परिमार्जित तथा संशोधित होता रहता है क्योंकि हमने उन बाधक तत्वों को जान लिया होता है जो कार्य को संपादित करते समय हमारे समक्ष रूकावट के रूप में उत्पन्न हो रहे थे जब हम उसका हस्तांतरण करते हैं तो उन बाधक तत्वों का भी उल्लेख अपने अनुभवों के आधार पर करते हैं साथ ही उसका परिमार्जन करके उसे नई पीढ़ी को सौंपते हैं जिससे भी हमारे अनुभवों से लाभान्वित हो सके। आज का ज्ञान कल का अनुभव बन जाता है। सभी व्यक्तियों को अपने जीवन में अनुभव होते हैं और वे इन अनुभवों का सामान्य करण कर लेते हैं तो यही अनुभव आगे चल कर सिद्धांत और नियमों के रूप में विकसित हो जाते हैं जो कि किसी विषय का ज्ञान बन जाते हैं। इसी ज्ञान से हमारी आने वाली पीढ़ी लाभान्वित होती है। यह ज्ञान न केवल किसी एक व्यक्ति के लिए उपयोगी होता है बल्कि संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी और लाभकारी बन जाता है। उदाहरण के लिए जब हम किसी चीज को सीखना चाहते हैं तब ज्ञान का प्रयोग एक साधन के रूप में करते हैं और जब हम कोई चीज समझाना चाहते हैं तो सैद्धांतिक ज्ञान का सहारा लेते हैं। यह था हवा को उत्पन्न करने की जो नियम तथा सिद्धांत हैं उन्हीं का प्रयोग अनुभव के रूप में करके हवाई जहाज के उड़ने की प्रक्रिया को समझा गया इन परिस्थितियों में हवा से संबंधित ज्ञान के अनुभव से ही हवाई जहाज की उड़ने की प्रक्रिया को समझा गया। महान वैज्ञानिकों के जो अनुभव रहे हैं उनके तथ्यों को सिद्धांत के रूप में विकसित कर दिया गया और आज भी विज्ञान के आधारभूत ज्ञान के रूप में विद्यमान हैं। अतः स्पष्ट है कि ज्ञान से अनुभवों का अनुभवों से ज्ञान का निर्माण होता है। किसी नवीन वस्तु से जो अनुभव प्राप्त होते हैं वह आगे चलकर ज्ञान का सामान्यकरण करने के काम आते है। इस प्रकार ज्ञान अनुभवों का निर्माण करता है।

1.5.6 नवीन ज्ञान तथा विचारों को समझने में समुदाय की भूमिका

ज्ञान का संबंध चेतन जगत से होता है ज्ञान के संबंध में कितना आवश्यक है पूर्ण रूप से विचार किए जाए किया जाए तो ज्ञान मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। मानव में ज्ञान का स्तर सदैव उच्च श्रेणी का होता है जिसका क्षेत्र व्यापक होता है। ज्ञान का संबंध ज्ञाता से होता है। ज्ञाता के अभाव में ज्ञान का कोई महत्व नहीं होता। जैसा कि इस भूमिका का निर्वहन कभी–कभी अप्रत्यक्ष रूप से समाज या समुदाय द्वारा भी निभा दिया जाता है। विज्ञान एक मानभसक प्रक्रिया है तो हम यह केवल अनुभूत कर सकते हैं कि ज्ञान प्राप्त का साधन कौन बन रहा है। ज्ञान के लिए विषय आवश्यक रहता है वह विषय कभी अनुभव द्वारा कभी अंतःक्रिया द्वारा कभी घटनाओं की प्रत्यक्षीकरण द्वारा समुदाय द्वारा सम्यक रूप से निभाया जाता है। ज्ञान को व्यापक दृष्टिकोण से ही देखा जाता है ज्ञान का संकुचित दृष्टिकोण शिक्षा का भी संकुचित दृष्टिकोण बन जाता है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के उद्देश्यों का दृष्टिकोण ज्ञान द्वारा ही निर्धारित किया जाता है ज्ञान जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन बनता है। मनुष्य क्षण प्रतिक्षण जो कुछ भी सीखता है वह नवीन ज्ञान की माला में मोती की तरह

टिप्पणी

सुसज्जित होता जाता है जिसे दिन प्रतिदिन का व्यवहार अंतःक्रिया प्रभावित करती है। अर्थात ज्ञान और समाज में गहरा संबंध है एक और ज्ञान शिक्षा परांपरा की धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाती है और इस तरह से संस्कृति की निरंतरता बनाए रखने में सहायक होती है। दूसरी ओर पारिस्थितिकी परिवर्तन उसे अनुकूलन का साधन बनाने की प्रेरणा देते हैं अपनी इस पक्ष में ज्ञान परिवर्तन का माध्यम बनता है यह परिवर्तन की दिशा निर्धारित कर उसकी वैकल्पिक प्रतिरूप प्रस्तुत करता है प्राविधिक साधन व समाचारों के लिए भाव भूमि निर्मित करती है ज्ञान के यह दोनों कार्य महत्वपूर्ण हैं क्योंकि परांपरा की उपेक्षा यदि दूरी हीन बनाती है तो परिवर्तन की अस्वीकृति या मंद गति संस्कृतिक पक्षाघात प्रमाणित हो सकती है वैकल्पिक भविष्य की परिकल्पना को साकार करने के लिए इन दोनों प्रकारों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

शिक्षा के उद्देश्यों को भी दो भागों में बाांटा गया है– व्यक्ति व्रत व समाज की संरचना के स्तर पर अर्थात शिक्षा की प्रक्रिया से अपेक्षा की जाती है कि उससे विशेष व्यक्तित्व का निर्माण होगा यह परीक्षा भी की जाती है कि एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था से एक विशेष प्रकार के समाज को बनाने में सहायता मिलेगी यहां शिक्षा व्यवस्था स तात्पर्य विद्यालय शिक्षा न होकर व्यक्तियों के संपर्क में आने वाला ज्ञान है शिक्षक शिक्षार्थी का संबंध वैसे ही होंगे जैसा ज्ञान का प्रभाव उनके ऊपर रहेगा अर्थात समाज नित नवीन उदाहरण प्रस्तुत करके पलकों में नवीन ज्ञान का प्रस्फुटन करता है। समाज या समुदाय अपनी विभिन्न परंपराओं रीति–रिवाजों तथा मनुष्य के अंतःक्रिया के आधार पर बालकों के लिए नवीन ज्ञान का बीज अंकुरित करता है। बालक समाज में अंतःक्रिया द्वारा ही अपनी भाषा को सीखता है जिसे मार्तृभाषा भी कहा जाता है यह मार्तृभाषा सक्रिय अनुबंधन का उपयुक्त उदाहरण है अर्थात समाज ही बालक को अनुबंधन के लिए तैयार करता है यहां उसके लिए विशेष शिक्षकों की आवश्यकता नहीं है न ही व्यवस्था की जाती है समाज की प्रक्रिया ही इस प्रकार की होती है कि बालकों का नवीनतम प्रत्यय व नवीन विचारों का उद्भवन स्वयंमेव होता रहता है। विभिन्न संप्रत्यय यथा लोकतंत्र न्याय सामाजिक न्याय सामाजिक संयोजन समानता मानव अधिकार धर्मनिरपेक्षता आदि का निर्माण केवल समाज यह समुदाय द्वारा ही किया जा सकता है यह संकल्पना बिना व्यवहार में आए बालक की समझ से परे है सामुदायिक एकता राष्ट्रीय एकता सत्य अहिसां सभी के उदाहरण बालक को समाज या समुदाय में ही प्राप्त होते हैं इस प्रकार नवीन संकल्पना निर्माण नवीन विचारों के निर्माण में जिस प्रकार विद्यालय शिक्षक ज्ञान की प्रक्रिया का योगदान है ठीक उसी समुदाय या समाज की भी महती भूमिका है।

1.5.7 बालक के नवीन ज्ञान निर्माण में कक्षा कक्ष की भूमिका

विद्यालय सीखने सिखाने की औपचारिक प्रक्रिया का स्थल है। समय के साथ साथ औपचारिक सांस्थाओं में भी विविधता आई है। औपचारिक सांस्थाओं की एक महत्वपूर्ण विशषता सीखने सिखाने वालों की स्थानीय कालिक निकटता है इसमें छात्र और शिक्षक भौतिक और वास्तविक रूप में एक दूसरे के आमने–सामने रहते हैं यह प्रत्यक्ष रूप से एक–दूसरे से अंतःक्रिया करते हैं। अंतःक्रिया का यह स्थान जहां शिक्षक और छात्र प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन सामग्री के माध्यम से एक दूसरे के संपर्क में आते हैं कक्षा कक्ष कहलाता है जहां शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ज्ञान प्राप्त

टिप्पणी

के विभिन्न तरीकों को प्राप्त करने के लिए या उसे तराशने और समझने की आवश्यकताओं पर बल दिया जाता है कक्षा में सामाजिक अधिगम की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि कक्षा में बालक समूह में होते हैं यह बालक विभिन्न प्रकार के होते हैं कुछ बालक शिक्षण कार्य में सहयोग देते हैं कुछ उनमें रुचि लेते हैं कुछ केवल सुनते हैं और कुछ उसे व्यवहार में उतारने का पूरा प्रयत्न करते हैं इसके विपरीत कुछ बालक शिक्षण कार्य में सहयोग नहीं देती हैं किंतु यह अंतःक्रिया उन बालकों के निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कॉल सनी के अनुसार आधुनिक शिक्षा क्या जानता है कि जो अधिगम होता है उसकी मात्रा और गुण निर्धारण बहुत अधिक सीमा तक छात्रों की अंतिम क्रिया द्वारा किया जाता है कक्षा की सामाजिक स्थिति में छात्रों की अंतिम क्रिया के फलस्वरप सामाजिक अधिगम की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है जिसके कारण बालक कुछ न कुछ सीखते रहते हैं और उनके सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है इस प्रकार सामाजिक अधिगम में अंतर क्रिया का केंद्रीय स्थान है। इसकी पुष्टि करते हुए वाइट महोदय ने लिखा है आधुनिक समय में ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में अंतःक्रिया का केंद्रीय स्थान है जबकि छात्र युग में स्थिति यह समूह में अपने व्यवहार से दूसरे को उद्दीप्त करता है तब स्वयं उसका व्यवहार भी प्रबल बनता है कक्षा में विभिन्न कारक हैं जो ज्ञान प्राप्ति या नवीन ज्ञान निर्माण में अपना सहयोग देते हैं और इसे कक्षा कक्ष में निश्चित रूप से स्थान दिया जाता है यह पहला कारक ध्यान कहलाता है। शिक्षक बालकों के प्रति साधारण से अधिक ध्यान देकर उनके व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है। दूसरा कारक अनुकरण है जिसके द्वारा बालक सामाजिक अधिगम में सहायता प्राप्त करता है। दूसरे बालक व्यवहार का अवलोकन और अनुकरण करके विभिन्न प्रकार के ज्ञान को परिवर्तित करते हैं बालकों के अनुकरण आत्मक व्यवहार के संबंध में चार मुख्य बातें बताई गई हैं पहली बालक अपने उन साधथयों का अधिक अनुकरण करता है जो बार–बार उनके सामने आते हैं दूसरा बालक उन साथियों के बजाय व्यस्त को का अधिक अनुकरण करता है तीसरा बालक बालकों का और बालिकाएं बालिकाओं का अधिक अनुकरण करते हैं और अंतिम में चतुर्थ निम्न मानसिक योग्यता के बालक बेस्ट मानसिक योग्यता के बालकों का अधिक अनुकरण करते हैं अर्थात बालक अपने मन मस्तिष्क में एक मॉडल का निर्माण वस्त्र किया संकेतिक रूप से कर लेते हैं जिससे वे इतने प्रभावित होते हैं कि नवीन ज्ञान की संकल्पना की ओर बढ़ जाते हैं तीसरा कारक एकरूपता है जिसे बांडूरा महोदय ने सामाजिक अधिगम प्रक्रिया में स्थान दिया है। एकरूपता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि व्यक्ति की वे यह व्यक्ति की वह प्रवृत्ति है जिसके कारण वह जीवित यह संकेतिक मॉडलों द्वारा व्यक्त किए जाने वाले कार्य अभिवृत्ति संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को पुनः व्यक्त करता है।

ज्ञान के इन रूपों को सामान्य ज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है तथा भी इनमें से सूचनात्मक ज्ञान को मानवीय ज्ञान के रूप में देखते हुए माना गया है कि ज्ञान मीमांसा अध्ययन की दृष्टि से यही ज्ञान महत्वपूर्ण है यद्यपि कुछ दर्शन किस प्रकार की ज्ञान की सत्ता को स्वीकार नहीं करते नहीं से व्यवहार और सिद्धांत के लिए आवश्यक मानते हैं तथापि कक्षा कक्ष में आपस में अंतःक्रिया अनुभव विचार–विमर्श को देखने, समझने, सोचने, विचारने आदि से प्राप्त ज्ञान विश्वास ऊपर टिका रहता है। इस प्रकार कक्षा कक्ष में अंतःक्रिया द्वारा बालकों में अपनी परंपराओं विरोधियों को तार्किक रूप से

स्वीकार करने का संप्रत्यय विकसित होता है। उनमें अंतर्दृष्टि वसूल उत्पन्न होती है। इंडियन दो द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं तर्कपूर्ण ज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं जो उन्हें वैज्ञानिक ज्ञान की सीमा तक क्रियाकलापों के माध्यम से ले जाता है।

टिप्पणी

1.5.8 पूर्व ज्ञान के पुनर्निर्माण तथा स्थानांतरण हेतु स्थान

मनुष्य एक तर्क युक्त जीव है। इसके पास तर्क करने की शक्ति है जो इसकी अधिगम में सहायता करती है। किसी व्यक्ति के व्यवहार में अधिगम का विशेष महत्व है। समूचे मानवीय व्यवहार को उसकी अधिगम क्रिया द्वारा खोजा जा सकता है। अधिगम ही जीवन में सफलता का आधार है। आधुनिक सभ्यता के चमत्कार इसी अधिगम स्थानाांतरण की देन है। इसका शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान है। अधिगम के द्वारा ही मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों में इतनी परिवर्तन ला सकता है कि उसे पहचानना भी कठिन हो जाता है। हम बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं और अधिगम भी वास्तविक विद्या है जब तक हम अधिगम के स्वरूप और विधियों से परिचित नहीं होते तब तक हम इस योग्य नहीं हो सकते कि हम उन्हें उचित शिक्षा दे सकें। अधिगम की विधियां यह निर्धारित करती हैं कि वह अपने ज्ञान का प्रयोग किस प्रकार किस परिस्थिति में कर रहा है।

हम सीख चुके हैं कि अधिगम पूर्ण रूप से व्यवहार में स्थाई परिवर्तन है। व्यवहार से तात्पर्य भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न है। कुछ लोगों का विश्वास है कि व्यवहार उन सभी व्यक्तित्व विशेताओं जो व्यजतत में होनी चाहिए का योग है वहीं दूसरे लोगों का विश्वास है कि व्यावहारिक अवलोकन की क्रिया है जिसका व्यक्ति प्रदर्शन करता है। शिक्षण के लिए व्यवहार रूपांतरण अधिगम दूसरे विश्वास पर आधारित है जब हम एक बालक के अवलोकन युक्त व्यवहार को रूपांतरित करते हैं। यह बदलते हैं। हम सीख चुके हैं कि अधिगम पूर्ण रूप से व्यवहार में स्थाई परिवर्तन है। व्यवहार से तात्पर्य भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न है। कुछ लोगों का विश्वास है कि व्यवहार उन सभी व्यक्तित्व विशेषताओं जो व्यक्ति में होनी चाहिए का योग है वही दूसरे लोगों का विश्वास है कि व्यावहारिक अवलोकन की क्रिया है जिसका व्यक्ति प्रदर्शन करता है। शिक्षण के लिए व्यवहार रूपांतरण अधिगम दूसरे विश्वास पर आधारित है। जब हम एक बालक के अवलोकन युक्त व्यवहार को रूपांतरित करते हैं। यह बदलते हैं। तू हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बालक की सीखने में मदद करते हैं। अवलोकन किया गया व्यवहार मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है– प्राप्त किया गया व्यवहार और निकाला गया व्यवहार जब हम बालक को एक सामाजिक नियम यह आदर्श के अनुसार किसी अलग ढंग से व्यवहार करवाना चाहती हैं तो हम उसको उसी तरह से सिखाते हुए वंश ने व्यवहार परिवर्तन की चेष्टा करते हैं। उदाहरण स्वरूप जब हम बच्चे को कोई मिठाई देते हुए कहते हैं। भागो तो हम बालक से भागने की क्रिया करने की अपेक्षा करते हैं और चाहते हैं कि वह भागे। इस प्रकार बालक में ज्ञान की संकल्पना बनती है कि आवश्यकता पड़ने पर मुझे भागना है। भविष्य में जब कभी बालक को भैया विपत्ति का आभास होगा तब या कोई अन्य आवश्यकता पड़ेगी तो बालक उस क्रिया को अवश्य प्रयुक्त करेगा इसी प्रकार ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास यह निर्धारित करता है कि पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान में किस प्रकार परिवर्तित किया जाए और नवीन ज्ञान को किस प्रकार परिस्थितियों में प्रयुक्त किया जाए। ज्ञान की किस श्रेणी को किस जगह पर स्थानांतरित करना है।

लेख अपने अनुभवों के आधार पर समाज द्वारा सिखाई गई नियमों के आधार पर विद्यालय में शिक्षकों द्वारा दिए गए ज्ञान के आधार पर यह फतेह निर्मित ज्ञान की परंपराओं के आधार पर यह निर्णय करता है कि उसे किस ज्ञान को किस प्रकार प्रयुक्त करना है यही ज्ञान का पुनर्निर्माण है तथा ज्ञान का स्थानांतरण है।

अपनी प्रगति जांचिए

10. छात्रों में नैतिकता, सहनशीलता और परोपकार आदि गुणों का विकास किसके द्वारा होता है?
    (क) अभ्यास से (ख) ज्ञान निर्माण से
    (ग) संवाद से (घ) सत्य से
11. अनुभव के दो भेद होते हैं–
    (क) यथार्थ और अयथार्थ (ख) प्रत्यक्ष और अनुमान
    (ग) उपमान और शब्द (घ) संशय और विपर्यय

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (घ)
7. (क)
8. (ग)
9. (घ)
10. (ख)
11. क)

1.7 सारांश

दर्शनशास्त्र की दृष्टि से ज्ञान की उत्पत्ति स्वतः होती है। यह मानव के हृदय में स्वयं उद्भासित होता है। जिसका स्रोत हम शिक्षा को मान सकते हैं, अर्थात् शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास है जिसमें अनुभव आदि का सहयोग लिया जा सकता है। ज्ञान शब्द सामान्यतः किसी वस्तु या विषय के संबंध में यथार्थ जानकारी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। तथापि इसका अर्थ बहुत व्यापक है। सारगर्भित रूप में : 'ज्ञान ऐसे विचारों के समूह को कहा जाता है जो कि चिंतन की विषय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप हो।'

टिप्पणी

ज्ञान मानवीय प्रयासों के परिणामस्वरूप ही प्राप्तव्य है, ज्ञान मानव को भविष्यद्रष्टा, निर्णय लेने वाला व बाह्य जगत को समझने योग्य बनाता है। ज्ञान द्वारा जीवन के उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं किन्तु मानवीय प्रयासों के परिणामस्वरूप। मानवीय प्रयासों का संबंध जब सूचनाओं के संग्रहण से होता है तब ज्ञान जाँच का विषय रहता है। दैनिक जीवन से जिस व्यक्ति को नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं उसे उस व्यक्ति विशेष के ज्ञान में वर्धन माना जायेगा। ज्ञान के लिए जिज्ञासा, अभ्यास और संवाद को महत्वपूर्ण माना गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसे सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिए। भारतीय समाज प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित है जहाँ सभी को समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय प्राप्त करने का अधिकार है। इस प्रकार के सामाजिक व्यवहार तथा व्यवस्था का ज्ञान की विशेष शिक्षा द्वारा संभव है, जहाँ पूर्वकालीन शिक्षा वर्ण व्यवस्था आधारित थी वहीं आज की सामाजिक व्यवस्था कर्माधारित है। भारतीय समाज के रीतिरिवाज, सांस्कृतिक परिवेश सांस्कृतिक विकास तथा सामाजिक सद्भावना का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। परिणामस्वरूप ज्ञान इसी सामाजिक–व्यवहार के इर्द–गिर्द घूमता है जो ज्ञानार्थी के लिए एक जटिल प्रक्रिया बन जाता है क्योंकि ज्ञान द्वारा समाज को सर्वोत्कृष्टता की ओर ले जायेगा, समाज का स्थायीकरण व विकास, विश्व व समाज का संयोजक शृंखला, आदर्शों को प्राप्त करना, सिद्धांतों का प्रचार करना, सांस्कृतिक बहुलवाद के विकास का अभिकरण, सांस्कृतिक पर्यावरण का संरक्षण के साथ व्यक्तित्व का समुचित विकास में अपना श्रेष्ठ योगदान देना है। अतः दोनों के मध्य होने वाली अंतःक्रिया एक जटिल प्रक्रिया परिवर्तित हो जाती है।

ज्ञान को समग्र रूप से समझना एक सरल कार्य नहीं है अतः ज्ञान को सरलता से समझने के लिए उसकी विशेषताओं, प्राप्त करने की प्रक्रिया, स्वरूप एवं प्रकारों आदि में विभाजित कर दिया गया है। ज्ञान के प्रस्तावात्मक रूप की व्याख्या परंपरागत रूप से प्लेटो के सिद्धांतों में प्राप्त होती है। यह प्लेटो के प्रारंभिक संवादों में से एक है। जिसमें सुकराती संवाद का रूप भी सम्मिलित है। सुकरात एक ऐसे व्यक्ति से पूछताछ करने के लिए एक नैतिक शब्द को विच्छेदित करने का प्रयास करते हैं जो शब्द के अर्थ को जानता है अंततः वह न तो विशेषज्ञ जान पड़ता है व न ही शब्द का ज्ञाता। अंततः यह विचार कि आत्मा शाश्वत है व सर्वज्ञाता है किन्तु सीखने के लिए केवल 'स्मरण' करना पड़ता है। इस प्रकार ज्ञान में तीन मुख्य अवयव हैं। ये अवयव ही ज्ञान के सत्य, विश्वास व औचित्यपूर्ण रूप से जाने जाते हैं।

शिक्षा के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक आधारों के महत्व के समान शिक्षा के सामाजिक आधारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकता और आकांक्षाओं तथा दर्शकों को आधार बनाकर की गई व्यवस्था है। समाज व्यक्तियों का एक संगठन है। यह संगठन व्यक्तियों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। यद्यपि समाज का निर्माण व्यक्ति से मिलकर होता है फिर भी समाजवादियों के अनुसार व्यक्ति के पीछे समाज की आवश्यकता, आकांक्षाओं एवं आदर्शों को अधिक महत्व दिया

जाता है। विद्वानों के अनुसार समाज की श्रेष्ठता किसी व्यक्ति पर किसी भी उत्तरदायित्व को बलपूर्वक नहीं थोप सकती फिर भी समाज सामाजिक बंधनों का एक ऐसा जाल है जो स्थिर न रहकर सदैव बदलता रहता है अर्थात समाज गतिशील है किंतु समाज के कुछ राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विचारधारा होती हैं, जिनके अनुसार वह व्यक्ति की समस्त शक्तियों के विकास हेतु ऐसे अवसर प्रदान करता रहता है, कि विकसित होने के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति उसे सबल, सुदृढ़, शक्तिशाली बनाने में अपना यथाशक्ति योगदान देता रहे।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **उद्भासित** : प्रकाशित।
- **संग्रहण** : ग्रहण या प्राप्त करना।
- **जिज्ञासा** : जानने की इच्छा।
- **अनवरत** : लगातार।
- **हस्तांतरण** : एक के हाथ से दूसरे के हाथ में आना।
- **सम्यक्** : उचित या उपयुक्त
- **परिलक्षित** : अच्छी तरह देखाभाला हुआ।
- **कुमति** : जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो।
- **अभिवृत्ति** : मनःस्थिति।

1.9 स्व—मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु—उत्तरीय प्रश्न

1. ज्ञान का स्वरूप संक्षेप में निरूपित कीजिए।
2. ज्ञान और कौशल में अंतर बताइए।
3. प्रक्रियात्मक ज्ञान से क्या अभिप्राय है?
4. परिचयात्मक ज्ञान किस प्रकार का ज्ञान होता है?
5. ज्ञान की संरचना पर प्रकाश डालिए।
6. बालक किस प्रकार से ज्ञान का निर्माता होता है।

दीर्घ—उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षण और प्रशिक्षण में अंतर बताइए।
2. शिक्षा के सामाजिक आधार से क्या अभिप्राय है?
3. नवीन ज्ञान तथा विचार को समझने में समुदाय की भूमिका को प्रतिपादित कीजिए।
4. बालक के नवीन ज्ञान के निर्माण में कक्षा—कक्ष की क्या भूमिका होती है।

5. टिप्पणी लिखिए–

(क) जिज्ञासा (ख) अभ्यास (ग) संवाद (घ) ज्ञान एवं सूचना (ङ) तर्क एवं विश्वास।

टिप्पणी

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Aggarwal, J.C. 2010. *Theory and Principles of Education* (13th edition). Noida: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Sharma, G.R. 2003. *Trends in Contemporary Indian Philosophy of Education: A Critical Evaluation.* New Delhi: Atlantic Publishers & Dist.
- Samuel, Ravi. 2015. *Education in Emerging India*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd.
- Sharma, A.P. 2010. *Indian & Western Educational Philosophy*. New Delhi: Pustak Mahal.
- Aggarwal, J.C. 2005. *Teacher and Education in a Developing Society* (4th edition). New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Dhawan, M.L. 2005. *Philosophy of Education*. New Delhi: Gyan Books Pvt. Ltd.
- Brubacher, J. S. 1969. *Modern Philosophy of Education*. New Delhi: McGraw Hill.
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- अदिर कोहेन (1983), 'एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ मार्टिन बूबर', एसोशिएटिड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
- एन.आर. स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी (2008), 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- रमन बिहारी लाल (2007), 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार' रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- दास, आर.सी. (1984), 'करिकुलम एंड इवैल्यूएशन', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1975), 'दस साल स्कूल के लिए पाठ्यक्रम – एक फ्रेमवर्क', नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1986), राष्ट्रीय एकता के दिशा निर्देशों के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या– एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक फ्रेमवर्क (संशोधित संस्करण), एनसीईआरटी।
- एनसीईआरटी (2000), स्कूल शिक्षा, नई दिल्ली के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा।

इकाई 2 नैतिक मूल्य

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 नैतिक मूल्य
- 2.2.1 मूल्य : परिभाषा, विशेषताएं और महत्व
- 2.2.2 व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता
- 2.2.3 नैतिक निर्णय लेने की आवश्यकता
- 2.2.4 समकालीन समाज में मूल्य शिक्षा का महत्व

2.3 बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता
- 2.3.1 विविध धर्मों और समाजों में विभिन्न मूल्य
- 2.3.2 स्कूलों में नैतिक शिक्षा का महत्व
- 2.3.3 सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों की उपयोगिता

2.4 नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और उद्देश्य
- 2.4.1 नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत
- 2.4.2 कोलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत
- 2.4.3 विश्लेषण, नैतिक प्रश्नों, आदर्श व्यवहार, परीक्षक परिस्थितियों आदि, द्वारा मूल्यों की शिक्षा

2.5 आधुनिक मूल्य
- 2.5.1 आधुनिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा
- 2.5.2 आधुनिक मूल्य : समता और समानता
- 2.5.3 व्यक्तिगत अवसर और सामाजिक न्याय
- 2.5.4 श्रम की गरिमा
- 2.5.5 आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद एवं लोकतांत्रिक शिक्षा
- 2.5.6 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और शिक्षा के साथ उनका अंतर्संबंध

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

नैतिकता का मनुष्य जीवन के लिए बहुत अधिक महत्व है। इसके अभाव में मनुष्य जीवन कठिन हो जाता है। नैतिकता सामाजिक जीवन को सुगम बनाती है। नैतिकता का संबंध मानवीय अभिवृत्ति से है, इसलिए इसका शिक्षा से अभिन्न और महत्वपूर्ण संबंध है। संसार के दार्शनिकों, शिक्षा शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, नीति शास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने नैतिकता को मानव के लिए एक आवश्यक गुण स्वीकार किया है। नैतिकता से उत्पन्न नैतिक मूल्य मानव की ही विशेषता है। इनके आधार पर ही मनुष्य मानवीय प्राणी कहलाता है। नैतिक मूल्य मनुष्य के विवेक में स्थित, आंतरिक तत्व हैं जो व्यक्तित्व के विकास में आधार का कार्य करते हैं। नैतिक मूल्यों का विस्तार व्यक्ति–परिवार, समाज से विश्व तक जीवन के समस्त क्षेत्रों में होता है। नैतिक मूल्यों

के कारण ही समाज में संगठनकारी शक्तियां गति प्राप्त करती हैं और विघटनकारी शक्तियां क्षीण होती हैं।

टिप्पणी

नैतिक शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग दूसरों में नैतिक मूल्यों का संचार करते हैं। व्यक्तियों का समूह ही समाज कहलाता है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज निर्मित होगा। अतः आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो संपूर्ण समाज और देश में नैतिकता उत्पन्न कर सके। यह नैतिकता नैतिक शिक्षा की सहायता से ही उत्पन्न की जा सकती है।

प्रस्तुत इकाई में नैतिक मूल्य, बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता तथा नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए आधुनिक मूल्यों के विषय में भी अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद बाद आप—

- नैतिक मूल्यों के महत्व को समझ पाएंगे;
- धार्मिक और सामाजिक मूल्यों की उपयोगिता को जान पाएंगे;
- नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से परिचित हो पाएंगे;
- राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों से भलीभांति अवगत हो पाएंगे;
- आधुनिक मूल्यों के विषय में जान पाएंगे।

2.2 नैतिक मूल्य

यहां पर नैतिक मूल्यों की परिभाषा, विशेषताएं और उनका महत्व बताते हुए व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता का प्रतिपादन किया जा रहा है।

2.2.1 मूल्य : परिभाषा, विशेषताएं और महत्व

आमतौर पर मूल्यों का मतलब नैतिक विचार, संसार के प्रति सामान्य धारणाएं या झुकाव अथवा साधारण रुचियां, रवैये, प्राथमिकताएं, आवश्यकताएं, भावनाएं और प्रवृत्तियां समझा जाता है। लेकिन समाजशास्त्री इन शब्दों का इस्तेमाल अधिक यथार्थपूर्ण ढंग से करते हैं जिसका मतलब है, "वह सान्यीकृत अंत जिसमें सहीपन, अच्छाई या अंतर्निहित वांछनीयता का अर्थ शामिल हो।"

यह एक संस्कृति के सदस्यों के बीच, अच्छे या बुरे तथा वांछनीय या अवांछनीय चीजों का महत्वपूर्ण तथा दीर्घकालिक विश्वासों या आदर्शों का समूह है। इसका मनुष्य के व्यवहार तथा रवैये पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और यह सभी परिस्थितियों में व्यापक दिशानिर्देशकों का काम करता है। दरअसल, मूल्य इन बुनियादी विश्वासों का प्रतिनिधित्व करते हैं कि, व्यवहार का एक विशिष्ट तरीका या अस्तित्व की एक अंतावस्था, एक विपरीत रवैये के तरीके या अस्तित्व की अंतावस्था की तुलना में निजी या सामाजिक तौर पर बेहतर है।

मूल्यों की परिभाषाएं

एम. हैरालांमॉस के अनुसार, "एक मूल्य यह विश्वास है कि कुछ अच्छा तथा वांछनीय है।"

टिप्पणी

आर. के मुखर्जी के अनुसार, "मूल्य सामाजिक तौर पर अनुमोदित ऐसी इच्छाएं और लक्ष्य हैं जो अनुकूलन, सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से आंतरिक किए जाते हैं और जो व्यक्तिपरक प्राथमिकताएं, मानक और आकांक्षाएं बन जाते हैं।"

जैलेजनिक और डेविड के अनुसार, "मूल्य मनुष्यों के मन में, मानदंडों की तुलना में, विचार हैं जो यह उल्लिखित करते हैं कि लोगों का व्यवहार कैसा होना चाहिए। मूल्य, गतिविधियों और संबंधों से अच्छाई की डिग्री भी जोड़ते है।"

आइ. जे. लेहनर और एन. जे. क्यूब के अनुसार, "मूल्य, जीवन के व्यक्तिगत दर्शनशास्त्र का एक अभिन्न अंग हैं जिसका मतलब है मूल्यों का वह निकाय जिसके अनुसार हम जीवन जीते हैं। जीवन के दर्शन में, हमारे लक्ष्य, आदर्श और सोचने के तरीके के अलावा वो सिद्धांत शामिल हैं जिनसे हम अपने व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं।"

टी. डबल्यू हिप्पी के अनुसार, "मूल्य, कार्यों तथा निर्णय के सचेत या अचेतन प्रेरक और न्यायसंगतता सिद्ध करने का काम करते हैं।"

मूल्य इस बात का साझा विचार है कि किसी चीज को वांछनीयता, मूल्य या अच्छाई के संबंध में किस प्रकार श्रेणीबद्ध किया जाए। कई बार इस बात का मतलब यह निकाला जाता है "ऐसे मानक जिनके जरिए कार्यों के अंत का चयन किया जाता है।"

इस प्रकार, मूल्य एक सभ्यता में अच्छा, वांछनीय, और उचित या बुरा, अवांछनीय और अनुचित समझी जाने वाली चीजों के प्रति सामूहिक अवधारणाएं हैं।

धन, वफादारी, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व और मित्रता मूल्यों के कुछ पहचाने हुए उदाहरण हैं। ये ऐसे सान्यीकृत अंत हैं जिन्हें समझ बूझ कर लोगों द्वारा अपनाया जाता है।

मूल्यों की व्यापकता के कारण, किसी एक समाज के आधारभूत मूल्यों को स्पष्ट करना आसान नहीं है।

मूल्यों की विशेषताएं

इन्हें ऐसे विचारों या विश्वासों की तरह परिभाषित किया जा सकता है जो एक व्यक्ति वांछनीय या अवांछनीय मानता है। इस कथन की विभिन्नता इस प्रकार है, पहली, एक व्यक्ति किस चीज का मूल्य पहचानता है, और दूसरी, वह किस हद तक मूल्य पहचानता है। मूल्य विशिष्ट हो सकते हैं, जैसेकि अपने माता पिता का सम्मान करना या एक घर का स्वामित्व या ये अधिक सामान्य हो सकते हैं जैसेकि, अच्छी सेहत, प्यार और लोकतंत्र। "सच्चाई की जीत", "अपने पड़ोसी को अपने सा स्नेह दें", आदि, सामान्य मूल्यों के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तिगत सफलताएं, निजी खुशी और भौतिकवाद, आधुनिक औद्योगिक समाज के मुख्य मूल्य हैं। इसे एक वांछनीय, एक आंतरिक रचना या व्यक्ति के स्वामित्व के मूल्यांकन के मानक के सिद्धांत के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। इस प्रकार के सिद्धांत और मानक कुछ कम होते हैं और ये रोजाना जीवन

में व्यक्ति द्वारा अनुभव किए अनेक क्षणों के मूल्यांकन निर्धारित करते हैं और उनका दिशानिर्देश भी करते हैं।

मूल्यों की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

- ये अत्यंत व्यावहारिक हैं, और मूल्यांकन के लिए न केवल तकनीकों की आवश्यकता होती है, बल्कि सामरिक संदर्भ की भी समझ होती है।
- ये क्षमता और नैतिकता के मानक प्रदान कर सकते हैं।
- ये विशिष्ट स्थितियों या व्यक्तियों से परे जाने की क्षमता रखते हैं।
- व्यक्तिगत मूल्य संस्कृति, परंपरा और आंतरिक एवं बाहरी कारकों के संयोजन से प्रभावित हो सकते हैं।
- ये अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।
- ये किसी व्यक्ति के मूल में अधिक केंद्रीय होते हैं।
- हमारे मूल मूल्यों में से अधिकांश मूल्य परिवार, दोस्तों, आस–पड़ोस, स्कूल, मास प्रिंट, दृश्य मीडिया और समाज के अन्य स्रोतों से जीवन में जल्दी सीखे जाते हैं।
- मूल्य विचार, वस्तुओं, व्यवहार आदि के बारे में प्रभावी विचारों से भरे रहते है।
- इनमें एक न्यायिक तत्व होता है, जिसमें वो व्यक्ति के विचारों को सही, अच्छा या वांछनीय होने के विचारों को लेकर चलते हैं।
- अलग–अलग संस्कृतियों और अलग–अलग व्यक्तियों के भिन्न मूल्य हो सकते हैं।
- मूल्य मनुष्य के मूल आवेगों और इच्छा के एकीकरण और पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- ये सामाजिक कार्यों के दौरान होने वाले सामान्य अनुभव होते हैं, जो दोनों, व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रतिक्रियाओं तथा रवैयों से बनते हैं।
- ये समाजों का निर्माण करते हैं और सामाजिक संबंधों को एकीकृत करते हैं।
- ये व्यक्तित्व और संस्कृति की गहराई के आदर्श आयामों को ढालते हैं।
- ये लोगों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं और दूसरों के कार्यों के मूल्यांकन के लिए मापदंड के रूप में कार्य करते हैं।
- सामाजिक जीवन के संचालन में इनकी विशेष भूमिका होती है। ये दैनिक जीवन व्यवहार के प्रति मानकों की रचना हेतु सहायता करते हैं।

एक संस्कृति के मूल्यों में परिवर्तन आ सकता है, लेकिन एक व्यक्ति के जीवन काल में ये अधिकतर स्थिर रहते हैं। सामाजिक तौर पर साझा किए गए और गहरे तौर पर महसूस किए गए मूल्य हमारे जीवन का मूलभूत हिस्सा होते हैं। ये मूल्य हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाते हैं। ये उन लोगों द्वारा साझा व प्रबलित किए जाते हैं जिनके साथ हम सम्पर्क में रहते हैं। चूंकि मूल्य अकसर रवैये और व्यवहार को दृढ़ ढंग से प्रभावित करते हैं, तो ये, एक प्रकार से, कार्य स्थल पर कर्मचारी आचरण की निजी कंपास का काम करते हैं। ये इस बात को निर्धारित करने में सहायता करते हैं

कि कर्मचारी अपने काम एवं कार्यस्थल के प्रति आवेशपूर्ण है, इससे औसत से अधिक फायदे की, कर्मचारी संतुष्टि, दृढ़ टीम गतिशीलता और तालमेल की उम्मीद की जा सकती है।

टिप्पणी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद (NCERT) द्वारा प्रदत्त 83 मूल्यों की सूची

1. दूसरों के सांस्कृतिक मूल्यों की सराहना	2. अस्पृश्यता विरोध
3. नागरिकता	4. दूसरों की चिंता
5. दूसरों का ध्यान रखना	6. सहयोग
7. सामान्य अच्छाई	8. प्रजातांत्रिक निर्णय लेना
9. व्यक्ति की महत्ता	10. शारीरिक कार्य का सम्मान
11. साथी भावना	12. अच्छे आचरण
13. राष्ट्रीय एकीकरण	14. आज्ञापालन
15. समय का सदुपयोग	16. ज्ञान की खोज
17. संयम	18. करुणा
19. सामान्य लक्ष्य	20. शिष्टाचार
21. भक्ति	22. स्वास्थ्यकर जीवन
23. अखण्डता	24. शुचिता
25. निष्कपटता	26. आत्मनियंत्रण
27. साधन संपन्नता	28. नियमितता
29. दूसरों का सम्मान	30. वृद्धावस्था का सम्मान
31. सादा जीवन	32. सामाजिक न्याय
33. स्वानुशासन	34. स्वसहायता
35. स्वसम्मान	36. आत्मविश्वास
37. स्वसमर्थन	38. स्वाध्याय
39. आत्मनियंत्रण	40. समाजसेवा
41. मानवजाति की एकात्मता	42. अच्छे बुरे में विभेद का भाव
43. सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव	44. स्वच्छता
45. साहस	46. जिज्ञासा
47. धर्म	48. अनुशासन
49. सहनशीलता	50. समानता
51. भिन्नता	52. निष्ठा
53. स्वतंत्रता	54. दूरदर्शिता
55. सज्जनता	56. कृतज्ञता
57. ईमानदारी	58. उपकार भाव
59. मानवतावाद	60. न्याय
61. सत्यता	62. सहिष्णुता

टिप्पणी

63. सार्वभौमिक सत्य
64. सार्वभौमिक प्रेम
65. राष्ट्रीय व जनसंपत्ति का महत्व
66. पहल
67. दयालुता
68. जीवों के प्रति दया
69. धर्म परायणता
70. नेतृत्व
71. राष्ट्रीय एकता
72. राष्ट्रीय चेतना
73. अहिंसा
74. शांति
75. देशभक्ति
76. समाजवाद
77. सहानुभूति
78. धर्मनिरपेक्षता
79. पृच्छा का भाव
80. दल भावना
81. समयबद्धता
82. दल कार्य
83. राष्ट्र प्रेम

मूल्यों का महत्व

मूल्य ऐसे स्थायी विश्वास होते हैं कि आचरण का एक विशिष्ट ढंग या अस्तित्व की अंतावस्था, व्यक्तिगत या सामाजिक ढंग से बेहतर समझी जाती है। इन्हें बदलना बहुत मुश्किल होता है। एक नैतिक आचरण को कार्यस्थल में ज्यादा पहचान प्राप्त होती है, प्रबंधन में बतौर चर्चा का विषय मूल्यों का महत्व बढ़ जाता है। मूल्य सामान्य सिद्धांत होते हैं जो हमारा दैनिक व्यवहार नियंत्रित करते हैं। ये न केवल हमारे व्यवहार को दिशा दिखाते हैं बल्कि ये अपने आप में आदर्श और उद्देश्य होते हैं। ये सामाजिक कार्य के अंतिम लक्ष्यों या उद्देश्यों की अभिव्यक्ति है। हमारे मूल्य, इन बातों के हमारे निर्णयों का आधार हैं कि क्या वांछनीय, सुंदर, सही, महत्वपूर्ण, उपयुक्त और अच्छा है तथा क्या अवांछनीय, बदसूरत, गलत, और बुरा है। अगुआ समाजशास्त्री दुर्खीम द्वारा, विघटनकारी व्यक्तिगत आवेगों को नियंत्रित करने हेतु, मूल्यों के महत्व पर जोर दिया गया है (हालांकि इनके द्वारा 'नैतिकता' शब्द का इस्तेमाल किया गया था)। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि मूल्य व्यक्तियों को इस बात का अहसास दिलाते हैं कि वे अपने से किसी बड़ी चीज का हिस्सा हैं। ई शिल्स द्वारा भी इसी बात पर जोर दिया गया है, उनका मानना है कि केंद्रीय मूल्य प्रणाली (समाज के मुख्य मूल्य) को अनुरूपता और व्यवस्था स्थापित करने के लिए आवश्यक माना जाता है। भारतीय समाजशास्त्री आर. के. मुखर्जी का कहना है, "प्राकृतिक रूप से, सभी मानव संबंध और व्यवहार मूल्यों में सन्निहित होते हैं। दरअसल, संगठनात्मक व्यवहार की जांच के लिए मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ये व्यवहारों तथा प्रोत्साहन को समझने का आधार बनाते हैं। व्यक्ति एक संगठन में "क्या हो सकता है" या "क्या नहीं हो सकता" के विचार लेकर प्रवेश करता है। बेशक, ये अवधारणाएं मूल्य रहित नहीं होती हैं। ये व्यक्ति के अस्तित्व का हिस्सा होती हैं। ये हमें, हमारे जीवन में महत्वपूर्ण बातों की याद दिलाती हैं जैसेकि, सफलता या परिवार, लेकिन केवल इनके होने से गैर महत्वपूर्ण चीजों का भी अहसास होता है। ऐसी बात नहीं कि समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन नहीं आ सकता। बढ़ती उम्र और प्रौढ़ता के साथ, हम जीवन में अलग पहलुओं को मूल्य देने लगते हैं। हो सकता है कि हम छोटी उम्र में परिवार को मूल्यवान समझते हों लेकिन बढ़ती उम्र के साथ, बच्चों के बड़े होने पर, हो सकता है कि हम व्यापार में सफलता को अधिक मूल्य देने लग जाएं।

टिप्पणी

2.2.2 व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता

व्यक्तिगत मूल्यों का अर्थ : व्यक्तिगत मूल्य ऐसी नैतिक–संहिता का हिस्सा हैं जो हमारे द्वारा किए जाने वाले कार्यों को परिभाषित व दिशानिर्देशित करते हैं। हम इन्हें महत्वपूर्ण मानते हैं, वो चीजें जिनसे हमारी भलाई और खुशी को फर्क पड़ता है। अपने व्यक्तिगत मूल्यों का विवरण करने का सबसे आसान तरीका है अपने व्यक्तित्व और व्यवहारों के बारे में सोचना। अंत में, आपके मूल्य आपके व्यक्तित्व और आपका हिस्सा बन जाते हैं।

इनमें से कुछ आचरण का सार्वभौमिक नियम अपनाते हैं – ये हमें धर्म और नैतिकता के बारे में सोचना सिखाते हैं। हम सब, कोई न कोई मूल्य अपनाने का सोचते हैं, हमारे द्वारा अपनाए गए नियम इस बात पर निर्भर करते हैं कि हमें जीवन में क्या चीज प्यारी है और हम क्या उपलब्ध करना चाहते हैं और क्या बनना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि एक व्यक्ति को प्रसिद्धि और लोकप्रियता से ज्यादा हमदर्दी और दयालुता पसंद हो। लोग, विषयों की निम्न सूची में से किसी भी एक पर अपने व्यक्तिगत मूल्य टिका सकते हैं–

- प्रामाणिकता
- साहस
- बहादुरी
- चुनौती
- दृढ़ निश्चय
- आस्था
- दोस्ती
- ईमानदारी
- सीख
- सार्थक काम
- आशावाद
- लोकप्रियता
- आदर करना
- आध्यात्मिकता
- सफलता
- भरोसेमंदता
- बुद्धिमत्ता
- उपलब्धि
- सुंदरता
- करुणा
- जिज्ञासा
- निष्पक्षता
- प्रसिद्धि
- खुशी
- दयालुता
- वफादारी
- खुलापन
- अभिराम
- मान्यता
- आत्मसम्मान
- स्थिरता
- स्थिति
- धन

जैसा कि आप सोच सकते हैं, उपरोक्त विषयों से संबंधित मूल्य अपनाना हम सब के लिए अलग–अलग परिणाम ला सकता है– हम इन्हें अपनाने के लिए भिन्न संयोजनों और प्राथमिकताओं का उपयोग करते हैं। इसका अंत परिणाम क्या निकलता है? इसका जवाब लेखक व कवि रॉबर्ट जेड द्वारा दिया गया है–

"लोगों में एक बात समान होती है: सब लोग अलग होते हैं"। इससे पहले कि हम अपने नैतिक सिद्धांतों के क्यों और कैसे को बेहतर समझने की कोशिश करें, एक

टिप्पणी

बात ध्यान में रखनी जरूरी है। मूल्य अकसर, दूसरे लोगों द्वारा देखे जा सकते हैं और ये हमारे कर्मों, शब्दों, व्यवहारों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह कि इन्हें अपनाने से हम वैसे बनते हैं जैसा हम भविष्य में बनने की अपेक्षा करते हैं। यानी, हमारे व्यक्तिगत मूल्य न केवल हमारा विस्तार हैं, बल्कि ये हमारे चरित्रों को भी ढालते हैं। ये हम हैं – हम जो हैं और जिसमें विश्वास रखते हैं।

व्यक्तिगत मूल्यों का महत्व

आखिर इनका इतना फर्क क्यों पड़ता है?

हमारे व्यक्तित्व और कर्म मुख्य तौर पर हमारे व्यक्तिगत मूल्यों पर निर्भर करते हैं। खुदको पुनः खोजने की हर कोशिश हमारे वर्तमान मूल्यों में परिवर्तन ला कर अपने जीवन को और भरपूर बनाने के अवसर पर निर्भर करती है। अपने नैतिक सिद्धांतों का ज्ञान, हमारी बहुत तरीकों से सहायता करता है। इससे हमें अपना उद्देश्य ढूंढने में सहायता मिल सकती है, हमारा आत्म–विश्वास बढ़ सकता है, और हमें मुश्किल परिस्थितियां पार करने में मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता है।

अपने मूल्य पहचान कर, उन्हें निर्धारित करके उनका पालन करने के निम्न फायदे भी हैं–

व्यक्तिगत मूल्य, आत्म–जागरुकता में सहायता करते हैं

हाल के वर्षों में आत्म–जागरूकता को बहुत अधिक ध्यान प्राप्त हुआ है। असल में, इसके फायदों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इन्हें, अनेक अन्य फायदों के अलावा, बढ़े हुए व्यक्तिगत विकास और बेहतर संबंधों से जोड़ कर देखा जाता है। इनसे हमें ठोस निर्णय लेने, प्रभावशाली ढंग से संचार करने, अधिक तरक्की पाने, और कम झूठ बोलने, धोखा न देने और चोरी न करने में सहायता मिलती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो, आत्म–जागरूकता जैसा कौशल होना बेहद जरूरी है और इसका अवश्य पालन–पोषण किया जाना चाहिए।

मूल रूप से आत्म–जागरूकता आपके व्यक्तित्व का ज्ञान है। बेशक, यह एक बहुमूल्य मूल्य है जिसका होना बहुत फायदेमंद है, महान विद्वानों का कहना हैः खुदको जानो। ऐसा न होने की सूरत में, आप यह कैसे जान पाएंगे कि आप क्या उपलब्ध करना चाहते हैं, आपकी क्षमता क्या है या कुछ हासिल करने के लिए आप खुदको किस हद तक धकेल सकते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर जाने बिना आप शीशे में से आपको देखते हुए व्यक्ति को बिल्कुल पहचान नहीं पाएंगे। खुदको पहचानने का सबसे पहला कदम है इस बात की जागरूकता कि आप किस बात से प्रोत्साहित होते हैं, आपको कौनसी चीज ऊर्जा देती है और आपके लिए क्या प्रिय है– यानी, इसकी शुरुआत अपने व्यक्तिगत मूल्य पहचानने से होती है।

व्यक्तिगत मूल्य हमारे परिणामों को प्रभावित करते हैं

अपने बारे में जानकारी होना अच्छी बात है लेकिन आखिर इस आत्म–जानकारी का किया क्या जाए? जीवन गुरुओं द्वारा अकसर यह सलाह दी जाती है कि, जीवन में सफलता तथा मनचाही चीजें हासिल करने के लिए हमें अपनी प्रबलताओं पर काम करना चाहिए। अपने चरित्र की दुर्बलताओं के बारे में सोचने की जगह अपनी शक्तियों पर ध्यान देने से हमें अधिक खुशी प्राप्त होगी और कम दबाव महसूस होगा। बेशक, इसके लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि हम इन्हें ठीक से पहचान पाएं। खुदको

टिप्पणी

जानने तथा अपने मूल्यों को पहचानने के और भी फयदे हो सकते हैं। यह, व्यक्तिगत सुदृढ़ीकरण, आत्म–सुधार, जीवन वृद्धि, और इसी प्रकार के हाल के सिद्धांत। लेकिन यह सब बदलाव पर निर्भर है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो, आप उस चीज को बदल नहीं सकते जिसे जानते न हों। जब हम व्यक्तिगत सु–ढ़िकरण की बात करते हैं तो आमतौर पर इसका मतलब है नई आदतें बनाना, नए व्यवहार अपनाना, सोचने के ने ढंग इखतियार करना और बेशक, नए व्यक्तिगत मूल्य अपनाना। अपने परिणामों और अंत में अपने जीवन में बदलाव लाने के लिए, हमें अपने कर्मों तथा मानसिकता में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। ऐसा करने के लिए, हमें छोटी चीजों को खदेड़ कर उन बातों अथवा चीजों पर ध्यान देने की जरूरत है जो सच में महत्वपूर्ण हैं।

व्यक्तिगत मूल्य क्या होते हैं? ये सफलता के लिए महत्वपूर्ण क्यों होते हैं?

व्यक्ति द्वारा लिया गया हरेक निर्णय, बड़ा या छोटा, दोपहर के भोजन से लेकर व्यवसाय के चुनाव तक, व्यतिगत मूल्यों पर निर्भर करता है। ये मूल्य व्यक्ति के अंदर सन्निहित होते हैं, चाहे उसे इस बात का अहसास हो या नहीं। आपके व्यक्तिगत मूल्य, संदर्भ की आंतरिक प्रणाली का काम करते हैं। चलिए भोजन के चुनाव की बात करते हैं, हो सकता है आप शाकाहारी हैं, हो सकता है आप अपने बॉस को खुश करना चाहते हैं, हो सकता है आपको आइसक्रीम इसलिए पसंद है क्योंकि यह आपको अपनी दादी की याद दिलाती है? ये सब व्यक्तिगत मूल्यों के उदाहरण हैं, जो कई सालों से निर्मित नैतिक सिद्धांतों पर आधारित हैं। आपके व्यक्तिगत कैरियर का चुनाव, आपके द्वारा प्रभावशाली समझे जाने वाले सिद्धांत के साथ मिल जाते हैं, काम के वातावरण तथा आपके निजी अतीत से संबंधित मूल्य।

अपने लिए पति या पत्नी का चुनाव करना, व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों का एक जटिल जंजाल है, और इनमें से कई तो आपको ज्ञात भी नहीं हैं। अपने व्यक्तिगत मूल्यों के बारे में जानकर और उनके विकास को समझ कर आप यह समझ सकते हैं कि आप अपने इर्द–गिर्द संसार के प्रति जागरूक हो सकते हैं। आपके मूल्य, आपके लक्ष्यों को परिभाषित एवं उन्हें प्राप्त करने में आपकी सहायता कर सकते हैं।

व्यक्तिगत मूल्य बनाम सामाजिक मूल्य

हमारे व्यक्तिगत मूल्य, हमारे समाज के मूल्यों में अंतर्निहित हैं। हम अपने माता–पिता और शिक्षकों के मूल्यों को और मीडिया में दर्शाए गए मूल्यों को अपनाकर अपने जीवन की शुरुआत करते हैं। कानून, शिष्टाचार, यहां तक कि धार्मिक मान्यताएं सभी सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हैं। लेकिन सामाजिक मूल्यों का विकास होता रहता है। स्त्रियों की स्थिति इस बात का एक मुख्य उदाहरण है। पिछले 100 वर्षों में सामाजिक मूल्यों में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। खास कर स्त्रियों (और पुरुषों) द्वारा खुदको देखने और अपना मूल्य समझने के नजरिए में तो आज बहुत बड़ा अंतर है। व्यक्तिगत मूल्य (इस मामले में, स्वतंत्रता और बराबरी का व्यक्तिगत मूल्य) समाज के मूल्यों में बदलाव लाते हैं और आगे, सामाजिक बदलाव इस प्रकार व्यक्तिगत मूल्यों को प्रभावित करते हैं जिससे देश के लोग अब पुरुषों और स्त्रियों की बराबरी को एक केंद्रीय मूल्य समझते हैं। व्यक्तिगत मूल्य, हमारे आस–पास के मूल्यों से अलग हो सकते हैं – शायद इसलिए क्योंकि हम अलग पृष्ठभूमि से हैं, इसका एक और कारण हो सकता है कि हमारी रुचि अलग है या क्योंकि हम समझ बूझ कर विकल्प लेते हैं। अगली बार अपने दोस्तों से असहमती होने पर खुदको देखना, आपके व्यक्तिगत मूल्य

टिप्पणी

उभर कर आ रहे हैं। आप अपने व्यक्तिगत मूल्यों की पहचान निम्न प्रश्नों के उत्तर देकर कर सकते हैं–

- उस व्यक्ति के बारे में सोचो जिसकी आप प्रशंसा करते हैं। उनकी कौन–सी बात आपको सबसे अधिक पसंद है?
- घर को आग लगने पर आप सबसे पहले कौनसी चीज बचाने का प्रयास करेंगे?
- याद करो पिछली बार किस मामले को लेकर आप सच में उत्तेजित हुए थे?
- याद करो किस बात से आपको गहरी संतुष्टि प्राप्त हुई थी? आपने कौनसा अर्थपूर्ण कार्य किया था?
- भविष्य के बारे में सोचो। 10, 20, 50 वर्षों बाद आप संसार को किस हाल में देखना पसंद करेंगे?

ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर आपको अपने व्यक्तिगत मूल्यों का काफी हद तक सही अनुमान देंगे। इनमें से कुछ तो आपको अचंभित भी कर देंगे। हो सकता है कि आपके व्यक्तिगत मूल्य आपके औपचारिक मूल्यों से मेल न खाते हों। यह कार्यवाही हर व्यक्ति के जीवन में लगातार चलती रहती है।

व्यक्तिगत मूल्य और आत्म–मूल्य

एक व्यक्ति का आत्म–मूल्य पूरी तरह इस बात से जुड़ा रहता है कि वह अपने जीवन और अपने व्यक्तिगत मूल्यों में कितना सामंजस्य बैठा सकता है। यदि कोई व्यक्ति सच्चाई पसंद है और उसकी नौकरी उससे झूठ बोलने की अपेक्षा रखती है तो उसका आत्म–मूल्य डगमगा जाएगा। यदि कोई व्यक्ति सदा जीतने में विश्वास रखता है लेकिन बार बार हारता रहता है तो उसका आत्म–मूल्य ढह जाएगा। लेकिन, यदि कोई व्यक्ति, विपरीत परिस्थितियों में और अड़चनों के सामने भी अपने व्यक्तिगत मूल्यों से जुड़ा रहता है तो ऐसे व्यक्ति को आत्मसंस्थापन का अहसास होगा और उसे अपने भीतर एक गहरी शांति महसूस होगी।

व्यक्तिगत मूल्य और सफलता

आइए इस पहचान खेल के माध्यम से सफलता को परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। यदि आपकी कल मृत्यु हो जाए और आपको केवल एक बात से याद रखा जाने का विकल्प हो तो आप किस बात के कारण याद रखा जाना पसंद करेंगे? यदि कोई आपसे कहे कि आपकी अगले 10, 20, 50 वर्षों में सफल होने की संभावना हो तो आपको वह सफलता कैसी दिखाई देगी? इस प्रश्न का उत्तर सोचते समय आपकी आंखों के सामने आने वाले दृश्य आपको अचंभित कर सकते हैं। सफलता हमेशा पैसों या स्तर से संबंधित नहीं होती और अकसर आप जिस चीज को प्राप्त करने के लिए परिश्रम करने का सोचते हैं, ज्यादातर आपकी चाह नहीं होती – दूसरे शब्दों में कहें तो, आपके द्वारा चाही जाने वाली चीज का आपके व्यक्तिगत मूल्यों से सामंजस्य नहीं होता। ऐसा इसलिए क्योंकि, सफलता आपके व्यक्तिगत मूल्यों का एक पहलू है, आपका संदर्भ बिंदु, आपका लक्ष्य, आपके अर्थ व उद्देश्य का अहसास।

सांस्कृतिक मूल्य झुकाव

चलो अब संस्कृति या समाज स्तर की बात करते हैं। इस स्तर पर, हम ऐसे मूल्य निर्माणों की बात करते हैं जो समाजों की प्रकृति या अन्य बड़े ठोस समूहों (उदाहरण के लिए, जातीय समूहों) को प्रतिबिंबित करते हैं। मुख्य सामाजिक लक्ष्य हासिल करने

टिप्पणी

के लिए ये मूल्य आयाम उपयुक्त होने चाहिए जिससे सामाजिक मतभेदों की ठीक से पहचान हो सके। शुरुआती सामाजिक सिद्धांतकारों (कॉमटे, 1896; दुर्खीम, 1897; वेबर, 1922) द्वारा इन लक्ष्यों की पहचान सामाजिक व्यवस्था बरकार रखने, सामाजिक संघर्ष कम करने, उत्पादकता और नवाचार प्रोत्साहित करने तथा सामाजिक बदलाव का विनियमन करने के रूप में की गई थी। ये सामाजिक कार्य पद्धति की मूल आवश्यकताएं हैं जो व्यक्तिगत कार्य पद्धति की जरूरतों से अलग हैं।

इसलिए, सामाजिक संस्कृति के मूल्यों की तुलना करने और व्यक्तियों के मूल्यों की तुलना करने के उपयुक्त आयाम भी अलग हैं। हो सकता है कि एक समाज में प्रचलित मूल्य महत्व, एक संस्कृति की केंद्रीय विशेषता हो (हॉफस्टेड, 1980; इन्गलहार्ट, 1997; श्वार्ट्ज, 1999; वेबर, 1958; विलियम्स, 1958)। ये महत्व अच्छे और वांछनीय होने की अवधारणाएं हैं, सांस्कृतिक आदर्श। मानक मूल्य महत्व एक समाज में प्रचलित जटिल विश्वासों, प्रथाओं तथा विशिष्ट मानकों एवं व्यक्तिगत मूल्यों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। ये अंतर्निहित संस्कृति की अभिव्यक्तियां हैं। सांस्कृतिक मूल्य महत्व इन अभिव्यक्तियों को आकार प्रदान करने में सहायता करते हैं और इन्हें सुसंगतता की एक डिग्री देते हैं। संस्कृति स्वयं एक अव्यक्त चर है जिसे केवल अभिव्यक्तियों द्वारा मापा जा सकता है।

इस प्रकार, संस्कृति व्यक्ति के बाहर है, यह एक मनोवैज्ञानिक चर नहीं है। यह उस संदर्भ का पहलू है जिसमें लोग अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसा लगता है कि हॉफस्टेड (1980) द्वारा संस्कृति का दिया गया रूपक "मन की प्रोग्रामिंग", संस्कृति को लोगों के मन में ढूंढता है, जिससे यह एक मनोवैज्ञानिक निर्माण बन जाता है। वैसे इस विचार की हॉफस्टेड द्वारा पुष्टि नहीं की गई है लेकिन यह अनेक सांस्कृतिक एवं पार सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिकों (उदाहरण के लिए चियु एवं अन्य, प्रेस में; कितयामा एवं कोहन, 2007) में आम है, खासकर उनमें जो संस्कृति को खासतौर पर स्वयं के बारे में सोचते हैं (उदाहरण के लिए, मार्क्स और कितयामा, 1991)। मूल्य झुकाव, जो सामाजिक संस्कृति के पहलू के केंद्रीय हैं, व्यक्तिगत लोगों के मन को प्रभावित तो अवश्य करते हैं लेकिन ये मन में स्थापित नहीं होते। हॉफस्टेड के रूपक को दोहराते हुए, संस्कृति मन की 'प्रोग्रामर' है, उसका प्रोग्राम नहीं। एक विशिष्ट सामाजिक प्रणाली में रहने के आधार पर, लोगों को अपने समाज की संस्कृति के मानदंड मूल्य महत्व का अनुभव होता है, एक प्रेस के समान जिससे वे अवगत हैं, एक प्रेस जो उनके रवैयों, विश्वासों, व्यवहार तथा विचार को प्रभावित करती है (बर्जर और लकमैन, 1966)।

एक संस्कृति की प्रेस कई रूप इखतियार करती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से, प्रेस व्यक्ति के उन प्रधान अनुभवों से संदर्भित है जिनसे उसका अपने दैनिक जीवन में कम या ज्यादा सामना होता रहता है (उदाहरण के लिए, ऐसे अनुभव जो व्यक्ति या समूह, सामग्री या आध्यात्मिकता की ओर अधिक ध्यान आकर्षित करता है)। प्रेस भाषा नमूनों का भी आकार लेता है (उदाहरण के लिए, सर्वनाम का उपयोग जो औरों की तुलना में स्वयं की केंद्रियता पर जोर देता है; कषिमा और कषिमा, 1998)। सांस्कृतिक प्रेस को पर्यावरणीय खर्चों के सेट के रूप में भी अवधारित किया जा सकता है (नॉरमैन, 1988), एक विशेष समाज में कम या ज्यादा कार्यों की संभावना (उदाहरण के लिए, दूसरों से या स्वतंत्रता के साथ एकजुटता व्यक्त करने के अवसर)। समाजशास्त्रीय शब्दों में, यह प्रेस उन उम्मीदों तथा बाधाओं को संदर्भित है जिनका अनुभव सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी भूमिकाएं निभाने में कभी न कभी अवश्य होता है (उदाहरण के लिए, स्कूलों में – प्रश्न पूछने की प्रथा का प्रोत्साहन या उसमें बाधा, न्यायालयों में – केस जीतने की

उम्मीद या सच पाने की कोशिश)। एक समाज में, विशेष अनुभवों, उम्मीदों, बाधाओं, संभावनाओं और बिना प्रमाण के सही मानी जाने वाली प्रथाओं की बारंबारता अंतर्निहित मानक मूल्य महत्व को व्यक्त करते हैं जो एक संस्कृति का केंद्र होते हैं।

संस्कृति का यह दृष्टिकोण संस्कृति बतौर मनोवैज्ञानिक चर के दृष्टिकोण के विपरीत है। ये दृष्टिकोण विश्वासों, मूल्यों, व्यवहारों औरध्या समाज के व्यक्तिगत सदस्यों या सांस्कृतिक समूहों द्वारा साझा किए गए सोचने के ढंगों को संस्कृति के रूप में देखते हैं। कई विचारक इन्हें संस्कृति के महत्वपूर्ण परिणामों की नजर से देखते हैं। संस्कृति का इन पर प्रभाव जांचने के लिए, इन्हें संस्कृति से अलग करके देखना जरूरी है – समाज में मानक मूल्य महत्व जो इन्हें प्रभावित करते हैं। ये महत्व, उन प्रेस और उम्मीदों के जरिए जिनसे लोग अवगत हैं, व्यक्तिगत विश्वासों, कार्यों, लक्ष्यों तथा सोचने के तरीकों को आकार प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, थाईलैंड में पदानुक्रमित संबंधों और पारंपरिक, समूह के भीतर, एकजुटता के संरक्षण एक दृढ़ सांस्कृतिक मूल्य महत्व (श्वार्ट्ज, 2004), व्यापक अनुरूपता और आत्म–विनाशकारी व्यवहार को प्रेरित करता है।

एक समाज में सामाजिक संगठनों की व्यवस्था का ढंग, अंतर्निहित सांस्कृतिक मूल्य महत्व व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, प्रतिस्पर्धी आर्थिक प्रणालियां, टकरावपूर्ण कानूनी प्रणालियां, और उपलब्धि उन्मुख बाल–पालन सभी सफलता, महत्वाकांक्षा और आत्म–विश्वास पर एक सांस्कृतिक मूल्य महत्व व्यक्त करते हैं (उदाहरण के लिए, अमेरिका में)। ये सामाजिक संगठन लगातार, समाज में रहने वाले लोगों को अंतर्निहित सांस्कृतिक मूल्यों से सुसंगत महत्वपूर्ण चीजों/बातों, संभवताओं तथा अपेक्षाओं से अवगत करवाते हैं। अधिकतर लोग उन सोचने के तरीकों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और व्यक्तिगत मूल्य प्राथमिकताओं को विकसित या अपनाते, औरध्या आंतरिक रूप से स्वीकार करते हैं, जो उन्हें उन सामाजिक संदर्भों में प्रभावशाली रूप से कार्य करने का मौका देते हैं, जिनसे वे अवगत हैं। इस प्रकार वे संस्कृति का प्रभाव सोखते हैं।

सामाजिक मूल्य झुकाव

जीवित रहने के लिए, प्रत्येक समाज को मानव गतिविधि का विनियमन करने में आड़े आने वाली मूल समस्याओं से निपटना और उन्हें हल करना चाहिए (क्लूकोहॉन और स्ट्रोडबेक, 1961; पार्सन्स, 1951)। ये और अन्य स्रोत (कॉम्टे, 1896; दुर्खीम, 1897; वेबर, 1922), तीन सामाजिक समस्याओं को बेहद महत्वपूर्ण बताते हैं–

1. व्यक्ति और समूह के बीच सीमाएं और इष्टतम संबंध परिभाषित करनाय
2. लोगों के बीच सामंजस्य सुनिश्चित करना ताकि माल और सेवाएं इस प्रकार निर्मित हों जिससे सामाजिक ताना–बाना बना रहेय
3. मानव और प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग का विनियमन करना। सांकृतिक मूल्य महत्व इन समस्याओं के प्रति पसंदीदा सामाजिक प्रतिक्रियाएं प्रतिबिंबित तथा उचित सिद्ध करते हैं। संस्कृतियों की तुलना करने ले लिए आयामों के सेट मौजूद हैं जो ऐसे सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हैं जो शायद इन समस्याओं के लिए वैकल्पिक सामाजिक प्रतिक्रियाएं अंतर्निहित कर सकें (श्वार्ट्ज, 1994 बी, 1999, 2008 ए)। ये सांस्कृतिक आयाम एक प्राथमिक सिद्धांत पर आधारित हैं, हॉफस्टेड (1980), और इंगलहार्ट व बेकर (2000) आयामों के विपरीत।

सांस्कृतिक मूल्य झुकाव जो इन सैद्धांतिक आयामों के धुरे हैं, आदर्श–प्रकार के हैं, वास्तविक समाजों की संस्कृतियां, आयामों के साथ सरणी हैं। ये झुकाव मानक प्रतिक्रियाएं हैं; ये बताते हैं कि संस्थानों को किस प्रकार कार्य करना चाहिए और समाज की समस्याओं से निपटने हेतु लोगों को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

2.2.3 नैतिक निर्णय लेने की आवश्यकता

जब कभी नैतिक निर्णय लेने की बात आती है तो हम अकसर उस स्वर्ण नियम के बारे में सोचते हैः दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसे कि तुम उनसे अपने प्रति अपेक्षा रखते हो। इसके बावजूद हम ऐसे निर्णय क्यों लेते हैं, इस प्रश्न पर व्यापक चर्चा होती रही है। क्या हम अपराध की भावनाओं से प्रेरित हैं, जहां हम दूसरे व्यक्ति को नीचा दिखाने के लिए बुरा महसूस नहीं करना चाहते हैं? या निष्पक्षता से, जहां हम असमान परिणामों से बचना चाहते हैं? रैडबाउंड विश्वविद्यालय – नैतिक निर्णय तथा सहकारिता पर डार्टमाउथ कॉलेज की जांच के अनुसार, कई लोग परिस्थिति के अनुसार, अपराध और निष्पक्षता, दोनों, सिद्धांतों पर निर्भर करना चाहेंगे। खोज के परिणाम अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, तथा तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्रों में की गई पुरानी खोज को चुनौती देते हैं, जो अकसर इस बात पर आधारित होती है कि लोग एक नैतिक सिद्धांत से प्रेरित होते हैं, जो समय के चलते स्थिर रहता है। यह जांच हाल ही में प्रकाशित की गई है। यह जांच इस बात को दर्शाती है कि हो सकता है कि नैतिक व्यवहार अपनाने के बावजूद, लोग हमेशा स्वर्ण नियम का पालन न करें। जहां ज्यादातर लोग दूसरों के प्रति सोच का प्रदर्शन करते हैं, कई नैतिक अवसरवाद भी प्रदर्शित करते हैं, ऐसे लोग नैतिक दिखना चाहते हैं लेकिन ये ज्यादा से ज्यादा अपना फायदा भी चाहते हैं।

हो सकता है कि रोजाना जीवन में हम यह न देख पाएं कि हमारी नैतिकता संदर्भ–आश्रित है, क्योंकि हमारे संदर्भ रोज एक समान रहते हैं। लेकिन हो सकता है कि नई परिस्थितियों में हमें यह महसूस हो कि जिन नैतिक नियमों का हम सदा पालन करने की सोचते थे उनका पालन हम न कर पाएं। इसके जबरदस्त परिणाम हो सकते हैं, अगर जैसेकि युद्ध जैसी परिस्थिति में हमारा नैतिक व्यवहार, नए संदर्भों के चलते, बहुत बदल सकता है। पारस्परिकता के संदर्भ में नैतिक निर्णय लेने की जांच करने हेतु, खोजकों द्वारा एक विकसित भरोसा खेल तैयार किया गया जिसका नाम था 'हिड्डन मल्टिप्लायर ट्रस्ट गेम' (छिपा गुणक भरोसा खेल), जिसकी सहायता से वे निर्णयों का वर्गीकरण कर सकते थे, भरोसे की पारस्परिकता के लिए बतौर व्यक्ति की नैतिक नीति का कार्य। इस तरीके से खोजक टीम यह निर्धारित कर सकती है कि खोज प्रतिभागी द्वारा किस प्रकार की नैतिक नीति अपनाई जा रही हैः अन्याय बोध (जहां लोग इसलिए विनिमय करते हैं क्योंकि वे परिणामों में निष्पक्षता ढूंढते हैं), अपराध बोध (जहां लोग इसलिए विनिमय करते हैं क्योंकि वे खुदको अपराधी नहीं मानना चाहते), लोभ, या नैतिक अवसरवाद (टीम द्वारा देखी गई एक नई नीति, जहां लोग अपने फायदे के अनुसार, अन्याय बोध और अपराध बोध के बीच में झूलते हैं)। खोजकों द्वारा एक गणक नैतिक रणनीति मॉडल तैयार किया गया जिसके उपयोग से लोगों का, खेल के दौरान व्यवहार का, विवरण दिया जा सकता था और नैतिक रणनीतियों से संबंधित दिमाग गतिविधि पैटर्न की जांच की जा सकती है। खोज के परिणाम, पहली बार, यह दिखाते हैं कि दिमाग की गतिविधि के अद्वितिय पैटर्न, अन्याय बोध और अपराध बोध रणनीतियों की नींव रखते हैं, तब भी जब रणनीतियां समान व्यवहार पैदा करती हैं। नैतिक रूप

से अवसरवादी प्रतिभागियों के संबंध में, खोजकों द्वारा यह पाया गया कि उनके दिमाग के पैटर्न भिन्न संदर्भों के पार, दो नैतिक रणनीतियों के बीच झूलते रहे। परिणामों द्वारा यह प्रदर्शित हुआ कि निर्णय लेने के लिए लोगों द्वारा भिन्न नैतिक सिद्धांतों का पालन किया गया और यह कि औरों की तुलना में कुछ लोग अधिक लचीले होते हैं और परिस्थिति के आधार पर ये अलग–अलग सिद्धांत अपनाते हैं। इससे इस बात का अनुमान लगाना आसान हो जाता है कि हमारे प्रिय व आदरणीय लोग कई बार नैतिक रूप से आपत्तिजनक काम क्यों करते हैं।

2.2.4 समकालीन समाज में मूल्य शिक्षा का महत्व

हम स्थिर अर्थव्यवस्थाओं और अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी समाजों के साथ अधिक टिकाऊ संसार स्थापित करना चाहते हैं। यह लक्ष्य मुश्किल तो है लेकिन नामुमकिन नहीं, अगर हमें सरकार, संस्थाओं, व्यापारों और सबसे अधिक जिम्मेदार वचनबद्ध जनता का साथ मिल जाए।

मूल्य शिक्षा एकता, सद्भावना और प्रकृति से प्यार को बढ़ावा देती है।

एक अनुकरणीय नागरिक पैदा नहीं होता बल्कि बनाया जाता है। जिस प्रकार हम गणित व भाषाएं सीखते हैं, उसी प्रकार हमें उन विषयों में भी विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए जो प्यार से रहने के लिए मूलभूत हैं और जो सम्मान, समानुभूति, समानता, एकजुटता और आलोचनात्मक सोच जैसे सामाजिक विकास को बढ़ावा देते हैं। इनके और उन अन्य नैतिक सिद्धांतों के बिना जो हमें मनुष्य के रूप में परिभाषित करते हैं, हमारे लिए एक बेहतर संसार का निर्माण करना मुश्किल हो जाएगा।

मूल्य शिक्षा के उद्देश्य

मूल्य शिक्षा का सिद्धांत उस शिक्षा प्रणाली के बारे में है जो अधिक शिष्ट व लोकतांत्रिक समाज बनाने से संबंधित है। इस प्रकार, मूल्य शिक्षा हमारे राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मतभेदों से परे, मानवाधिकारों की रक्षा, जातीय अल्पसंख्यकों और सबसे कमजोर समूहों की सुरक्षा, और पर्यावरण के संरक्षण पर विशेष महत्व देते हुए, सहनशीलता व समझदारी को बढ़ावा देती है। मूल्य शिक्षा केवल स्कूलों की नहीं बल्कि हम सबली जिम्मेदारी है। उदाहरण के लिए, परिवार, विश्वविद्यालय, व्यवसाय और खेल, सभी, नैतिक सिद्धांतों की शिक्षा के लिए आदर्श संदर्भ हैं। यहां तक कि, ऑस्ट्रेलिया और यूके जैसे देश कई वर्षों से मूल्य शिक्षा को अनिवार्य शिक्षा का एक हिस्सा बनाना चाहते हैं।

मूल्य शिक्षा की विशेषताएं

पारंपरिक शिक्षा बनाम मूल्य शिक्षा : पारंपरिक शिक्षा और मूल्य शिक्षा, दोनों, व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक हैं और ये हमें जीवन में हमारे उद्देश्यों को परिभाषित करने में सहायता करती हैं। लेकिन जहां पारंपरिक शिक्षा हमें समाज, वैज्ञानिक तथा मनुष्य के बारे में ज्ञान देती है, मूल्य शिक्षा हमें अच्छे नागरिक बनने का प्रशिक्षण देती है। पारंपरिक शिक्षा के विपरीत, मूल्य शिक्षा में कक्षा के अंदर और बाहर की गतिविधियों या सीख में कोई अंतर नहीं होता।

मूल्य शिक्षा के महत्व के कारण यूरोपीय स्कूलों में 'नागरिकता हेतु शिक्षा' जैसे विषय पढ़ाने की शुरुआत की गई है। 2017 तक यह सभी ईयू देशों के राष्ट्रीय

पाठ्यक्रम का हिस्सा बन चुका था, या तो एक अलग विषय के रूप में या एक प्रोग्राम के हिस्से की तरह। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) भी– बतौर सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) का हिस्सा– राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों, प्रशिक्षण योजनाओं तथा प्रोग्रामों, शिक्षक प्रशिक्षण तथा शिष्य मूल्यांकन का, ग्लोबल सिटिजनशिप एजुकेशन (जीसीईडी) के कार्यान्वयन के स्तर का एक वैश्विक मूल्यांकन करता है।

मुख्य मूल्य शिक्षाएं : मूल्यों की शिक्षा के अंतर्गत अनेक विषय, नागरिकता तथा नैतिकता से संबंधित हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

समवेदना : स्वयं को, संज्ञानात्मक और भावनात्मक रूप से, दूसरों की जगह रखकर देखने से हम दूसरों की राय बेहतर समझने और संघर्ष मिटाने में समर्थ हो जाते हैं।

समान अवसर : सब लोगों की समानता का सिद्धांत, लोकतंत्र के स्तंभों में से एक है और इसके अतिरिक्त यह सामाजिक समावेश और सामुदायिक जीवन को बढ़ावा देता है।

पर्यावरण हेतु आदर : मूल्यों की शिक्षा हमें, ग्रह पर हमारे कार्यों के परिणामों से अवगत कराती है और हमें प्रकृति के प्रति सम्मान प्रदान करती है।

स्वास्थ्य की परवाह : सही रवैये अपनाकर और गतिशीलता, व्यक्तिगत और सामूहिक दृष्टिकोण द्वारा सही रवैयों को बढ़ावा देकर और स्वास्थ्य शिक्षा को संभालकर हमें स्वास्थ्य के जोखिमों को कम से कम करना है।

आलोचनात्मक सोच : सोचने का यह ढंग हमें अधिक विश्लेषणात्मक और चौकस बनाता है। यह हमें अच्छी जानकारी की पहचान करना सिखाता है और समस्याएं सुलझाने में हमारी सहायता करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "मूल्य, कार्यों तथा निर्णय के सचेत या अचेतन प्रेरक और न्यायसंगत सिद्ध करने का काम करते हैं।" मूल्य की यह परिभाषा किसने दी है?

   (क) डी. डब्ल्यू हिप्पी (ख) एम. हैरालामॉस

   (ग) आइ.जे. लेहवर (घ) एन. जे. क्यूब

2. हमारे व्यक्तिगत मूल्य किन मूल्यों में अंतर्निहित हैं?

   (क) राजनीतिक (ख) आर्थिक

   (ग) धार्मिक (घ) सामाजिक

2.3 बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता

यहां पर धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के महत्व को बताते हुए नैतिक शिक्षा की उपयोगिता का प्रतिपादन किया जा रहा है।

2.3.1 विविध धर्मों और समाजों में विभिन्न मूल्य

धार्मिक मूल्य, एक व्यक्ति द्वारा अपनाए गए उन विश्वासों तथा अभ्यासों को दर्शाते हैं जिन्हें वह अपने धार्मिक संस्थान से सीखता अथवा अपनाता है। अधिकतर मूल्य, प्रत्येक

संबंधित धर्म के पवित्र ग्रंथों में से उभरते हैं। ये धर्म के सदस्यों द्वारा भी उभर कर आ सकते हैं।

टिप्पणी

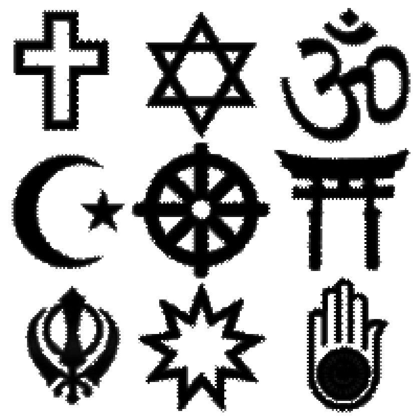

भिन्न धर्मों से संबंधित धार्मिक चिह्न बाएं से दाएं
(ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, हिंदू धर्म, इस्लाम, बौद्ध धर्म, शिन्तो, सिख धर्म, बहाइ धर्म, जैन धर्म)

विशेष धर्मों के सदस्यों को विशेष धर्म के मूल्यों का प्रमुख अवतार माना जाता है, जैसेकि किसी धर्म के नेता या अनुयायी जो इसके नियमों का कड़ा पालन करते हैं। प्रत्येक धर्म के समान और भिन्न मूल्य होते हैं। धार्मिक होने का यह मतलब नहीं कि कुछ धर्म किन्हीं विशेष रवैयों का विरोध करते हैं या उन्हें बढ़ावा देते हैं। ये मूल्य धर्मनिरपेक्ष समाज में भी साफ दिखाई देते हैं, क्योंकि ये समानताएं साझा करते हैं। विशेष लोगों को ध्यान में रखते हुए, धार्मिक मूल्यों के महत्व के भिन्न पहलुओं पर गौर किया गया है, किसी विशेष धार्मिक समूह से उनकी प्रासंगिकता और मानव समाज के संबंध में (जैसे कि जैन या लैटिन–अमेरिकी)।

धर्म, समाज में रहने के क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं, जैसेकि पैसे के प्रति रवैया। धर्म का पालन करने वाले लोग, अधार्मिक लोगों की तुलना में अधिक नैतिकता पूर्ण पैसों का उपयोग करते हैं। पर्यावरण का ध्यान रखने का मूल्य भी रचना के मूल्यों पर आधारित धार्मिक मूल्य है। धार्मिक मूल्य, समाज के कई मामलों को प्रभावित करते हैं, जैसेकि गर्भपात, समलैंगिकता, उपभोगता व्यवहार, आदि।

धार्मिक मूल्यों की शुरुआत व उनका महत्व

धार्मिक मूल्यों की शुरुआत को समाज को 'स्वदेशी धार्मिक मूल्य परिकल्पना' कहा जाता है, धार्मिक मूल्यों की शुरुआत को समाज द्वारा अपनाए गए मूल्यों की उपज की तरह देखा जा सकता है, जिनसे धर्म की शुरुआत हुई। एक व्यक्ति के विश्वास, अकसर एक धर्म के इर्द–गिर्द घूमते हैं, इस प्रकार धर्म को उस व्यक्ति के मूल्यों का शुरुआती बिंदु कहा जा सकता है। धर्म को विधिपूर्वक परिभाषित करने से इसे लोगों, समुदायों या समाजों द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है, ताकि, उन्हें धर्म के माध्यम से उनके वजूद संबंधित प्रश्नों के उत्तर मिल सकें। मूल्य, धर्म द्वारा, वजूद संबंधित प्रश्नों के उत्तरों से विकासित होते हैं।

हर व्यक्ति यह नहीं मानता कि मनुष्य के कर्म और विचार धर्म से प्रभावित होते हैं। चाहे कई समुदायों में धर्मनिरपेक्षता को प्रमुख माना जाता है, इसका मतलब यह नहीं कि उन समुदायों में धर्म का कोई महत्व नहीं होता।

टिप्पणी

सामाजिक मूल्य

सामाजिक मूल्य वे मानक हैं जिनके द्वारा हम किसी वस्तु, व्यवहार, लक्ष्य, साधन व गुण आदि को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित ठहराते हैं। सामाजिक मूल्य वे आदर्श हैं जो सामाजिक जीवन में आचरण के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

सामाजिक मूल्यों की विशेषताएं

सामाजिक मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत किए जाते हैं। ये गतिशील होते हैं।

सामाजिक मूल्य सामाजिक कल्याण व आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। ये भिन्नताओं से युक्त होते हैं और भावनाओं से जुड़े होते हैं। सामाजिक मूल्य सामाजिक मानक के रूप में होते हैं।

सामाजिक मूल्यों का महत्व

मनुष्य की आवश्यकताओं और आधारभूत इच्छाओं को पूर्ण करने में मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सामाजिक मूल्य समाज में एकता और नियंत्रण बनाए रखते हैं। सामाजिक मूल्य जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं, जैसे—

सामाजिक मूल्य समाज में एकरूपता उत्पन्न करते हैं और समाज की भूमिकाओं को निर्देशित करते हैं। ये भौतिक संस्कृति के महत्व को बढ़ाते हैं।

सामाजिक मूल्य किसी भी व्यक्ति की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उसके व्यक्तित्व का निर्माणकरते हैं। ये मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों के स्रोत होते हैं। सामाजिक मूल्यों की सहायता से सामाजिक क्षमता का उचित मूल्यांकन किया जाता है। ये किसी भी व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं।

सांस्कृतिक मूल्य

एक संस्कृति के विचार इस बात पर आधारित हैं कि क्या अच्छा, सही, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण है। खैर, समाजशास्त्री इस बात से सहमत नहीं हैं कि मूल्यों की अवधारणा किस प्रकार की जाए। संघर्ष सिद्धांत इस बात पर केंद्रित है कि एक संस्कृति के भीतर, भिन्न समूहों के बीच किस प्रकार मूल्यों में अंतर होता है, जबकि व्यावहारिकता, एक ही संस्कृति में साझा मूल्यों पर केंद्रित है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी समाजशास्त्री रॉबर्ट के. मर्टन का यह मानना है कि अमेरिकी समाज में सबसे महत्वपूर्ण मूल्य हैं, धन, सफलता, शक्ति और सम्मान लेकिन सबके पास ये मूल्य प्राप्त करने के समान अवसर नहीं होते। क्रियात्मक समाजशास्त्री टैलकॉट पार्सन्स द्वारा ऐसा देखा गया कि अमेरिकी जनता में "अमेरिकी कार्य नैतिकता" का मूल्य सामान्य है जो मेहनत को बढ़ावा देता है। अन्य समाजशास्त्रियों द्वारा अमेरिकी मूल्यों के सामान्य केंद्र का प्रस्ताव रखा गया है जिनमें उपलब्धि, भौतिक सफलता, समस्या हल करना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर निर्भरता, लोकतंत्र, देशभक्ति, दान, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय, व्यक्तिवाद, जिम्मेदारी एवं जवाबदेही शामिल हैं।

वैसे, कई बार ऐसा हो सकता है कि एक सभ्यता में परस्पर विरोधी मूल्य शामिल हों। उदाहरण के लिए, भौतिक सफलता का मूल्य, दान के मूल्य के परस्पर विरोधी हो सकता है। या समानता का मूल्य, व्यक्तिवाद के मूल्य का विरोधी हो सकता है, ऐसे विरोधाभास लोगों के कार्यों तथा उनके द्वारा जाहिर किए गए मूल्यों के बीच असंगति का परिणाम हो सकते हैं, इस बात को देखते हुए यह समझ में आता है कि समाजशास्त्रियों को क्यों लोगों तथा उनके द्वारा कही गई बातों के बीच ठोक बजा के

अंतर करना चाहिए। वास्तविक संस्कृति उन मूल्यों और मानदंडों को संदर्भित है जिनका पालन एक समाज द्वारा असल में किया जाता है, जबकि आदर्श संस्कृति उन मूल्यों और मानदंडों को संदर्भित है जिसका, एक समाज द्वारा माने जाने का दावा किया जाता है।

टिप्पणी

सांस्कृतिक मानदंड

मानदंड वो अपेक्षाएं या नियम होते हैं जिनके द्वारा एक संस्कृति, एक परिस्थिति में, अपने सदस्यों के व्यवहार का पथप्रदर्शन करती है। बेशक, अलग–अलग सांस्कृतिक समूहों में अलग–अलग मानदंडों का पालन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी लोग, दूसरों से बात करते समय आंख से आंख मिलाते हैं। वहीं, एशियाई लोग आदर व सभ्यता का प्रदर्शन करते हुए आंख में आंख डालकर बात करना ठीक नहीं समझते।

समाजशास्त्री, कम से कम चार मानदंडों की बात करते हैंः लोक तरीके, नैतिकताएं, मनाहियां और कानून। लोक तरीकों को कई बार "परंपरा" या "प्रथा" भी कहा जाता है। ये, सामाजिक तौर पर स्वीकृत व्यवहार माने जाते हैं लेकिन जरूरी नहीं कि ये नैतिक तौर पर महत्वपूर्ण हों। उदाहरण के लिए, किसी दूसरे के घर में खाना खाने के बाद जोर से डकार लेना अमेरिकी लोक तरीकों के विरुद्ध है। नैतिकताएं लोगों के व्यवहार को नैतिक धागों में बांध कर रखती हैं। नैतिक मानदंडों को तोड़ने का एक उदाहरण है, नंगे चर्च जाना, ऐसा करने से आस पास के बहुत सारे लोगों को बहुत तकलीफ होगी। कुछ एक व्यवहारों की एक संस्कृति में पूर्ण रूप से मनाही होती है, जैसेकि यूएस में भाई और बहन के बीच शादी या शारीरिक संबंध। अंत में, कानून नियमों का वह औपचारिक निकाय होता है जिसे देश की शक्ति द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। वास्तव में सभी मनाहियों, जैसेकि उत्पीड़न, को कानून का रूप दिया जाता है, वहीं सभी नैतिकताओं को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, चर्च में बिकनी पहन के जाने से औरों के मन को ठेस अवश्य पहुंच सकती है, लेकिन यह हरगिज गैर कानूनी नहीं है।

एक सभ्यता के सदस्यों को उसके मानदंडों का पालन अवश्य करना चाहिए, जिससे उनकी सभ्यता बनी रहेगी और चलती रहेगी। सबसे पहले उन्हें उन सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को आंतरिकता प्रदान करनी चाहिए जो उनकी सभ्यता के लिए "सामान्य" चीजें अथवा घटनाएं अनुमित करते हैं और फिर उनका समाजीकरण करना चाहिए। यदि आंतरकता और समाजीकरण, दोनों, अनुरूपता प्रदान करने में असमर्थ हो जाते हैं, तो भी, अंत में किसी प्रकार का सामाजिक "नियंत्रण" अवश्य जरूरी होता है। सामाजिक नियंत्रण का कोई भी रूप हो सकता है जैसेकि, जुर्माना या दंड।

एक वैश्विक संस्कृति की ओर

कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा आज इस बात की भविष्यवाणी की गई है कि यह संसार एक वैश्विक संस्कृति की ओर बढ़ रहा है, एक ऐसी संस्कृति जिसमें सांस्कृतिक विविधता की कोई जगह नहीं है। एक मूलभूत साधन जिससे संस्कृतियां एक जैसे दिखाई देने लगती हैं, और यह सांस्कृतिक प्रसार नामक घटना के कारण संभव होता है। इस प्रक्रिया से मानक भिन्न संस्कृतियों के पार जाते हैं। हमेशा से संस्कृतियों ने, यात्रा, व्यापार और यहां तक कि दूसरे पर विजय द्वारा भी एक दूसरे को प्रभावित किया है। जैसेकि आज लोग पूरे संसार की यात्रा करने के बाद विश्व भर में अपने घर बना रहे हैं, इस कारण सांस्कृतिक प्रसार की दर दिन ब दिन बढ़ती चली जा रही है।

वैश्विक संस्कृति तैयार करने के पीछे अनेक सामाजिक ताकतों का हाथ है जैसेकि इलेक्ट्रॉनिक संचार (दूरभाष, ई–मेल, फैक्स मशीन आदि), मास मीडिया (टी.वी., रेडियो, फिल्में), समाचार मीडिया, इंटरनेट, अंतराष्ट्रीय व्यापार तथा बैंक, और संयुक्त राष्ट्र। "वैश्विक गांव" जैसे आम इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों के प्रयोग से लगता है कि जैसे संसार दिन ब दिन "छोटा" होता जा रहा है।

फिर भी, जहां संस्कृति के कई पहलुओं का वैश्वीकरण हो चुका है, कई स्थानीय समाज और संस्कृतियां स्थिर खड़ी हैं और, कई जगह तो ये उत्साह से भरी हैं। चाहे लोग ग्रह की एक ओर से दूसरी ओर क्यों न चले जाएं, लेकिन फिर भी वे अपनी असली संस्कृति के प्रति वफादार रहते हैं।

2.3.2 स्कूलों में नैतिक शिक्षा का महत्व

स्वामी विवेकानंद द्वारा कहा गया है, "शिक्षा, मनुष्य में पहले से मौजूद, पूर्णता की अभिव्यक्ति है...."

दिव्य (या महान) बनने के लिए, मनुष्य को शक, ईर्ष्या, धोखा त्याग कर, एक जुट होकर, सामान्य भले के लिए काम करना चाहिए। हिम्मत, भरोसा (खुद पर और भगवान पर), धैर्य और स्थाई काम, स्वामी विवेकानंद के अनुसार, सफलता की ओर ले जाते हैं। उनका कहना है कि, पवित्रता, धैर्य और दृढ़ता सभी बाधाओं को दूर करते हैं।

नैतिक मूल्यों का होना बिल्कुल वैसा होता है जैसे किसी इमारत की दृढ़ नींव, यदि एक पेड़ की जड़े स्वस्थ और मजबूत होंगी तो उसके पत्ते और उसकी शाखाएं भी स्वस्थ बनेंगी। एक प्रसिद्ध कहावत है, "यदि धन खोया तो कुछ न खोया, यदि स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया; यदि चरित्र खोया तो सब कुछ खोया"। इसी कारण बहुत से स्कूलों में नैतिक विज्ञान का विषय पढ़ाया जाता है ताकि नैतिक सीख को आज के आधुनिक बच्चों में बांटा जा सके। एक ठोस नैतिक आधार तैयार करना, आज के जमाने की सबसे बड़ी चुनौती है, और दिन प्रतिदिन अधिक मुश्किल होता जा रहा है।

आजकल विद्यार्थी लगातार पढ़ाई और खेल में व्यस्त रहते हैं, लेकिन कहीं न कहीं नैतिक सीख अनिवार्य होती है क्योंकि यह इन्हें एक सही आकार व दिशा प्रदान करती है। यह इन्हें सिखाती है कि भिन्न परिस्थितियों में इन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए और विपरीत परिस्थितियों में किस प्रकार प्रतिक्रिया देनी चाहिए। हर उम्र के लोगों को नैतिक मूल्य सिखाए जाने चाहिए, विशेष तौर पर छोटे बच्चों को। किसी ने ठीक कहा है कि छोटे बच्चों का मन और दीमाग कोरे कागज की तरह होता है जिसपर हम जो चाहे लिख सकते हैं, और वह लिखी सालों साल मिटती नहीं। शिक्षकों के लिए अपने विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा प्रदान करना आसान नहीं होता, लेकिन इसके बावजूद वे काफी हद तक हमारे विचारों और मन को प्रभावित करते हैं।

नैतिक शिक्षा का मतलब है ऐसी शिक्षा जो हमारी, जीवन में, सही रास्ता चुनने में सहायता करती है। इसमें कुछ मूलभूत सिद्धांत शामिल हैं, जैसेकि, सच्चाई, ईमानदारी, दान, सत्कार, सहनशीलता, प्रेम, दया और सहानुभूतिद्य नैतिक शिक्षा पाने पर व्यक्ति उत्तम बन जाता है। इस शिक्षा का लक्ष्य केवल एक डिग्री हासिल करना नहीं है, बल्कि इसमें आवश्यक, मूल्य आधारित सीख शामिल है जिसका परिणाम है चरित्र का निर्माण और समाज का सुधार।

टिप्पणी

आज, यह समय की मांग है कि स्कूलों में छिपे पाठ्यक्रम का सिद्धांत शामिल किया जाए जो क्लास तथा सामाजिक वातावरण में संप्रेषित किए गए मानदंडों, मूल्यों तथा विश्वासों के संचार को संदर्भित हो। यह, औपचारिक पाठ्यक्रम के पाठ सुदृढ़ करने में सहायता करता है, इसके बावजूद बहुत से स्कूलों में इसे अनदेखा किया जाता है। ज्यादातर स्कूल, भाषा, विषयों तथा अंकों पर जोर देते हैं। उदाहरण के लिए, एक तरफ एक स्कूल, सार्वजनिक रूप से, इस बात का दावा करता है कि उसकी शिक्षा नीति तथा प्रथाएं विद्यार्थियों द्वारा शैक्षिक सफलता प्राप्त करने के नजरिए से तैयार की गई हैं। दूसरी तरफ, उसी स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा अवांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन देखा जा सकता है, जैसे, दूसरे बच्चों के साथ बदमाशी या परीक्षा में नकल। इस प्रकार की शिक्षा से बच्चों को जीवन की परिस्थितियों जैसेकि, राय स्थापित करना, निर्णय लेना और जीवन में सही रास्ता अपनाना। इस समस्या को हल करने के लिए, स्कूलों में, शिक्षकों की निगरानी में, विशेषज्ञ सलाहकार द्वारा विशेष कक्षाएं, सम्मेलन तथा वर्कशॉप आयोजित किए जाने चाहिए। ऐसा करने से पाठ्यक्रम में 'मूल्यों' के पाठ शामिल होंगे जिससे बच्चों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो पाएगा।

हमारा समकालीन समाज बेहद विकसित है, पहले से कहीं बेहतर। लेकिन यदि समाज के लोग शिष्ट नहीं तो इसका क्या फायदा? तेज गति से हो रहे शहरीकरण और आधुनिकीकरण के कारण लोगों के नैतिक मूल्य, दिन ब दिन, घटते जा रहे हैं। आज मनुष्य किसी पर भरोसा नहीं करता, न अपने रिश्तेदारों पर और न ही अपने मित्रों पर। भरोसा, सत्यनिष्ठा, प्यार और भाईचारे जैसी भावनाएं धुंधली पड़ती जा रही हैं। नैतिक मूल्य ही हैं जो बच्चों को स्कूल में एक दूसरे से चीजें साझा करना और दोस्त बनाना सेखाते हैं, लेकिन आज, बच्चों को किसी पर भरोसा न करना और कम से कम दोस्त बनाना सिखाया जाता है। स्कूल, कॉलेज, दफ्तर,हर जगह गला काट प्रतियोगिता है। आजकल के भौतिक संसार में लोग एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या से भरपूर हैं। दूसरे पर शक करने और दूसरों की तरक्की से जलने की जगह लोगों को एक दूसरे का समर्थन करना चाहिए और सामान्य कल्याण के लिए मिलजुल कर काम करना चाहिए। इस औद्योगिक काल में, ज्यादातर माता पिता काम करते हैं जिस कारण वे अपने बच्चों के साथ अधिक समय नहीं बिता सकते, इसी कारण आजकल के बच्चों में नैतिक मूल्यों की कमी देखी जा रही है। आजकल के बच्चे सही और गलत के बीच अंतर करना नहीं जानते। वर्तमान परिदृश्य में भारी बदलाव लाने की आवश्यकता है क्योंकि देश का भविष्य बच्चों पर निर्भर करता है।

विद्यार्थियों के लिए नैतिक मूल्यः पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अंग

विद्यार्थियों को केवल ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती और न ही उनके लिए केवल सफलता हासिल करना जरूरी है— उनके लिए भावनात्मक बुद्धिमत्ता और करुणा भी जरूरी है।

ज्यादातर लोग स्कूल का पाठ्यक्रम तैयार करते समय, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों तथा भाषा के कोर्स के बारे में सोचते हैं। आधुनिक संसार में बहुत कम स्कूली पाठ्यक्रमों में नैतिक मूल्यों को, बतौर विषय, शामिल किया जाता है। इससे एक अद्भुत समस्या पैदा होती है। शैक्षिक सिद्धांतों के साथ, नैतिक मूल्यों की सीख को अनदेखा करने के कारण हमारे विद्यार्थियों को अच्छी सीख नहीं मिलती जिससे समाज का नुकसान हो रहा है। यदि एक व्यक्ति के विकास के दौरान उसे नैतिक मूल्यों

का पाठ नहीं पढ़ाया जाएगा तो वह सही और गलत में फर्क करना कैसे सीखेगा? इसके अलावा, खराब नैतिकता और नैतिक मूल्यों की गैरमौजूदगी में लोगों का समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

टिप्पणी

शिक्षा में नैतिक मूल्यों का सम्मिलन इसलिए किया जाता है ताकि ग्रैजुएशन करने के बाद विद्यार्थियों के पास केवल सफलता पाने का ज्ञान और कौशल ही नहीं बल्कि एक सुरक्षित, शांत और सहकारी समाज का हिस्सा बनने हेतु करुणा और भावनात्मक सामार्थ्य भी होगा।

स्कूलों में नैतिक मूल्य सिखाने का महत्व

माता–पिता और शिक्षक होने के नाते हमें नैतिक मूल्यों को सिखाने का समर्थन करना चाहिए, इसके पीछे पांच महत्वपूर्ण कारण हैं–

1. **बच्चों को भविष्य में, समाज में अपनी भूमिका के लिए तैयार करने हेतु** : स्कूल में ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा का केवल एक लक्ष्य है। शिक्षा का एक अन्य मुख्य लक्ष्य है विद्यार्थियों को नैतिक मूल्य पाने के योग्य बनाना। हमारे बच्चों को अच्छे मित्र, माता–पिता, सहकर्मी तथा समाज के अच्छे नागरिक बनाने के लिए, दोनों, ज्ञान तथा नैतिकता की आवश्यकता होगी।
2. **ज्यादातर घरों में नैतिक मूल्यों को सिखाने का अभाव** : यदि सारे माता–पिता अपने घरों में बच्चों को नैतिक मूल्य सिखाएं तो स्कूलों के लिए यह कार्य करना अनिवार्य नहीं रहेगा। अफसोस की बात यह है कि आजकल ज्यादातर बच्चे अपने माता–पिता से अच्छे बुरे का फर्क नहीं सीख रहे। अपनी व्यस्तता के कारण, कई माता–पिता तो अपने बच्चों के साथ सप्ताह में केवल कुछ ही घंटे बिता पाते हैं। अनेक परिवारों में तो मां या बाप में से केवल एक ही होता है। ऐसे बच्चों का और कोई आदर्श नहीं होता, इसलिए वे उस एक की छवि में ढल जाते हैं। कई बच्चे तो अनाथ होते हैं।
3. **विद्यार्थी हिंसा और असत्य के विकल्प अपने इर्द गिर्द ढूंढते हैं** : हर रोज विद्यार्थियों का, मीडिया या असल जिंदगी में, हिंसा, अस्तयता तथा अन्य ऐसी सामाजिक समस्याओं से सामना होता है। हमने कितनी बार स्कूलों में गोलियां चलने की खबरें सुनी हैं। कितनी बार विद्यार्थी परीक्षा में नकल करते हुए पकड़े जाते हैं। कितनी बार हम स्कूल में बदमाशी या दो गुटों के बीच लड़ाई के किस्से सुनते हैं। यदि स्कूलों में नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता तो शायद ऐसी समस्याओं में कमी आती।
4. **समाज के बुरे प्रभावों की विपरीतता हेतु** : अफसोस की बात है कि युवा पीढ़ी द्वारा आदर्श माने जाने वाले लोग अकसर अपने व्यवहार के बुरे उदाहरण सामने रखते हैं। ये बुरे उदाहरण किसी भी प्रकार के हो सकते हैं जैसे कि, यौन दुराचार, महिलाओं का असम्मान, हिंसा का समर्थन या सफलता के लिए झूठ का सहारा।
5. **नैतिक शिक्षा आजीवन याद रहती है** : जरा सोच कर देखो। आपको यह याद करके हैरानी होगी कि स्कूल में प्राप्त किया गया गणित या विज्ञान के विषयों से संबंधित ज्ञान आपको शायद भूल गया हो लेकिन नैतिक पाठ आपको अभी भी याद होंगे।

टिप्पणी

2.3.3 सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों की उपयोगिता

स्कूलों में सिखाए जाने वाले सात महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य : यदि निम्नलिखित सात नैतिक मूल्य स्कूलों में विद्यार्थियों को आवश्यक तौर पर सिखाए जाएं तो समाज का जरूर भला होगा–

1. **शर्तरहित प्रेम व दया** : ज्यादातर मामलों में हमें उनका प्रेम वापिस मिलता है जिनसे हम प्रेम करते हैं। खैर, यह यह प्यार का असल अर्थ नहीं है। प्रेम सदा शर्तरहित होना चाहिए। संसार में जितना प्रेम बढ़ेगा, उतना ही क्रूरता की जगह दया फैलेगी। विद्यार्थियों के लिए यह समझना जरूरी है कि नफरत की जगह प्रेम फैलाने से उन्हें उनकी बड़ी उम्र में खुशी तथा सफलता प्राप्त होगी।
2. **सच्चाई** : विद्यार्थियों को यह अवश्य सिखाया जाना चाहिए कि झूठ और फरेब गलत है और भविष्य में यह उन्हें कहीं नहीं पहुंचा सकता। बतौर एक विद्यार्थी, परीक्षा के समय नकल करके वे अपना भारी नुकसान करते हैं। बेईमानी, चाहे वह दीर्घकालिक क्यों न हो (उदाहरण के लिए परीक्षा में नकल), अंत में किसी न किसी रूप में व्यक्ति के सामने आ ही जाती है और उसे उसके चिरकालिक नकारात्मक परिणाम झेलने पड़ते हैं (उदाहरण के लिए, संबंधित विषय में नकल करके पास होने के कारण प्रवेश परीक्षा में फेल हो जाना)।
3. **परिश्रम** : विद्यार्थियों को यह अवश्य सिखाया जाना चाहिए कि सफलता 1 प्रतिशत प्रोत्साहन और 99 प्रतिशत परिश्रम से बनती है। आजकल बहुत विद्यार्थी, अपने आलस्य के कारण, नकल करके सफलता हासिल करना चाहते हैं। ऐसे बच्चों के जीवन में परिश्रम का कोई महत्व नहीं होता। इस सोच को बदलना जरूरी है। असली मायने में सफल लोग यह जानते हैं कि किसी काम के लिये किया गया परिश्रम उसकी सफलता की दर तय करता है। यदि विद्यार्थी परिश्रम को एक बाधा की जगह एक अवसर के रूप में देखेंगे तो व्यसक होने पर उन्हें अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए अधिक खुशी होगी।
4. **दूसरों के लिए आदर** : दुर्भाग्यवश, आज के इस बेहद प्रतिस्पर्धी समाज में बहुत से लोग दूसरों की छाती पर चल कर अपनी सफलता का सफर तय करते हैं। दूसरों के प्रति आदर में भिन्न धर्मों, वर्गों, लिंगों, विचारों तथा जीवनशैलियों का सम्मान शामिल है। जब हम अपने आसा पास के लोगों को नीचा दिखाने की जगह उन्हें ऊपर उठाते हैं तो हमें बेहतर अनुभव होता है। विद्यार्थियों के लिए यह सीखना महत्वपूर्ण है कि उनकी सफलताएं औरों की विफलताओं पर निर्मित नहीं होनी चाहिए।
5. **सहयोग** : एक सामान्य लक्ष्य हासिल करने के लिए, सब लोगों को मिल कर काम करना चाहिए। ऐसा न करने पर थोड़े से लोगों का फायदा होगा और बहुत से लोगों का नुकसान होगा। आपने वह पुरानी कहावत तो अवश्य सुनी होगी– "एक जुट होकर हम खड़े हैं और अलग होकर हम बिखर जाएंगे।" स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से लोगों को नया सीखने का मौका मिलता है लेकिन एक समाज में सच्ची सफलता प्राप्त करने के लिए हमें सबसे पहले एक दूसरे का सहयोग करना होगा।
6. **करुणा** : करुणा का मतलब है औरों की जरूरतों के प्रति संवेदनशीलता। यदि संसार में करुणा बढ़ जाए जो भूख, संघर्ष, बेघरता और दुख बहुत कम हो

जाएंगे। अगर विद्यार्थी सहानुभूति की शिक्षा ग्रहण करेंगे तो आने वाली हर नई पीढ़ी को समाज की त्रुटियां मिटाने का बेहतर अवसर मिलेगा।

7. **माफी** : संसार का हर धर्म यह कहता है कि अपने दुश्मनों और उन लोगों को माफ कर देना चाहिए जो आपको तकलीफ पहुंचाते हैं। अधिकतर मामलों में गुस्सा वहां आता है जहां हम किसी को माफ करने के लिए तैयार नहीं होते। यदि स्कूली बच्चे यह नैतिक मूल्य अपना लें तो समाज में हिंसा और लड़ाई के किस्से बहुत कम हो जाएंगे।

नैतिक संघर्ष

नैतिक दुविधाएं नैतिक जरूरतों के बीच संघर्षों के कारण उत्पन्न होती हैं। आइए निम्न मिसालों के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं।

उदाहरण— प्लेटो द्वारा लिखित 'रिपब्लिक' की किताब—1 में 'न्याय' की परिभाषा देते हुए इसे सच बोलने और अपने ऋण चुकाने का कर्तव्य बताया गया है। सुकरात द्वारा इस परिभाषा का, यह कहते हुए, खंडन किया गया है कि कुछ उधार चुकाना गलत होगा— उदाहरण के लिए, एक पागल दोस्त से उधार लिए गए हथियार को उसे वापिस करना ठीक नहीं होगा। सुकरात यह नहीं कहते कि उधार न चुकाना नैतिक हैय बल्कि, उनका मानना है कि हो सकता है कि हमेशा अपने उधार चुकाना ठीक न हो, खासकर उस सूरत में जब उधार देने वाला वसूली की मांग करे। यहां दो मानदंडों में संघर्ष देखने को मिलता हैः अपने उधार चुकाना और दूसरों को हानि से बचाना और इस मामले में, सुकरात के अनुसार दूसरों को नुकसान से बचाने का मानदंड अधिक महत्वपूर्ण है।

लगभग चौबीस सदियों बाद, जॉन पॉल सारतरे ने नैतिक संघर्ष के समाधान का विवरण कुछ इस प्रकार दिया जो, बहुत से लोगों को प्लेटो के संघर्ष की तुलना में कम भाया। सारतरे (1957) ने एक विद्यार्थी के बारे में बताया है जिसका भाई, 1940 में, जर्मन हमले में मारा गया था। यह विद्यार्थी अपने भाई की मौत का बदला सेना दल से लेना चाहता था, जिन्हें वह धूर्त मानता था। लेकिन उस विद्यार्थी की मां उसके साथ रहती थी, उसका वही एक सहारा था। उस विद्यार्थी का मानना था कि उसके उत्तर्दायित्वों में आपसी संघर्ष था। उस विद्यार्थी के जीवन का विवरण देते हुए सारतरे कहते हैं कि, वह दो प्रकार की नैतिकता में विभाजित थाः एक जिसका दायरा सीमित था लेकिन प्रभावकारिता निश्चित थी, एक अन्यायी हमलावार की हार में योगदान देने की कोशिश।

जहां प्लेटो और सारतरे के उदाहरणों का बहुत अधिक वर्णन किया गया है, वहीं ऐसे और बहुत सारे उदाहरण हैं। साहित्य इन उदाहरणों से भरा हुआ है। ऐसचाइलस का ऐगामेमनॉन, वह हीरो जिसके लिए अपनी बेटी को बचाना जरूरी था और जिसे ग्रीक सेना को ट्रॉय लेकर जाना था; उसके लिए दोनों कार्य अनिवार्य थे लेकिन वह दोनों में से एक ही काम कर सकता था और सॉफोकेल्स के नाटक में ऐंटिगॉन के लिए अपने भाई को दफनाना भी उतना ही जरूरी था जितना कि शहर के शासक की घोषणाएं मानना, लेकिन वह दोनों में से केवल एक ही काम कर सकता था। लागू नैतिकता के क्षेत्रय जैसेकि, जैव चिकित्सा नैतिकता, व्यापार नैतिकता और कानूनी नैतिकताय भी ऐसे उदाहरणों से भरे हुए हैं।

नैतिक संघर्ष का सिद्धांत

ऊपर बताए गए नैतिक संघर्ष के दो प्रसिद्ध मामलों में सामान्य क्या है? दोनों में, प्रत्येक व्यक्ति को लगता है कि उसके पास, अपने कार्य को अंजाम देने हेतु नैतिक कारण

टिप्पणी

मौजूद हैं, लेकिन उसके लिए दोनों काम करना संभव नहीं है। नैतिकताशास्त्रियों द्वारा ऐसी परिस्थितियों को नैतिक संघर्ष कहा गया है। एक नैतिक संघर्ष परिस्थिति की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं– व्यक्ति के लिए दोनों (या दो से अधिक) कार्य करना अनिवार्य हैय व्यक्ति दोनों कार्य कर सकता है लेकिन दोनों (या सभी) कार्य एक साथ नहीं कर सकता। इस परिस्थिति में व्यक्ति को लगता है कि वह नैतिक रूप से असफल है; वह चाहे कुछ भी कर ले, उससे कोई न कोई गलती तो अवश्य होगी या वह कुछ ऐसा करने में असफल होगा जो उसे करना चाहिए।

कई विचारकों द्वारा इन परिस्थितियों का वास्तविक नैतिक संघर्ष के रूप में वर्णन करने की आलोचना की गई है। इनका यह मानना है कि इस मामले में कोई उलझन है ही नहीं, क्योंकि लोगों को हानि से बचाना, एक उधार लिए हथियार को लौटाने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। और वैसे भी, उधार ली हुई वस्तु को तो बाद में भी, उसके मालिक की मानसिक स्थिति स्थिर होने पर, लौटाया जा सकता है। इस प्रकार, इस मामले में हम यह कह सकते हैं कि, दूसरों को गंभीर हानि से बचाने की आवश्यकता उधार उतारने की आवश्यकता (चीज के मालिक की मांग पर) की अवहेलना करती है। एक विरोधी आवश्यकता द्वारा दूसरी आवश्यकता की अवहेलना की परिस्थिति को संघर्ष अवश्य कहा जा सकता है लेकिन यह हरगिज भी कोई वास्तविक नैतिक संघर्ष नहीं है। इस प्रकार, ऊपर बताई गई विशेषताओं के अतिरिक्त एक वास्तविक नैतिक संघर्ष होने के लिए यह जरूरी है कि दोनों विरोधी जरूरतों में से कोई भी अवरोहित न हो।

नैतिक संघर्ष की समस्याएं

सारतरे के मामले में यह साफ जाहिर नहीं है कि एक आवश्यकता दूसरी आवश्यकता की अवहेलना करती है। ऐसा इसलिए क्योंकि देखने वाले को शायद यह साफ दिखाई नहीं देता। कुछ लोगों का शायद यह मानना होगा कि हमारी, हमारे काम को लेकर अनिश्चितता केवल परिणामों को लेकर अनिश्चितता से संबंधित है। यदि यह निश्चित होता कि वह विद्यार्थी जर्मन सेना को हरा कर भारी बदलाव ला सकता है तो उसका सेना से जुड़ने का दायित्व उसके दूसरे कर्तव्य पर भारी पड़ता। दूसरी ओर,यदि विद्यार्थी के सेना में भर्ती होने से कोई फर्क न पड़ता तो उसकी मां के प्रति उसका कर्तव्य ऊंचा होता, क्योंकि वहां उसके योगदान का उसकी मां के जीवन पर जरूर सकारात्मक असर पड़ता। खैर, कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि दोनों उत्तरदायित्व समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और यह कि परिणामों की अनिश्चितता का कोई महत्व नहीं है।

कैंट (1971 / 1797), मिल (1979 / 1861), और रॉस (1930, 1939) जैसे नैतिकताशास्त्रियों का यह मानना है कि एक पर्याप्त नैतिक सिद्धांत में वास्तविक नैतिक संघर्षों की संभावना नहीं होनी चाहिए। पिछले 60 वर्षों के करीब समय काल में, अभी हाल ही में, दर्शनशास्त्रियों ने इस मान्यता को चुनौती देना शुरु किया है और यह चुनौती कम से कम दो अलग–अलग रूप ले सकती है। कुछ लोगों का यह मानना है कि वास्तविक नैतिक संघर्षों को रोकना संभव नहीं है। अन्य कई मानते हैं कि अगर यह संभव भी हुआ तो ऐसा करना वांछनीय नहीं होगा।

किसी सिद्धांत की वास्तविक नैतिक संघर्षों को मिटाने की संभवता के संबंध में चर्चा व्यक्त करने हेतु इस बात पर गौर करना जरूरी है। प्लेटो और सारतरे के मामलों

टिप्पणी

में संघर्ष, एक से अधिक नैतिक नियम के कारण हुए, कई बार एक से ज्यादा परिस्थितियों में एक ही नियम लागू होता है, और कई मामलों में नियम संघर्षपूर्ण कार्यों की मांग करते हैं। यहां एक जाहिर समाधान होगा, नियमों का नियोजन, चाहे वो कितने ही हों, जब तक वह पहले से संघर्षपूर्ण है तब तक दूसरा हावी होगा, आदि। खैर, इस जाहिर समाधान में दो बहुत बड़ी समस्याएं हैं। पहली, नैतिक नियमों और सिद्धांतों को क्रमबद्ध करना हरगिज प्रत्ययनीय नहीं है। जहां, अपने वादे निभाने और दूसरों को हानि पहुंचाने की आवश्यकता, स्पष्टतः संघर्षपूर्ण हो सकती है, इस बात को साबित करना मुश्किल है कि इनमें से एक आवश्यकता हमेशा दूसरी पर हावी होनी चाहिए। प्लेटो के मामले में, हानि से बचाने का कर्तव्य स्पष्ट रूप से अधिक दृढ़ है। लेकिन ऐसे अन्य मामले हो सकते हैं जहां हानि ज्यादा कठोर न हो और रखा जाने वाला वचन बहुत महत्वपूर्ण हो। और नियमों के अन्य जोड़े भी इसी प्रकार के हों। इस बात का वर्णन रॉस द्वारा, द राइट एंड द गुड (1930, अध्याय 2) में किया गया है।

इस आसान समाधान से जुड़ी दूसरी समस्या बहुत गहरी है। मान लो यदि नैतिक नियमों को क्रमबद्ध करना मुमकिन होता तो, ऐसी परिस्थितियां भी उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें एक ही नियम संघर्षपूर्ण कर्तव्य पैदा कर दे। शायद, इस प्रकार का सबसे व्यापक चर्चित मामला स्टाइरॉन के 'सोफीस च्वाइस' (1980) से लिया गया है। सोफी और उसके दो बच्चे नाजी शिविर में थे, जहां उसे गार्ड ने बताया कि उसके दोनों बच्चों में से एक जीवित रह सकता और दूसरे को मरना होगा। लेकिन इस बात का फैसला सोफी के हाथ में था कि कौन–सा बच्चा मरेगा और कौनसा जीवित रहेगा। वह केवल एक ही सूरत में अपने एक बच्चे की जान बचा सकती थी – मारे जाने वाले बच्चे का चुनाव करके। इसके अतिरिक्त एक और बात करके गार्ड सोफी का दुख और उसकी दुविधा और बढ़ा देता है कि यदि उसने यह चुनाव नहीं किया तो उसके दोनों बच्चे मारे जाएंगे। गार्ड की यह बात सुनने के बाद सोफी के पास, अपने किसी एक बच्चे को बचाने का दृढ़ नैतिक कारण था। लेकिन इसके साथ ही उसके पास किसी एक बच्चे को चुनने का भी दृढ़ कारण था। इसी प्रकार यही नैतिक नियम संघर्षपूर्ण दायित्वों को जन्म देता है। कुछ लोगों द्वारा ऐसे मामलों को सममित कहा गया है।

दुविधाएं और संगति

चलिए इस बात पर दोबारा लौट कर आते हैं कि वास्तविक नैतिक संघर्ष को रोकना संभव है कि नहीं। इसकी वांछनीयता की बात करना जरूरी है। आखिर नैतिकतावादियों द्वारा ऐसा क्यों सोचा गया कि उनके सिद्धांत संघर्षों की संभावना को रोकने के काबिल हो सकते हैं? सहज स्तर पर, नैतिक दुविधाओं का होना विसंगति की ओर इशारा करता है। एक वास्तविक दुविधा में फंसा व्यक्ति दोनों में से एक ही कार्य कर सकता है, दोनों नहीं। और चूंकि वह दोनों कार्य नहीं कर सकता, तो दोनों में से एक कार्य न करना, दूसरे के होने के लिए अनिवार्य बन जाता है। इसलिए, ऐसा लगता है कि एक ही कार्य आवश्यक भी है और निषिद्ध भी। लेकिन एक तार्किक विसंगति को उजागर करने के लिए कुछ कार्य करना पड़ता है; क्योंकि शुरुआती जांच से यह सामने आया है कि सहज रूप से महसूस की गई विसंगति मौजूद नहीं होती। इसी प्रकार, नैतिक संघर्ष पैदा करने वाले नियम विसंगत नहीं होते, कम से कम इस शब्द की आम समझ के अनुसार तो नहीं। रूथ मार्क्स द्वारा यह प्रशंसनीय सुझाव दिया गया है कि हम "नियमों के एक तय संग्रह को तब संगत कहते हैं जब उनकी किसी ऐसे संसार में सदा व हर

टिप्पणी

परिस्थिति में पालन की संभवता हो"। इस प्रकार, "नियमों को संगत उन परिस्थितियों में कहा जा सकता है जब कोई संघर्ष उभर कर न आए और नियमों का ऐसा संग्रह असंगत होगा अगर किसी भी परिस्थिति में, किसी संभव संसार में सभी नियम संतोषजनक हों"। कैंट, मिल और रॉस को शायद इस बात का ज्ञान है कि एक संघर्ष उत्पन्न करने वाले सिद्धांत का असंगत होना जरूरी नहीं है। फिर भी, उन्हें अच्छा नहीं लगेगा यदि उनके अपने सिद्धांत ऐसी स्थितियों की अनुमति देंगे। यदि यह चिंतन ठीक है तो ऐसा लगता है कि कैंट, मिल, रॉस तथा अन्य की सोच यह रही होगी कि एक ऐसी महत्वपूर्ण सैद्धांतिक विशेषता की संघर्ष बनाने वाले सिद्धांतों में कमी है। और यह बात बखूबी समझी जा सकती है। इसमें कोई शक नहीं कि एक नैतिक संघर्ष का सामना करने वाले व्यक्ति को यदि यह बताया जाए कि कम से कम इस स्थिति को उत्पन्न करने वाले नियम संगत हैं क्योंकि एक ऐसा संभव संसार हो सकता है जहां इनमें कोई संघर्ष नहीं होगा, तो शायद उसे कोई साहस नहीं मीलेगा। एक अच्छे व्यावहारिक उदाहरण के लिए, एक आपराधिक बचाव वकील की परिस्थिति को ध्यान में रखते हैं। उसका यह दायित्व है कि वह अपने मुवक्किल द्वारा बताई गई हर बात को भरोसेमंद ढंग से छिपा कर रखे और उसका यह भी कर्तव्य है कि वह कोर्ट में अच्छा व्यवहार बनाए रखे। जाहिर सी बात है कि इस संसार में इन दोनों दायित्वों में संघर्ष अवश्य होगा। यह भी स्पष्ट है कि किसी संभव संसार में – दोनों के बीच संघर्ष न हो और दोनों कर्तव्य पूरे किए जा सकें। इस बात का ज्ञान होने के बावजूद, संघर्ष से जूझने वाले, बचाव वकील को किसी प्रकार की राहत नहीं मिलेगी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "शिक्षा, मनुष्य में पहले से मौजूद, पूर्णता की अभिव्यक्ति है।" यह कथन किसका है?

   (क) स्वामी विवेकानंद (ख) स्वामी दयानन्द

   (ग) रामकृष्ण परमहंस (घ) स्वामी रामतीर्थ

4. स्कूलों में सिखाने के लिए कितने प्रकार के नैतिक मूल्यों को महत्वपूर्ण बताया गया है?

   (क) 5 (ख) 6

   (ग) 7 (घ) 9

2.4 नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और उद्देश्य

यहां पर नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों और उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया जा रहा है।

2.4.1 नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

मनोविश्लेषण के स्थापक फ्रायड (1962) द्वारा सामाजिक एवं व्यक्तिगत जरूरतों के बीच आपसी तनाव होने की बात का प्रस्ताव रखा गया था। फ्रायड के अनुसार, जब एक

व्यक्ति के माता–पिता (या अन्य सामाजिक स्रोत) उसकी स्वार्थी इच्छाओं को दमित करके, उनकी जगह महत्वपूर्ण मूल्यों का हस्तांतरण करते हैं तो उसके नैतिक विकास का आगम होता है। समान रूप से, आचरण के समर्थक स्किनर (1972) ने समाजीकरण को नैतिक विकास की मुख्य ताकत कहा था। फ्रायड की, आंतरिक एवं बाहरी ताकतों के बीच संघर्ष की धारणा के विपरीत, स्किनर ने व्यक्ति के विकास पर बाहरी ताकतों (सुदृढ़ीकरण आकस्मिकता) के प्रभाव की बात का अधिक समर्थन किया है। जहां फ्रायड और स्किनर, दोनों, ने नैतिकता पर बाहरी ताकतों के प्रभाव की बात की है (फ्रायड ने माता–पिता की और स्किनर ने सुदृढ़ीकरण आकस्मिकताओं की), पियाजे (1965) द्वारा व्यक्ति की नैतिकता के निर्माण और उसकी व्याख्या के संबंध में सामाजिक–संज्ञानात्मक और सामाजिक–भावनात्मक दृष्टिकोण की बात की है।

कोलबर्ग (1963) ने पियाजे की, नैतिक विकास संबंधित धारणाओं को और विस्तृत किया। जहां उन दोनों ने नैतिक विकास को संसार के प्रति उन्मुखीकरण के सामंजस्य तथा एकीकरण बढ़ाने के जाने बूझे प्रयास की तरह देखा। कोलबर्ग ने व्यवस्थित 3–स्तरीय, 6–चरण वाली श्रृंखला उपलब्ध करवाई जो आजीवन नैतिक निर्णयों में होने वाले परिवर्तन प्रतिबिंबित करती है। खास तौर पर, कोलबर्ग द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि विकास का आगम व्यक्ति की खुद को सजा से बचाने (व्यक्तिगत), सामूहिक कार्यों के प्रति चिंता (सामाजिक), सार्वभौमिक नैतिक नियमों के लगातार कार्यान्वयन की चिंता (नैतिक) से बचने जैसी स्वार्थी इच्छाओं से पैदा होता है।

टुरिएल (1983) द्वारा सामाजिक बोध प्राप्त करने के लिए सामाजिक ज्ञानक्षेत्र दृष्टिकोण का दावा किया गया है, साथ में उन्होंने इस बात का भी वर्णन किया कि लोग नैतिक (निष्पक्षता, समानता, न्याय), सामाजिक (सम्मेलन, सामूहिक कार्य, परंपरा) और मानसिक (निजी, व्यक्तिगत विशेषाधिकार) अवधारणाओं का शुरुआती विकास के दौर से बाकी जीवन अंतर करते रहते हैं। इस नमूने को, पिछले 40 वर्षों में की गई अनेक खोजों का समर्थन प्राप्त है। इसमें यह दर्शाया गया है कि कैसे बच्चे, जवान और बड़े नैतिक नियमों और पारंपरिक नियमों में अंतर करते हैं।

पिछले 20 वर्षों से खजकों द्वारा, पूर्वाग्रह, आक्रामकता, मन के सिद्धांत, भावनाओं, सहानुभूति, सहकर्मी संबंध, माता–पिता और बच्चों की बातचीत जैसे विषयों पर नैतिक निर्णय, तर्क, और भावना विशेषता आदि कार्यान्वित करके नैतिक विकास के क्षेत्र में वृद्धि की जा रही है।

पियाजे का नैतिक विकास का सिद्धांत

पियाजे का यह मानना था कि प्रौढ़ नैतिकता को समझने के लिए, इस बात को समझना जरूरी है कि एक बच्चे के संसार में नैतिकता किस प्रकार प्रकट होती है और केंद्रीय नैतिक कारकों, जैसेकि कल्याण, न्याय तथा अधिकार, के उभरने के कारण क्या हैं? बच्चों का इंटर्व्यू करने के बाद पियाजे ने यह जाना कि छोटे बच्चे प्राधिकरण जनादेश पर केंद्रित थे और यह कि बढ़ती उम्र के साथ बच्चे स्वतंत्र हो जाते हैं। बड़े होने के बाद वे नैतिकता के स्वतंत्र सिद्धांतों में से कार्यों का मूल्यांकन करते हैं।

उन्होंने नैतिक विकास के दो चरण विकसित किए, पहला जो बच्चों में सामान्य था और दूसरा जो बडों में सामान्य रूप से देखा गया था।

टिप्पणी

बाह्य नियम चरण

बाह्य नियम चरण सबसे पहला चरण होता है। यह चरण बच्चों में अधिक देखा जा सकता है। इसे मुख्य रूप से यह विचार वर्णित करता है कि हम जीवन के नियम उन लोगों से सीखते हैं जिनका कोई अधिकार होता है, जैसे कि, हमारे माता–पिता, शिक्षक या भगवान। इसमें यह विचार भी शामिल है कि चाहे कुछ भी हो जाए, नियम हमेशा स्थाई होते हैं। तीसरा, नैतिक विकास के इस चरण में यह विश्वास शामिल है कि "शैतानी" को हमेशा सजा मिलनी चाहिए, और यह कि सजा हमेशा शैतानी के अनुरूप होगी। नैतिक विकास में यह निरपेक्षवाद, 5 साल की उम्र से बच्चों के खेल में देखा जा सकता है, जहां बच्चे अपने बड़ों द्वारा बताए गए नियमों और विचारों के प्रति अंधे विश्वास का प्रदर्शन करते हैं।

स्वायत्त चरण

पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धांत के दूसरे चरण को स्वायत्त चरण कहा जाता है। बचपन के बाद, प्रौढ़ावस्था में यह चरण अधिक सामान्य होता है। इस चरण में, लोग दूसरों द्वारा किए गए कर्मों के परिणामों से बढ़कर उनके पीछे उनके इरादों को अधिक महत्व देते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक मोटर वाहक सड़क पर चल रहे कुत्ते की जान बचाने के लिए अचानक अपनी गाड़ी मोड़ता है और उसकी गाड़ी सड़क के किनारे खंबे से टकरा जाती है तो आस–पास के लोग उसकी इस हरकत पर नाराज नहीं होंगे। लेकिन यदि वह ऐसा जानबूझ कर केवल मजे के लिए करेगा तो वे अवश्य उसे भला बुरा कहेंगे। इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि दोनों सूरतों में समान परिणाम है लेकिन, कुत्ते की जान बचाने के इरादे से हुई गलती को लोग आसानी से माफ कर देते हैं। इस चरण में यह विचार भी शामिल है कि अलग लोगों की अलग नैतिकता होती है। नैतिकता सार्वभौमिक नहीं होती। स्वायत्त चरण में लोगों को ऐसा भी लगता है कि कुछ परिस्थितियों में नियम तोड़ना गलत नहीं होता। उदाहरण के लिए, शीला ने बस पर अपनी सीट छोड़ने से इनकार करके नियम तोड़ा, यह बात नियमों के खिलाफ तो अवश्य थी लेकिन कुछ लोग इसे नैतिक समझ सकते हैं। इस चरण में लोगों का निरंतर या स्थाई न्याय से भी विश्वास उठ जाता है।

2.4.2 कोलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत

मनोवैज्ञानिक लॉरेंस कोलबर्ग (1927–1987) ने पियाजे द्वारा स्थापित, नैतिक एवं संज्ञानात्मक विकास के आधार पर और काम किया। पियाजे की तरह, कोलबर्ग भी नैतिक तर्क में दिलचस्पी रखते थे। जरूरी नहीं कि नैतिक तर्क की तुलना नैतिक व्यवहार से की जाए। किसी एक विश्वास में मान्यता रखने का यह मतलब नहीं कि हमारा व्यवहार सदा उस विश्वास के संगत रहेगा। इस सिद्धांत के विकास हेतु, कोलबर्ग द्वारा भिन्न आयु के लोगों के सामने अलग–अलग नैतिक दुविधाएं रखी गईं। इसके बाद उन्होंने, लोगों द्वारा दिए गए उत्तरों का विश्लेषण करके उनके नैतिक विकास विशेष के विशेष स्तर का प्रमाण ढूंढा। लोगों के समक्ष यह और अनेक दुविधाएं रखने के बाद, कोलबर्ग ने उनकी प्रतिक्रियाओं की समीक्षा की और उन्हें नैतिक तर्क के अलग–अलग स्तरों पर रखा। कोलबर्ग के अनुसार, एक व्यक्ति, पूर्व–पारंपरिक नैतिकता (नौ वर्ष की उम्र से पहले) के सामर्थ्य से पारंपरिक नैतिकता (प्रारंभिक किशोरावस्था) तक जाता है, जिसके बाद वह उत्तर–पारंपरिक नैतिकता (एक बार

औपचारिक परिचालन विचार प्राप्त हो जाने के बाद) पाने की कोशिश करता है। इस प्रकार की नैतिकता पाने में केवल कुछ ही लोग सफल हो पाते हैं।

कोलबर्ग के नैतिक स्तर

पियाजे के समान, स्तर नमूने का प्रयोग करते हुए कोलबर्ग द्वारा तीन स्तरों की प्रस्तावना रखी गई है, जिसमें नैतिक विकास के छह चरण हैं। लोगों को इन स्तरों का अनुभव सार्वभौमिक तरीके से होता है। इसकी शृंखला का क्रम व्यक्ति के न्याय के प्रति विश्वासों के क्रम के अनुसार होता है। उन्होंने केवल तीन नामों का प्रयोग किया– पूर्व–पारंपरिक, पारंपरिक और उत्तर–पारंपरिक।

कोलबर्ग द्वारा नैतिक तर्क के तीन स्तर प्रस्तावित किए गए थे। प्रत्येक स्तर, नैतिक विकास के बढ़ते जटिल चरणों से संबंधित है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

स्तर 1 : पूर्व–पारंपरिक नैतिकता

चरण 1 :

आज्ञाकारिता और सजा : सजा से बचने हेतु किया जाने वाला व्यवहार।

चरण 2

व्यक्तिगत हित : आत्म–हित तथा इनाम द्वारा प्रेरित व्यवहार

स्तर 2 : पारंपरिक नैतिकता

चरण 3

पारस्परिक : सामाजिक मान्यता द्वारा प्रेरित व्यवहार

चरण 4

अधिकार : अधिकार के पालन और सामाजिक पंथ की मान्यता द्वारा प्रेरित व्यवहार

स्तर 3 : उत्तर–पारंपरिक नैतिकता

चरण 5

सामाजिक अनुबंध : सामाजिक अनुबंध और व्यक्तिगत अधिकारों के संतुलन द्वारा प्रेरित व्यवहार।

चरण 6

सार्वभौमिक नैतिकता : आंतरिक नैतिक सिद्धांतों द्वारा प्रेरित व्यवहार।

पूर्व–पारंपरिकः आज्ञाकारिता तथा पारस्परिक लाभ

नैतिक विकास का पूर्व–पारंपरिक स्तर, लगभग, जीवन के पूर्वस्कूली काल और पियाजे की सोच की पूर्वसंचालन अवधि से मेल खाता है। इस चरण में बच्चा अभी भी, कुछ हद तक, दूसरों पर कर्मों के नैतिक प्रभाव के प्रति अत्म–केंद्रित और असंवेदनशील होता है। इसके परिणाम स्वरूप, नैतिकता के प्रति कुछ हद तक नजदीकी उन्मुखीकरण देखा जा सकता है। पहले, (कोलबर्ग के पहले चरण में) बच्चा 'आज्ञापालन और सजा की नैतिकता' अपनाता है। इसे मुश्किलों से दूर रहने की नैतिकता कहा जा सकता है। किए गए कार्य का सही या गलत होना, माता–पिता या शिक्षकों द्वारा पुरस्कृत होने द्वारा निर्धारित किया जाता है। यदि बिस्किट खाने से बड़ों जे चेहरे पर प्यार भरी

टिप्पणी

मुस्कान आती है तो बिस्किट खाने को 'नैतिक' रूप से अच्छा समझा जाता है। इसके विपरीत, यदि वही बिस्किट खाने के कारण बड़ों से डांट मिलती है तो बिस्किट खाने के इस कार्य को नैतिक रूप से 'बुरा' समझा जाता है। बच्चा यह नहीं सोचता कि उसके किसी कार्य को क्यों अच्छा या बुरा समझा जाता है। बल्कि कोलबर्ग का तो यह कहना है कि पहले चरण में तो वह इतना भी नहीं समझ पाएगा कि आखिर उसे बिस्किट दिया ही क्यों जा रहा है।

अंत में, बच्चा न केवल सकारात्मक परिणामों के प्रति प्रतिक्रिया करना सीखता है बल्कि वह, दूसरों के साथ अहसानों के बदले में इनका निर्माण करना भी सीख जाता है। इस नई योग्यता से दूसरे चरण की रचना होती है– बाजार के आदान प्रदान की नैतिकता। इस चरण में, उस कार्य को नैतिक रूप से 'अच्छा' समझा जाता है जिससे न केवल बच्चे का बल्कि उससे, प्रत्यक्ष रूप से, संबंधित दूसरे व्यक्ति का भी फायदा होता है। दूसरी ओर, एक 'बुरा' कार्य वह होता है जिसमें इस पारस्परिकता की कमी होती है। बच्चों के लिए, यदि स्कूल में भोजन के समय अपनी रोटी के बदले बिस्किट के व्यापार को पारस्परिक सहमति प्राप्त है तो इस व्यापार को नैतिक रूप से अच्छा माना जा सकता है; नहीं तो, यह बुरा है। यह दृष्टिकोण, पहली बार, बच्चे के मन में एक प्रकार की निष्पक्षता को जन्म देता है। खैर, फिर भी यह कर्मों के व्यापक संदर्भ को अनदेखा करता है– प्रत्यक्ष रूप पर उपस्थित या शामिल लोग। दूसरे चरण में, उदाहरण के लिए, पैसे देकर अपने सहपाठी से काम करवाना नैतिक रूप से 'अच्छा' माना जा सकता है, बशर्ते, दोनों तरफ के लोगों को यह व्यवस्था निष्पक्ष लगे।

पारंपरिक : साथियों और समाज के अनुरूप

जैसे–जैसे बच्चे अपने स्कूली जीवन में आगे बढ़ते हैं, उनके जीवन में अधिक संख्या में साथी जुड़ते जाते हैं और अंत में उनका जीवन पूरे समुदाय से जुड़ जाता है। यह बदलाव उनके जीवन में पारंपरिक नैतिकता लाता है। इस नैतिकता का मतलब है वो विश्वास जो लोगों की व्यापक सहमती पर आधारित होते हैं– यही कारण है कि कोलबर्ग द्वारा 'पारंपरिक' शब्द का प्रयोग किया गया। तीसरे चरण में, सबसे पहले, बच्चे का सबसे पहला संपर्क उसके साथियों से होता है। इसलिए कभी कभी, तीसरे चरण को साथियों की राय की नैतिकता भी कहा जाता है। उदाहारण के लिए, यदि एक बच्चे के साथी यह मानते हैं कि ज्यादा से ज्यादा लोगों के साथ शिष्टतापूर्ण आचार, नैतिक रूप से अच्छी बात है, तो बच्चे की यह बात मानने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। वह शिष्टता को केवल एक मनमानी सामाजिक प्रथा न मानते हुए, उसे नैतिक 'अच्छाई' समझने लगता है। नैतिक विश्वास के प्रति यह दृष्टिकोण, दूसरे चरण के दृष्टिकोण के मुकाबले में अधिक स्थिर है, क्योंकि बच्चा केवल एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया की जगह अनेक लोगों की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखता है। इसके बावजूद, यदि अगर एक बच्चे के साथी समूह को लगता है कि दुकान से, मजे के लिए', चॉकलेट चुराना ठीक बात है तो ऐसी सूरत में उस बच्चे के नैतिक विश्वास डगमगा सकते हैं।

आगे चलकर, जवान होने पर जब बच्चे के सामाजिक संसार का विस्तार होता है तो उसके मित्रों और साथियों की संख्या भी बढ़ती है। ऐसी सूरत में उसे नैतिक मसलों और विश्वासों से संबंधित असहमतियों का सामना करना पड़ सकता है। इन जटिलताओं का समाधान करने के बाद चौथे चरण तक पहुंचा जा सकता है, न्याय और

टिप्पणी

व्यवस्था की नैतिकता, जिसमें एक युवा व्यक्ति तेजी से अपने नैतिक विश्वासों को उस दिशा में आकार देता चला जाता है जिसपर समाज के व्यापक लोगों का विश्वास होता है। अब, नैतिक तौर पर वही कार्य अच्छा माना जाता है जो न्यायिक होता है या जिसे, कम से कम, अधिकतर लोगों द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। इसमें वो लोग भी शामिल होते हैं जिनसे युवा की व्यक्तिगत जान पहचान नहीं होती। इस मनोदृष्टि के फलस्वरूप, पिछले चरण की तुलना में, और ज्यादा स्थाई सिद्धांत स्थापित होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उसे नैतिक गलतियां करने की छूट प्राप्त है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि एक समुदाय या समाज इस बात से सहमत हो कि एक विशेष जाति के लोगों के साथ बुरा व्यवहार करना गलत बात नहीं, या एक मिल के स्वामी को मिल के साथ बहती नदी में गंदगी फेंकने का अधिकार है। ऐसी सामुदायिक गलतियों से बचने हेतु, सिद्धांतों का विकास करने के लिए, नैतिक विकास के अगले चरणों तक जाना अनिवार्य है।

उत्तर–पारंपरिकः सामाजिक अनुबंध और सार्वभौमिक सिद्धांत

जब एक व्यक्ति आदर्श (या 'औपचारिक', पियाजे के अनुसार) ढंग से सोचने के योग्य हो जाता है, तब नैतिक विश्वास, समाज के विश्वास की स्वीकृति से हट कर उन विश्वासों के निर्माण की प्रक्रिया पर केंद्रित हो जाते हैं। यह नया केंद्रीकरण, पांचवे चरण को जन्म देता है, सामाजिक अनुबंध की नैतिकता। अब, एक कार्य, विश्वास या प्रथा तभी नैतिक रूप से अच्छे हो सकते हैं जब उनका निर्माण सही तथा लोकतांत्रिक ढंग से किया गया हो, ऐसे तरीकों से जो प्रभावित लोगों के अधिकारों का आदर करते हों। उदाहरण के लिए, मान लीजिए, कई स्थानों पर मोटर साइकिल चालकों के लिए हेलमेट पहने का कानून। इस व्यवहार के संबंध में लागू होने वाले कानून नैतिक किस प्रकार हैं? क्या इस कानून के निर्माण से पहले प्रासंगिक लोगों की राय और सहमति ली गई थी? क्या साइकिल चालकों से सलाह विमर्श करने के बाद उनकी सहमति ली गई थी? क्या डॉकटरों या चालकों के परिवार जनों से पूछा गया था? उचित, विचारशील व्यक्ति इन परामर्श प्रक्रियाओं की सम्पूर्णता और निष्पक्षता से सहमत नहीं हैं। कानून की निर्माण प्रक्रियाओं पर केंद्रित होते हुए; लोग पांचवे चरण के अनुसार सोचते हैं, सामाजिक अनुबंध की नैतिकता। हेलमेट पहनने के कानून पर इनकी अपनी स्थिति के बावजूद। इस तरह, कई बार,एक दूसरे के विपरीत होने के बावजूद, एक बहस के दोनों पक्षों के विश्वास नैतिक रूप से ठोस हो सकते हैं।

कोलबर्ग और दुविधा

कोलबर्ग के नैतिक विकास के चरणों को समझने के लिए अकसर दुविधा के उदाहरण का प्रयोग किया जाता है। आप इस दुविधा का कैसे जवाब देंगे? कोलबर्ग को इस बात में दिलचस्पि नहीं थी कि इस दुविधा को लेकर आपका जवाब 'हां' होगा या 'ना' बल्कि वो तो आपके उत्तर के पीछे छिपे तर्क में रुचि रखते थे।

यूरोप में, एक महिला एक विशेष प्रकार के कैसंर से पीड़ित थी जिस कारण उसका मृत्यु से बहुत नजदीकी सामना हुआ। डॉक्टरों के अनुसार शायद उसे एक खास दवा देकर बचाया जा सकता था। यह एक प्रकार का रेडियम था जिसकी खोज उसी शहर में रहने वाले एक व्यक्ति ने हाल ही में की थी। इस दवा को बनाने के लिए

टिप्पणी

काफी पैसे की जरूरत थी, इसके ऊपर दवाई बनाने वाला वह व्यक्ति जरूरत से दस गुना ज्यादा पैसे मांग रहा था। रेडियम पर उसका 200 डॉलर का खर्च आया था लेकिन वह दवा की छोटी सी खुराक के लिए 2000 डॉलर मांग रहा था। बीमार महिला का पति, , अपनी पत्नी की दवा के लिए अपनी जान पहचान के हर व्यक्ति के पास पैसा उधार मांगने गया। सारी कोशिशों के बावजूद वह केवल 1000 डॉलर ही इकट्ठा कर पाया, जोकि दवा का आधा दाम था। उसने दवा विक्रेता को कहा कि उसकी पत्नी मरने वाली है इसलिए वह उसे दवा सस्ते दाम में दे दे। लेकिन दवा विक्रेता ने उस व्यक्ति की बात ठुकराते हुए कहा, "मैंने इस दवा की खोज की है और मैं इससे अवश्य मुनाफा कमाऊंगा"। यह बात सुनकर जरूरत से ज्यादा निराश हो गया और उसने विक्रेता की दुकान का दरवाजा तोड़कर, अपनी पत्नी के लिए, दवा चुराने की कोशिश की। क्या उसे ऐसा करना चाहिए था? (कोलबर्ग 1969)

एक सैद्धांतिक विचार से प्रतिभागी की, द्वारा किए गए काम के बारे में, सोच महत्वपूर्ण नहीं है। कोलबर्ग का सिद्धांत इस बात से सहमत है कि प्रतिभागी द्वारा दिया गया औचित्य महत्वपूर्ण है, उसकी प्रतिक्रिया का तरीका। नीचे छह चरणों के संभव तर्कों के कुछ उदाहरण दिए गए हैं–

- **पहला चरण (आज्ञाकारिता):** को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि उसे इस जुर्म के लिए जेल हो सकती है, जिसका मतलब होगा कि वह एक बुरा व्यक्ति है। या को दवा चुरानी चाहिए क्योंकि उस दवा की असली कीमत तो केवल 200 डॉलर है न कि जितनी दवा विक्रेता मांग रहा है; ने तो उसकी कीमत छुकाने का भी प्रस्ताव रखा था और वह उसका वह दवा के अलावा और कुछ भी चुराने का कोई इरादा नहीं था।
- **दूसरा चरण (आत्म–हित):** को दवा चुरानी चाहिए क्योंकि यदि वह अपनी पत्नी को बचा पाया तो उसे बहुत खुशी मिलेगी, फिर चाहे उसे इस अपराध के लिए जेल ही क्यों ना जाना पड़े। या को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि जेल बहुत खराब जगह है और उसे अपनी पत्नी की मृत्यु से अधिक जेल में सड़ने का दुख होगा।
- **तीसरा चरण (अनुरूपता)** : को दवा चुरानी चाहिए क्योंकि उसकी पत्नी उससे इस बात की उम्मीद रखती है और वह एक अच्छा पति बनना चाहता है। या को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि चोरी करना बुरी बात है और वह कोई अपराधी नहीं है; उसने, कानून के दायरे में रहते हुए, अपनी पत्नी को बचाने की हर कोशिश की है, उसे किसी बात का दोष नहीं दिया जा सकता।
- **चौथा चरण (कानून और व्यवस्था):** को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि कानून इस बात की इजाजत नहीं देता, इसलिए उसकी यह हरकत गैरकानूनी है। या को अपनी पत्नी के लिए दवा तो अवश्य चुरानी चाहिए लेकिन साथ ही उसे उस जुर्म की सजा भी भुगतनी चाहिए, इसके अलावा उसे दवा विक्रेता को दवा का भुगतान भी करना चाहिए। अपराधी, बिना कानून की परवाह किए यहां वहां, खुले, नहीं घूम सकते। हर काम का परिणाम झेलना प्राकृतिक है।
- **पांचवा चरण (सामाजिक अनुबंध उन्मुखीकरण)** : को दवा चुरानी चाहिए क्योंकि, कानून की परवाह किए बिना, हर व्यक्ति को जीने का अधिकार है। या

को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि दवा बनाने वाले वैज्ञानिक को उसके हक के पूरे पैसे मिलने चाहिए। पत्नी के बीमार होने से उसकी गलती को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

- **छठा चरण (सार्वभौमिक मानव नैतिकता)** : को दवा चुरानी चाहिए, क्योंकि एक मनुष्य का जीवन बचाने का मौलिक मूल्य, किसी व्यक्ति के संपत्ति के अधिकार बचाने से अधिक महत्वपूर्ण है। या हाइंज को दवा नहीं चुरानी चाहिए क्योंकि अन्य किसी व्यक्ति को भी उस दवा की उतनी जरूरत हो सकती है, और उनका जीवन उस पर निर्भर कर सकता है।

बच्चों में तर्क के विकास की विधि

अनुभव वह उत्प्रेरक है जो तार्किक तर्क के विकास की सहयता करता है। बच्चे अनुभव द्वारा तार्किक ढंग से सोचना, अवलोकनों को देखना, जानकारी का विश्लेषण करना और समस्याएं सुलझाना सीखते हैं।

बच्चे तर्क करने की योग्यता रखते हैं, उनमें ज्ञान और परस्पर क्रिया के बीच तार्किक संबंध स्थापित करने की क्षमता होती है। बच्चों में तर्क की क्षमता तब उत्पन्न होती है जब वे खुद के साथ समय बिताते हैं और अपनी सोचना प्रक्रिया को दृढ़ करते हैं। तर्क की यह योग्यता भिन्न बच्चों में अलग–अलग समय पर विकसित होती है। यह प्रत्येक बच्चे की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती है। खैर, अंत में इसे हर बच्चे में देखा जा सकता है। कुछ बच्चे तुरंत सीख जाते हैं, कुछ बच्चों को सिखाने के लिए एक चीज या कार्य को बार–बार दोहराना पड़ता है, जिससे किसी तरह का प्रतिरूप या तार्किक संबंध स्थापित हो सके।

आओ इस उदाहरण द्वारा समझने की कोशिश करते हैं; पढ़ते समय, एक आत्म–निर्भर शिष्य को किसी विषय को समझने के लिए सिद्धांतों की खोज करके संबंध बनाना पड़ता है। दूसरी ओर, अनुशिक्षण द्वारा सीखने वाले बच्चे के लिए, अपने आप, ये संबंध बनाना संभव नहीं होता। इसलिए, अनुशिक्षण पर निर्भर बच्चे को उतने अंक नहीं प्राप्त हो सकते जितने एक आत्म–निर्भर बच्चे को हो सकते हैं। एक आत्म–निर्भर बच्चे के अनुसार, जो सीखने की अपनी शैली को बखूबी समझता है, अनुशिक्षण द्वारा सीखना बेकार है। लेकिन एक ऐसा बच्चा जो सीखने और पढ़ने के लिए आत्म–निर्भर नहीं है, हमेशा अनुशिक्षण द्वारा सीखने को बेहतर समझेगा।

किशोरावस्था के दौरान नैतिक तर्क

किशोरावस्था में पहुंचने के बाद व्यक्ति बेहद स्वतंत्र हो जाता है, इसके अलावा, उसमें नैतिकता को लेकर सूक्ष्म विचार भी विकसित हो जाते हैं। लोगों को सही और गलत का अंतर भी समझ आने लगता है। हम अपने रोजाना जीवन में नैतिक निर्णय लेते हैं। किशोरावस्था में संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास निरंतर चलता रहता है। किशोरावस्था में व्यक्ति की नैतिकता की समझ में वृद्धि होती है और उसका व्यवहार उसके मूल्यों और विश्वासों से बंधने लगता है। इसलिए, नैतिक विकास इन मार्गदर्शक सिद्धांतों को दैनिक जीवन में कार्यान्वित करने की प्रक्रिया में होने वाले बदलावों का विश्लेषण करता है। इस चरण में, नैतिक विकास को समझना बहुत जरूरी है जहां लोग अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं और उनका कानूनी उत्तरदायित्व बढ़ जाता है।

टिप्पणी

कोलबर्ग (1984) द्वारा यह कहा गया है कि नैतिक विकास अनेक चरणों द्वारा गुजर कर अपना रास्ता तय करता है और नैतिकता से संबंधित तर्क बहुत जटिल रूप ले लेता है (यह धारणा कुछ हद तक पियाजे की संज्ञानात्मक विकास के चरणों की धारणा से मिलती है)। जीवन में बौद्धिक विकास के दौरान बच्चे नैतिक सोच के तीन चरणों से गुजरते हैं: पूर्व–पारंपरिक स्तर, पारंपरिक स्तर, और उत्तर–पारंपरिक स्तर। इन स्तरों और इनके भिन्न चरणों की विस्तृत चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

नैतिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव

किशोर अपनी संस्कृति, घर तथा स्कूल में देखे जाने वाले नमूनों, और मास मीडिया के प्रति ग्रहणशील होते हैं। ये अवलोकन नैतिक तर्क और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। छोटी उम्र में, बच्चों की नैतिक निर्णय लेने की शक्ति उनके परिवार, संस्कृति तथा धर्म से बहुत प्रभावित होती है। शुरुआती किशोरावस्था में आस–पास रहने वाले संगी साथियों का बेहद असर होता है। साथियों द्वारा डाला गया प्रभाव इनके जीवन को बहुत शक्तिशाली रूप से प्रभावित कर सकता है क्योंकि किशोरावस्था में व्यक्ति अपने मित्रों तथा साथियों की बात ज्यादा सुनता और मानता है। इसके अलावा, आदर्श रूप से सोचने की नई योग्यता इनमें यह जागरुकता उत्पन्न करती है कि नियम आखिर औरों द्वारा बनाए जाते हैं। इस सोच के फलस्वरूप किशोर, माता–पिता, स्कूल, सरकार, और पारंपरिक संस्थाओं के पूर्ण अधिकार पर सवाल उठाने लगते हैं। किशोरावस्था के बाद के चरण में ज्यादातर किशोर कम विद्रोही हो जाते हैं, क्योंकि इस समय तक वे अपनी पहचान, अपनी विश्वास प्रणाली और संसार में अपना स्थान स्थापित कर चुके होते हैं।

दुर्भाग्यपूर्ण, कुछ लोगों को अपनी किशोरावस्था में ऐसे अनुभव होते हैं जो उनके नैतिक विकास में बाधा डाल सकते हैं। दर्दनाक अनुभवों के कारण, हो सकता है कि वे दुनिया को अन्यायपूर्ण और अनुचित समझने लगें। इसके अलावा, सामाजिक सीख भी नैतिक विकास को प्रभावित करती है। कई बार, किशोरावस्था में, कुछ लोगों को अपने बड़ों द्वारा लिए गए अनैतिक निर्णयों का अनुभव होता है। ऐसे निर्णय जिनके कारण दूसरों के अधिकारों या कल्याण का उल्लंघन हुआ हो। इन निर्णयों का अनुभव करने के बाद इनके मन में समाज के विपरीत विश्वास तथा मूल्य उत्पन्न होते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि, वयस्कों के पास नैतिक विकास का समर्थन करने के अनेक अवसर होते हैं, वे आदर्श नैतिक चरित्र का प्रदर्शन करके अपने बच्चों को ऐसा प्रदर्शन दिखा सकते हैं जैसी वे उनसे अपेक्षा रखते हैं। इस प्रक्रिया में माता–पिता की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि वे बच्चों के नैतिक मार्गदर्शन का असल स्रोत होते हैं। पालन–पोषण की अन्य शैलियों की तुलना में, आधिकारिक पालन–पोषण की शैली बच्चों के नैतिक विकास में अधिक सहायक होती है और अपने बच्चे के सही नैतिक विकास के लिए माता–पिता एक और काम करा सकते हैं कि वे अपने बच्चे को, सही साथी और मित्र चुनने के लिए प्रोत्साहित करें। हो सकता है कि कुछ लोगों को पालन पोषण का यह ढंग मुश्किल और चुनौतीपूर्ण लगे, लेकिन एक बात याद रखनी महत्वपूर्ण है कि विकासशीलता का यह कदम बच्चों के कल्याण और आगे चलकर जीवन में उनकी सफलता के लिए अनिवार्य है।

2.4.3 विश्लेषण, नैतिक प्रश्नों, आदर्श व्यवहार, परीक्षक परिस्थितियों आदि, द्वारा मूल्यों की शिक्षा

टिप्पणी

मूल्य शिक्षा को सीख के दृष्टिकोण से जांचने वाले ज्यादातर शिक्षक, मूल्यों को सामाजिक या सांस्कृतिक तौर पर स्वीकृत नियमों या मानकों के रूप में देखते हैं। इसलिए मूल्यों को ऐसी प्रक्रिया समझा जाता है जिसमें एक विद्यार्थी, समाज में महत्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा स्थापित मानकों या नियमों को स्वीकृत करके उन्हें पहचान प्रदान करता है। विद्यार्थी इन मूल्यों को अपनी मूल्य प्रणाली में शामिल करता है। ये शिक्षक मानव प्रकृति को उसी तरीके से देखते हैं जिस प्रकार उससे मूल्य शिक्षा प्रक्रिया के समय काल के दौरान व्यवहार किया जाता है। ये उसे एक आरंभकर्ता की जगह एक प्रतिक्रियाकर्ता के रूप में देखते हैं। टैलकॉट पारसन्स (1951) जैसे चरम अधिवक्ताओं का मानना है कि एक समाज के लिए उसकी जरूरतों का ऊंचा उठना और व्यक्तियों के लक्ष्यों को परिभाषित करना जरूरी है।

पारसन्स (1951) के अलावा, सीअर्स और उनके सहकर्मियों (1957, 1976) और व्हाइटिंग (1961) द्वारा भी इस बात का समर्थन किया गया है। विन्न एवं रायन (1989,1992), कुछ एक आधुनिक खोजक रहे हैं। जॉर्जिया शिक्षा विभाग (1997) द्वारा विकसित समान, विलियम बेनेट का कार्य (1993) और कैरेकटर एजुकेशन इंस्टिट्यूट (सीईआइ) द्वारा भी शिक्षा के दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया गया है।

नैतिक विकास

नैतिक विकास का दृष्टिकोण अपनाने वाले शिक्षकों का यह मानना है कि नैतिक विचार का विकास चरणों में, एक विशिष्ट श्रृंखला द्वारा होता है। यह दृष्टिकोण मुख्य रूप से लॉरेंस कोलबर्ग (1969, 1984) के कार्य पर आधारित है, जैसाकि उनके 6 चरणों और 25 "मूलभूत नैतिक सिद्धांतों" द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण, मुख्य रूप से, निष्पक्षता, न्याय, समानता, और मानवीय गरिमा जैसे नैतिक मूल्यों पर आधारित हैय सामाजिक, व्यक्तिगत और सौंदर्य संबंधित जैसे अन्य मूल्यों पर ज्यादातर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसा माना गया है कि छात्रो का नैतिक मामलों से संबंधित विकास अपरिवर्तनीय रूप से चलता रहता है। वे अपने प्राथमिक वर्तमान चरण की तुलना में एक अन्य दूसरे चरण को बखूबी समझ सकते हैं। नैतिक विकास के बढ़ावे के लिए, अगले उच्च चरण तक पहुंच अनिवार्य है। शिक्षक, छात्रों को प्रोत्साहित करने की कोशिश करते हैं जिससे उनकी सोच में, क्रमिक चरणों द्वारा, जटिल नैतिक तर्क का विकास हो सके।

मानवीय प्रकृति को लेकर, कोलबर्ग के विचार पियाजे (1932, 1962), एरिकसन (1950) और लोएविंगर एवं अन्य (1970) जैसे अन्य विकास मनोवैज्ञानिकों के विचारों से मेल खाते हैं। यह दृष्टिकोण, व्यक्ति को एक, अपने वातावरण के संदर्भ में, सक्रिय प्रारंभक और प्रतिक्रियाकर्ता के रूप में देखता है। जहां व्यक्ति अपने वातावरण को पूरी तरह बदल नहीं सकता, वहीं वातावरण भी व्यक्ति को पूरी तरह बदलने का सामर्थ्य नहीं रखता। एक व्यक्ति के कार्य उसकी भावनाओं, उसके विचारों, अनुभवों और व्यवहारों का परिणाम होते हैं। वातावरण एक व्यक्ति के अनुभवों की सामग्री चाहे निर्धारित कर सकता है, लेकिन वह उनका आकार निर्धारित नहीं कर सकता। आनुवंशिक संरचनाएं, पहले से ही व्यक्ति के अंदर मौजूद होती हैं और ये इसके लिए जिम्मेदार होती हैं कि व्यक्ति

सामग्री को किस प्रकार आंतरिक रूप से ग्रहण करता है और कैसे उसे व्यक्तिगत रूप से अर्थपूर्ण डेटा के रूप में बदलता है।

टिप्पणी

नैतिक विकास की तकनीक अकसर एक काल्पनिक या तथ्यात्मक मूल्य दुविधा की कहानी प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग की जाती है, जिसकी चर्चा फिर छोटे छोटे समूहों में की जाती है। चर्चा के दौरान छात्रों के समक्ष वैकल्पिक दृष्टिकोण रखे जाते हैं, जिससे उनमें उच्च नैतिक सोच का विकास होता है। इस दुविधा को उपयुक्त बनाने के लिए तीन महत्वपूर्ण चर हैं–

1. कहानी द्वारा "केंद्रीय पात्र के सम्मुख एक असल दुविधा" प्रस्तुत की जानी चाहिए और इसमें "विचार करने योग्य अनेक नैतिक मामले" शामिल होने चाहिए, इसके अलावा इसमें छात्रों के मन में "एक परिस्थिति के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को लेकर भिन्न विचार" उत्पन्न करने का सामर्थ्य होना चाहिए।
2. एक ऐसा अगुआ होना चाहिए जो चर्चा को नैतिक तर्क के दायरे से बाहर न जाने दे।
3. ऐसा अनुकूल वातावरण होना जरूरी है जहां विद्यार्थी बैठ कर नैतिक तर्क पर अपने विचार खुलकर व्यक्त कर सकें (गेलबर्थ तथा जोन्स, 1975)।

ऐसा माना जाता है कि मूल्य संज्ञानात्मक नैतिक विश्वास या सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। यह दृष्टिकोण इस शिक्षा धारणा से सहमत होगा कि दुनिया में सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत मौजूद हैं, लेकिन इस बात का विरोध करता है कि मूल्यों को एक विशेष वातावरण या परिस्थिति से संबंधित समझा जा सकता है और इनका कार्यान्वयन व्यक्ति के संज्ञानात्मक विकास के आधार पर किया जाता है।

विश्लेषण

मूल्य शिक्षा के संबंध में विश्लेषण दृष्टिकोण का विकास मुख्य रूप से सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों द्वारा किया गया है। यह दृष्टिकोण तार्किक सोच तथा तर्क पर जोर देता है। विश्लेषण दृष्टिकोण का उद्देश्य है छात्रों की नैतिक मामलों से निपटते समय तार्किक सोच और वैज्ञानिक खोज की विधियों का प्रयोग करने में उनकी सहायता करना। छात्रों को खोज किए जाने वाले विषयों की यथार्थता या उनके मूल्यों के समर्थन में सत्यापन योग्य तथ्य उपलब्ध करवाने हेतु कहा जाता है। एक मुख्य मान्यता यह है कि मूल्य उन तथ्यों में से निकले तथ्यों तथा विश्वासों को निर्धारित करने की संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। यह दृष्टिकोण, नैतिक विकास सिद्धांत में प्रस्तुत, व्यक्तिगत नैतिक दुविधाओं की जगह, मुख्य रूप से, सामाजिक मूल्यों पर केंद्रित है।

इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयोग की गई शिक्षण विधियां आमतौर पर सामाजिक मूल्य समस्याओं तथा मामलों, लाइब्रेरी और बाहरी खोज तथा तार्किक कक्षा चर्चा में व्यक्तिगत और सामूहिक जांच के आस–पास घूमती हैं। इन तकनीकों का सामाजिक जांच शिक्षा में व्यापक प्रयोग किया जाता है।

अनेक उच्च स्तरीय संज्ञानात्मक तथा बौद्धिक संचालनों का लगातार प्रयोग किया जाता है। इनमें निम्न शामिल हैं–

1. मामलों का वर्णन।
2. बयानों की प्रासंगिकता में प्रश्न पूछना और पुष्टि करना।

3. मूल्य परिस्थितियों को योग्य और परिष्कृत करने के लिए समरूप मामलों का कार्यान्वयन करना।
4. चर्चाओं में तार्किक और अनुभवजन्य विसंगतियों की ओर इशारा करना।
5. विपरीत तर्कों का मूल्यांकन करना।
6. सबूत खोजना और उनकी जांच करना।

मेटकैल्फ (1971) द्वारा एक अनुदेशात्मक नमूना प्रस्तुत किया गया है–

1. मूल्य प्रश्न की पहचान और उसका स्पष्टीकरण।
2. कथित तथ्य इकट्ठा करना।
3. इकट्ठा किए गए तथ्यों की सच्चाई का आंकलन करना।
4. तथ्यों की प्रासंगिकता का स्पष्टीकरण।
5. प्रयोगात्मक मूल्य निर्णय तक पहुंचना।
6. लिए गए निर्णय में मूल्य सिद्धांत की जांच करना।

मूल्य स्पष्टीकरण

मूल्य स्पष्टीकरण सिद्धांत का जन्म मुख्य रूप से मानवीय मनोविज्ञान तथा मानवीय शिक्षा संचलन से हुआ, क्योंकि इसके द्वारा गॉर्डन ऐलपॉर्ट (1955), एब्राहम मैसलो (1970), कार्ल रॉजर्स (1969) और अन्य के विचारों और सिद्धांतों का कार्यान्वयन करने की कोशिश की गई थी। केंद्रीय फोकस, व्यक्तिगत व्यवहार नमूनों की जांच के लिए, छात्रों की तार्किक सोच और भावनात्मक जागरुकता का प्रयोग करने के लिए सहायता करने पर था। माना जाता है कि मूल्य स्थापना आत्म–बोध की एक प्रक्रिया है जिसमें मौजूद विकल्पों को स्वतंत्र रूप से चुनने के लिए उप प्रक्रियाएं शामिल होती हैं। इसके अलावा इसमें चुने गए विकल्पों के परिणामों के बारे में विचार करना और अपने चयनों पर कार्य करना भी शामिल है। मूल्य स्पष्टीकरण, मुख्य रूप से रैथ्स, हार्मिन और साइमन (1978), साइमन एंड किर्शेनबाम (1973), और साइमन, होवे और किर्शेनबाम (1972) के कार्यों पर आधारित है।

इसकी तुलना में शिक्षा सिद्धांत आमतौर पर बाहरी मानकों और नैतिक विकास पर निर्भर करता है और विश्लेषण सिद्धांत आंतरिक संज्ञानात्मक तथा प्रभावी निर्णय लेने की प्रक्रिया पर निर्भर करता है, यह तय करने के लिए कि मूल्य सकारात्मक हैं या नकारात्मक। इसलिए इसे मूल्य शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया की जगह व्यक्तिगत कहा जा सकता है।

इस नजरिए से, यदि एक व्यक्ति को अपनी मर्जी के अनुसार चलने या काम करने का अवसर दिया जाए तो वह अपनी आंतरिक भावनाओं और मर्जी के आधार पर चुनाव करेगा। ऐसा माना जाता है कि आत्म–जागरुकता के जरिए व्यक्ति उन परिस्थितियों में प्रवेश करता है जिनकी ओर पहले से इशारा किया जा चुका है। व्यक्ति के विकास के चलते वह अपने जीवन के चुनाव जागरुक स्वावलंबी विचार और भावना के आधार पर करने लगता है।

मूल्य स्पष्टीकरण के लिए प्रयोग किए गए तरीकों में निम्न शामिल हैं– बड़े और छोटे समूहों के बीच सामूहिक चर्चा; व्यक्तिगत तथा सामूहिक कार्य; काल्पनिक और

टिप्पणी

वास्तविक दुविधाएं; रैंक व्यवस्थाएं और थोपे गए चुनाव; संवेदनशीलता और सुनने की तकनीक; गाने और कला; खेल और प्रोत्साहन; व्यक्तिगत पत्रिकाएं और इंटर्व्यू; आत्म–विश्लेषण वर्कशीट। एक महत्वपूर्ण अगुआ वह है जो मूल्यों के चुनाव को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करता। नैतिक विकास के सिद्धांत की तरह, मूल्य स्पष्टीकरण यह मान कर चलता है कि मूल्य प्रक्रिया आंतरिक और संबंधित है, लेकिन शिक्षा और विकासशील सिद्धांतों के विपरीत यह सैद्धांतिक मूल्यों के समुच्चय को तथ्य नहीं मानता।

साइमन एवं अन्य (1972) द्वारा मूल्य स्पष्टीकरण सिद्धांत रूपरेखा के वर्णन के लिए एक अति शक्तिशाली प्रक्रिया की व्याख्या की गई है–

1. विकल्पों में से चुनना;
2. स्वतंत्र रूप से चुनना;
3. किसी की पसंद को महत्व देना;
4. अपनी पसंद की पुष्टि करना;
5. अपनी पसंद पर कार्य करना; तथा
6. समय के साथ बार–बार कार्य करना।

कार्य द्वारा सीख

कार्य द्वारा सीख का सिद्धांत इस दृष्टिकोण से लिया गया है कि मूल्यों के विकास में कार्यान्वयन की प्रक्रिया और विकास, दोनों, शामिल हैं। इसका मतलब यह कि, सोच और भावना से आगे बढ़कर कार्य करना जरूरी है। यह सिद्धांत कुछ सामाजिक अध्ययन शिक्षकों के प्रयासों से संबंधित है, जिन्होंने कक्षा–आधारित सीख के अनुभवों की जगह समुदाय–आधारित सीख पर जोर दिया। कई तरीकों से यह सिद्धांत अन्य चार सिद्धांतों की तुलना में सबसे कम विकसित है। खैर, हाल में हुए कुछ प्रोग्रामों ने इस सिद्धांत द्वारा प्रस्तावित तकनीकों की प्रभावशीलता का प्रदर्शन किया है (उदाहरण के लिए, कॉट्टॉम, 1996; गॉल्ड, 1993; सोलोमन एवं अन्य 1992)।

कार्य द्वारा सीखने के सिद्धांत के समर्थक इस बात पर जोर देते हैं कि छात्रों को अपने मूल्यों के आधार पर कार्य करने के लिए अवसर जरूर मिलने चाहिए। ये मूल्य स्थापना को आत्म–बोध की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जिनमें वे विकल्पों की तुलना करने के बाद स्वतंत्र चुनाव करते हैं और अपने चुनावों के आधार पर कार्य करते हैं। ये कक्षा के अंदर और बाहर किए जाने वाले कार्यों पर अधिक जोर देते हैं।

इनका मानना है कि मूल्यों का स्रोत न समाज और न ही व्यक्ति पर आधारित है बल्कि ये व्यक्ति और समाज के बीच की पारस्परिकता द्वारा पाई जाती हैं, व्यक्ति को उसके संदर्भ के बाहर व्याख्यात नहीं किया जा सकता। आत्म–बोध की प्रक्रिया मूल्य स्पष्टिकरण सिद्धांत के स्थापकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, इनका यह मानना है कि इसे सामाजिक कारकों तथा सामूहिक दबाव द्वारा खंडित किया जा रहा है। इस प्राकर से यह मैसलो (1971) के उच्च स्तर से संबंधित है जिसकी चरचा उनके व्यवसाय के अंतिम दौर के करीब की गई है।

समस्या हल करने और निर्णय लेने का नमूना और उससे संबंधित तकनीकें, जिन्हें इस सिद्धांत की ठोस शुरुआत के लिए प्रयोग किया जा सकता है, हुइट्ट द्वारा प्रस्तावित की गई हैं (1992)–

टिप्पणी

- **इनपुट चरण** : एक समस्या का बोध होने के बाद परिस्थिति या समस्या को समझने का प्रयास किया जाता है।
    1. समस्या की पहचान करने के बाद उनका यथार्थ तथा संक्षिप्त वर्णन करना।
    2. उस मानदंड का कथन करना जिसे संभव विकल्पों के मूल्यांकन के लिए प्रयोग किया जाएगा और चयनित समाधान की प्रभावशीलता बयान करनाय चुने गए विकल्पों की कोई पहचानी हुई सीमाओं, सोचने योग्य महत्वपूर्ण मूल्यों या भावनाओं, या बचे जाने वाले परिणामों का कथन करना।
    3. समस्या के समाधान से प्रासंगिक जानकारी इकट्ठा करना और निर्णय लेना।

    प्रसंस्करण चरण : विकल्प उत्पन्न किए जाते हैं और उनका मूल्यांकन करने के बाद एक समाधान का चयन किया जाता है

    4. विकल्पों या संभव समाधानों का विकास।
    5. उत्पन्न विकल्पों का कथित निर्दिष्ट मानदंड की तुलना में मूल्यांकन।
    6. एक ऐसे समाधान का विकास जो सफलतापूर्वक समस्या सुलझा दे (संभव समस्याओं को समाधानों और इन समस्याओं के निहितार्थ के साथ समझनाय इस बात पर विचार करना कि समाधान के कार्यान्वयन के बाद ज्यादा से ज्यादा क्या बुरा हो सकता हैय व्यापक "भावनाओं" और "मूल्यों" के संबंध में मूल्यांकन करना।
- **आउटपुट चरण** : इसमें समाधान संबंधित योजना और कार्यान्वयन शामिल है।
    7. कार्यान्वयन के लिए योजना का विकास (पर्याप्त रूप से विस्तृत, जिससे सफलतापूर्वक कार्यान्वयन हो सके)।
    8. कार्यान्वयन और सफलता के मूल्यांकन के लिए तरीके और मानदंड स्थापित करना।
    9. समाधान लागू करना।
- **समीक्षा चरण** : समाधान का मूल्यांकन करने के बाद परिवर्तन (यदि आवश्यक) लाए जाते हैं।
    10. समाधान के कार्यान्वयन का मूल्यांकन (निरंतर प्रक्रिया)।
    11. समाधान की प्रभावशीलता का मूल्यांकन।
    12. मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा सुझावित तरीकों के अनुसार समाधान में परिवर्तन।

इस सिद्धांत के अनेक सिखलाई तरीके विश्लेषण और मूल्य स्पष्टिकरण से मिलते हैं। दरअसल, हुइट्ट के नमूने के पहले दो चरण तो तकरीबन, विश्लेषण में प्रयोग किए गए कदमों के समान हैं। कई प्रकार से, सामूहिक संस्थाओं और पारस्परिक संबंधों और कार्य प्रॉजेक्ट के कौशल अभ्यास, कोलबर्ग के तरीकों के समान हैं। "न्यायिक स्कूल"

टिप्पणी

प्रोग्राम, स्कूलों और समुदाय में व्यक्तिगत और सामूहिक ढंग से आपसी संबंध स्थापित करने के अवसर प्रदान करता है (पावर, हिग्गिन्स और कोलबर्ग, 1989)। सबसे महत्वपूर्ण भिन्नता यह है कि कार्य द्वारा सीख का सिद्धांत, नैतिक विकास की पूर्वकल्पित धारणा से शुरु नहीं होता।

अपनी प्रगति जांचिए

5. पियाजे की नैतिक विकास से संबंधित धारणाओं को किसने और अधिक विस्तृत किया?

   (क) फ्रायड (ख) कोलबर्ग

   (ग) स्किनर (घ) एरिकसन

6. कोलबर्ग ने नैतिक विकास के कितने चरण माने हैं?

   (क) पांच (ख) सात

   (ग) तीन (घ) छह

2.5 आधुनिक मूल्य

यहां पर आधुनिक मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा देते हुए श्रम की गरिमा के विषय में बताया जा रहा है। इसके साथ ही राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के विषय में विवेचन किया जा रहा है।

2.5.1 आधुनिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा

अर्थ

नए विचारों और साझे सार्वभौमिक मूल्यों के इस युग में आधुनिक मूल्यों का मतलब है लोगों का एक ऐसे समाज में रहना जहां हर व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व के आधार पर, बिना सवाल जवाब किए, स्वीकृत किया जाता है। ऐसे समाज में लोगों को अपने हिसाब से जीने की आजादी होती है, बशर्ते उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य किसी को मानसिक या शारीरिक तौर पर कोई क्षति न पहुंचाएं। आधुनिक मूल्यों वाले आधुनिक संसार में बहुत चीजें शामिल हैं। इनमें से कुछ का वर्णन निम्नलिखित हैरू

- विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
- सभी के लिए शिक्षा का अधिकार।
- लोगों, संस्कृतियों और जीवन शैली के बीच स्वीकृति।
- भरोसेमंद होना और अपनी बात कहना।
- प्रकृति की देखभाल।
- प्रामाणिक होना और अपने मूल्यों के लिए खड़े रहना।
- हर किसी को सुरक्षित रहने और सुरक्षित जीवन जीने का अधिकार।
- आधुनिक मूल्यों में नवाचार, रचनात्मकता और नई सोच का स्वागत है।

टिप्पणी

परिभाषा

मूल्य की कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं–

लूमीज एवं लूमीज के अनुसार, "मूल्य व्यवहार निर्धारक कारक है।" ("Values are the detrminiants of behavour.")

जॉन जे. कैन के अनुसार, "मूल्य वे आदर्श अवस्थाएं और मानक हैं जो किसी समाज या समाज के अधिकतर लोगों द्वारा अपनाया गया होता है।" ("Values are ideals, belief or norms which society or a large number of society members hold.")

जॉर्ज गीजर के अनुसार, "मूल्य मनुष्य की बलवती इच्छाओं के मध्य चुनाव का परिणाम है।"

गार्डन आलपोर्ट के अनुसार, "मूल्य एक विचारहै, जिस पर व्यक्ति वरीयता से कार्य करता है।"

2.5.2 आधुनिक मूल्य : समता और समानता

सामाजिक निकायों के प्रसंग में समता और समानता, समान लेकिन थोड़े भिन्न सिद्धांतों में संदर्भित है। समानता का सिद्धांत आमतौर पर, समान अवसरों और समाज के प्रत्येक खंड को समान स्तरीय समर्थन प्रदान करता है। निष्पक्षता का सिद्धांत एक कदम आगे बढ़ते हुए, व्यक्ति या लोगों के समूह को उनकी जरूरत के अनुसार सहायता प्रदान करता है जिससे अधिक न्यायसंगत परिणाम पाए जा सकें।

तुलना

	समानता	समता
अर्थ	प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान ढंग से व्यवहार करने का मतलब है समानता; प्रत्येक व्यक्ति को उनकी मापनीय विशेषताओं की गणना के बिना माना जाता है; उनके साथ भिन्न विशेषताओं वालों के समान व्यवहार किया जाता है।	निष्पक्षता का मतलब है कि केवल समर्थनों और अवसरों में ही समता नहीं बल्कि परिणामों में भी समानता।
उदाहरण	सरकार गैस और बिजली पर छूट देती है जो अमीर और गरीब के लिए समान रूप से उपलब्ध है।	सकारात्मक कार्रवाई नीतियां (जैसे कि "आरक्षण" और "कोटा"; कंपनियों द्वारा केवल पुरुषों के बोर्ड का संचालन करने के लिए, जानबूझ कर, एक महिला निदेशक ढूंढना।

समता या समानता?

कई बार हम 'समता' और 'समानता' शब्दों को आपस में बदल कर इनका प्रयोग करते हैं। समता और समानता का एक ही अर्थ होने की गलतफहमी बहुत आम है। लोगों को लगता है कि इन शब्दों को आपस में बदलकर, एक दूसरे की जगह प्रयोग किया जा सकता है, खासकर शिक्षा के संदर्भ में। लेकिन यह सही नहीं है– इन दोनों शब्दों को एक दूसरे की जगह प्रयोग नहीं किया जा सकता। हां इन दोनों शब्दों में काफी समानता है लेकिन, इनके बीच का फर्क बेहद महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

NCERT की पुस्तकों में समता और समानता को विभिन्न संदर्भों में वर्णित किया गया है। इन दोनों के अंतर को निम्न चित्रों के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है।

EQUALITY VERSUS EQUITY

In the first image, it is assumed that everyone will benefit from the same supports. They are being treated equally.

In the second image, individuals are given different supports to make it possible for them to have equal access to the game. They are being treated equitably.

In the third image, all three can see the game without any supports or accommodations because the cause of the inequity was addressed. The systemic barrier has been removed.

पहले चित्र में ऐसा माना जा रहा है कि मौजूद सभी लोगों को समान समर्थन से सहायता मिलेगी। इनके साथ समान तरीके से पेश आया जा रहा है।

दूसरे चित्र में मौजूद व्यक्तियों को भिन्न प्रकार का समर्थन दिया गया है ताकि वे समान ढंग से खेल का आनंद उठा सकें। साथ ही निष्पक्ष व्यवहार किया जा रहा है।

तीसरे चित्र में तीनों लोग, बिना किसी समर्थन या सहारे के, खेल का आनंद उठा रहे हैं क्योंकि अनिष्पक्षता का कारण ही मिटा दिया गया है। व्यवस्थित बाधा को हटा दिया गया है।

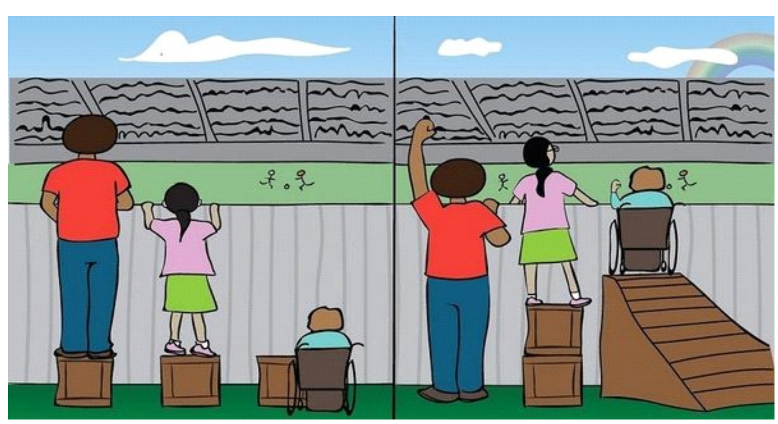

ऊपर दिए गए चित्र में समानता और समता के साथ, अक्षम लोगों की जरूरतों को सम्मिलित करने की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया है।

सकारात्मक कार्य से समता को बढ़ावा मिलता है

केवल समानता नहीं बल्कि समता के लिए प्रयास करने का एक उदाहरण है, सकारात्मक कार्रवाई। सकारात्मक कार्रवाई उन लोगों का स्पष्ट रूप से पक्ष लेने की

नीति है जो भेदभाव द्वारा पीड़ित हैं, विशेष रूप से रोजगार या शिक्षा के संबंध मेंय यह एक प्रकार का सकारात्मक भेदभाव है जिसका उद्देश्य पारंपरिक नकारात्मक भेदभाव के प्रभावों का मुकाबला करना है, जिससे आबादी का एक हिस्सा पीड़ित है।

टिप्पणी

उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय एक सकारात्मक कार्रवाई नीति बना सकते हैं, जिसके अंतर्गत वे वंचित सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के छात्रों की एक निश्चित न्यूनतम संख्या को स्वीकार करने का फैसला करें। भारत में सार्वजनिक विश्वविद्यालयों और सरकारी एजेंसियों की एक सकारात्मक कार्रवाई नीति है जो ऐतिहासिक रूप से अध ीन सामाजिक वर्गों के लोगों के लिए कॉलेजों या नौकरियों में एक निश्चित संख्या में अलग से ष्सीटेंष् आरक्षित करती है।

ये नीतियां समानता के सिद्धांत का उल्लंघन करती हैं। यदि नीति सभी उम्मीदवारों (छात्रों या नौकरी चाहने वालों) के साथ समान व्यवहार करती है, आर्थिक लाभ का उपरोक्त क्रम जारी रहेगा।

समता का मुद्दा

समता को बढ़ावा देने वाली नीतियों के पीछे यह तर्क है कि, आर्थिक और सामाजिक श्रेणी फायदों के आधार पर संग्रह किया जा सकता है और खुदको बनाए रखा जा सकता है। खोज के माध्यम से और खोज के बाद की गई जांच के जरिए, इस बात को व्यापक मान्यता प्राप्त है कि बच्चों का स्कूल में और मानकीकृत परीक्षणों में प्रदर्शन, घर की कमाई और मां के शिक्षा स्तर के साथ, दृढ़ रूप से, सहसंबंधित है।

दृढ़ रूप से "समान" संसार में, जहां ऐसे ऐतिहासिक झुकावों पर गौर नहीं किया जाता, आबादी के सभी खंडों के साथ समान बर्ताव किया जाएगा। और उच्च आमदनी वाले परिवारों के बच्चों का स्कूली प्रदर्शन बेहतर होगा, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें बेहतर कॉलेज में दाखिला मिलेगा और अवश्य रूप से, उनके लिए नौकरी के अवसर भी बेहतर हो जाएंगे, अंत में ये बच्चे अपने साथी, गरीब घरों के बच्चों से अधिक धन कमाएंगे।

2.5.3 व्यक्तिगत अवसर और सामाजिक न्याय

क्या व्यक्तिगत अवसर प्रदान करने वाला समाज आवश्यक रूप से सामाजिक न्याय भी देता है? देखा जाए तो, नहीं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए, एक ऐसे समाज का उदाहरण लेते हैं जिसकी आबादी घरेलू आय (घर में रहने वाले हर व्यस्क भागीदार की, अकेले रहने वाले हर कमाऊ सदस्य की और परिवार के मुखिया के अकेले की आय जोड़कर) दशमांश में बटी है। इस समाज में सामाजिक न्याय की पहचान करो, इस संभवता को ध्यान में रखते हुए कि एक व्यक्ति व्यस्क स्थिति में एक ऐसे घर में रहेगा जिसकी जगह, अपने बचपन की तुलना में, उच्च दशमक स्तर पर होगी, साथ में इस बात के संभवता को भी ध्यान में रखना होगा कि शायद वह निम्न दशमक स्तर पर पहुंच जाए। समाज में, एक व्यक्ति के परिवार का दशमक स्तर उसका, भविष्य में, उसके उच्च या निम्न दशमक स्तर की भविष्यवाणी कर सकता है।

निम्न स्तरीय सामाजिक न्याय इस बात का सूचक हो सकता है कि क्षमता के आधार पर व्यवसाय पाने के विचार का मुख्य रूप से उल्लंघन हुआ है। गरीब घरों के बच्चे, ऊंचे एवं प्रभावशाली नौकरियों के लिए आवेदन भरने के योग्य नहीं होते। यदि

टिप्पणी

योग्य होने पर वे आवेदन दे भी दें तो उनके आवेदन अनदेखे कर दिए जाते हैं। उनका, उनके गुणों के अनुसार मूल्यांकन नहीं किया जाता। सामाजिक न्याय का निम्न स्तर इस बात का भी संकेतक हो सकता है कि समाज, समान अवसर की निष्पक्षता की संतुष्टि की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। एक समाज को समान अवसर न प्रदान करते हुए देखकर कोई खास हैरानी नहीं होगी, बेशक, किसी आधुनिक समाज में पहले ऐसा नहीं किया गया है। लेकिन एक समाज, समान अवसर प्रदान करने के नजदीक हो सकता है या उससे कोसों दूर और सामाजिक न्याय का निम्न स्तर, समाज इस बात का संकेतक है कि समाज समान अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया से बहुत दूर है।

लेकिन जैसा यहां दिखाई देता है, वैसा असल में होना जरूरी नहीं है। हो सकता है कि एक समाज में ऐसा कोई सिद्धांत स्थापित हो जिसके अनुसार व्यक्ति की प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए उसे व्यावसायिक अवसर मिलें जबकि सामाजिक अनुक्रम में उसकी स्थिति उसके जन्म के परिवार के अनुसार स्थापित हो। उसे, उसके परिवार की स्थिति ही वांछनीय प्रतिस्पर्धी पदों के लिए योग्य बनने और उन पर नियुक्त होने के काबिल बनाती है। शायद इससे भी अधिक दिलचस्प संभवता यह है कि एक समाज, समान अवसर प्रदान करने की संभावना संपूर्णतः पूरी करने के बावजूद, बहुत निम्न या न के बराबर सामाजिक न्याय का प्रदर्शन कर सकता है। इसका उदाहरण यह है कि, यह परिदृश्य तब सामने आता है जब समाज का प्रत्येक सदस्य के जन्म के परिवार का दशमक उसके अपने परिवार की आय की संपूर्णतः भविष्यवाणी करता है।

अनेक समकालीन समाजों द्वारा योग्यता के आधार पर व्यवसाय संतुष्टि की ओर निर्विवाद प्रगति की गई है और इसकी तुलना में कुछ अन्य समाज समान अवसर प्रदान करने के लक्ष्य की संतुष्टि की ओर केवल कुछ ही इंच बढ़े हैं। इन समाजों में ऐसे बीज देखे जा सकते हैं जो ऐसे उच्च योग्यतावादी समाज का रूप ले लें, जहां सामाजिक न्याय की कोई जगह न हो।

सामाजिक न्याय

हम सब 'सामाजिक न्याय' शब्दों से अच्छी तरह परिचित हैं, लेकिन हममें से बहुत से लोग इसके इतिहास और महत्व से अपरिचित हैं।

1800 के दौर में, इतालवी जेसुइट लुइगी टप्पारेली डी एजेग्लियो द्वारा, पहली बार, बतौर एक आर्थिक सिद्धांत, इन शब्दों का प्रयोग किया गया था। यूरोप में समाज श्रेणी प्रणाली के कारण असमानता और आर्थिक संकट के चरम स्तर को देखते हुए लुइगी टप्पारेली डीश एजेग्लियो ने, थॉमस ऐक्विनॉस के विचार पर आधारित ये शब्द निकाले थे, सही काम करने के साथ हमें ऐसा काम करने की भी चेष्टा करनी चाहिए जो दूसरों की भलाई के लिए आवश्यक हैं।

आज के समय में सामाजिक न्याय अकसर मानवीय अधिकारों को संदर्भित है। ये ऐसे समूहों के जीवन सुधार का काम करता है जो ऐतिहासिक रूप से, अनेक आधारों पर, उत्पीड़न का सामना करते हैं जैसेकि, जाति, जातीयता, राष्ट्रीयता, लिंग, यौन अभिविन्यास, आयु, धर्म और विकलांगता।

सामाजिक न्याय का लक्ष्य

आम तौर पर, सामाजिक न्याय की खोज करने वाले, लोगों की भलाई में वृद्धि करने हेतु सत्ता का पुनर्वितरण करने की मांग करते हैं। इस काम के लिए ये, स्वास्थ्य देखभाल, न्याय और आर्थिक अवसरों तक समान पहुंच की चेष्टा करते हैं।

टिप्पणी

इसमें कोई संदेह नहीं कि सामाजिक न्याय का काम कार्यकर्ताओं की पहल का अंजाम है लेकिन सक्रिय परिवर्तन लाने के लिए सरकार, गैर–लाभकारी संगठनों सार्वजनिक स्वास्थ्य और नियामक एजेंसियों में कार्यरत सार्वजनिक प्रशासकों का बहुत बड़ा योगदान होता है। ये नीतियां और प्रस्ताव बनाने के लिए जिम्मेदार होते हैं।

सार्वजनिक प्रशासकों का कार्य अकसर, दूसरे कार्यकर्ताओं की तुलना में शांत और कम नाटकीय होता है। सामाजिक न्याय की ओर प्रगति के लिए ध्यानपूर्वक रची हुई नीतियों की आवश्यकता होती है। इनके कुछ सिद्धांत हैं जो इस प्रकार हैं–

पहुंच : साधनों तक पहुंच, सामाजिक न्याय का एक मूलभूत सिद्धांत है। बदकिस्मती से, समाज के अनेक क्षेत्रों में, पहुंच, कई कारकों पर आधारित है जैसेकि सामाजिक–आर्थिक, स्तर, शिक्षा, रोजगार और वातावरण।

निष्पक्षता : निष्पक्षता और समानता में, लोगों को अकसर गलतफहमी हो जाती है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि हर निष्पक्ष चीज हमेशा समान भी हो। समान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दो लोगों द्वारा अलग–अलग तरह की मेहनत लग सकती है। उदाहरण के लिए, कॉलेज में डिग्री हासिल करने के लिए कुछ विद्यार्थियों को दूसरों की तुलना में अधिक परिश्रम करना पड़ सकता है। सामाजिक न्याय पाने और सफलता के लिए समान अवसर हासिल करने के लिए, ऐसे निष्पक्ष संसाधन उपलब्ध करवाना आवश्यक है जो समुदायों की विशिष्ट जरूरतों और उनके बीच रहने वाले व्यक्तियों पर केंद्रित हों।

विविधता : व्यक्तिगत एवं सामूहिक विविधता की पहचान करने के बाद, सार्वजनिक प्रशासकों के पास हर व्यक्ति की जरूरतें पूरी करने योग्य नीतियों के निर्माण हेतु बेहतर प्रबंध होता है। प्रभावशाली होने के लिए, नीति–निर्माताओं को, बाधाएं डालने वाले हर कारक की पहचान करके उसे स्वीकार करना चाहिए। इसके बाद उन्हें इन बाधाओं को पार करने के तरीकों की खोज करनी चाहिए। विविधता को समझते हुए, और सांस्कृतिक भिन्नताओं को अपनाते हुए, हम अवसरों और पहुंच को अधिक विस्तृत बनाते हैं।

भागीदारी : सामाजिक न्याय के अनुसार, व्यक्तियों के पास उन नीतियों के निर्माण में हिस्सा लेने के लिए हमेशा अवसर और मंच उपलब्ध रहना चाहिए जो उनकी भलाई के लिए तैयार की जाती हैं। भिन्न जरूरतों को ध्यान में न रखकर, नेकनीयत सार्वजनिक प्रशासक भी बहिष्करण नीतियां निर्मित कर सकते हैं।

अकसर नीतियों का निर्माण, सरकार में प्रभावशाली स्थानों पर स्थित, गिने चुने लोगों के समूह द्वारा किया जाता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी लोगों के चयन पर ध्यानपूर्वक चिंतन करने पर, सार्वजनिक प्रशासक इस बात से बच सकते हैं। इस काम के लिए ये वकीलों को उन समूहों के प्रतिनिधित्व के लिए आमंत्रित कर सकते

हैं जिन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व उपलब्ध नहीं है और ये इन्हें दीर्घ–कालिक या स्थाई स्थितियां भी प्रदान कर सकते हैं।

टिप्पणी

मानवीय अधिकार : इस चर्चा का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत शायद मानवीय अधिकार है। मानवीय अधिकार, प्रत्येक मनुष्य के लिए अंतर्निहित हैं, सामाजिक–आर्थिक स्तर की परवाह किए बिना। मानवीय अधिकार और सामाजिक न्याय अनिवार्य रूप से एक दूसरे से उलझे हुए हैं। इसलिए, एक के बिना दूसरे को उपलब्ध करना असंभव है। हमारे देश में ये कानूनी तौर पर अभिव्यक्ति, मतदान के अधिकार, आपराधिक न्याय संरक्षण की स्वतंत्रता और अन्य बुनियादी अधिकारों के रूप में देखे जा सकते हैं।

2.5.4 श्रम की गरिमा

श्रम की गरिमा इस तत्वविज्ञान पर आधारित है कि हर प्रकार के काम को समान सम्मान उपलब्ध है और कोई व्यवसाय दूसरे की तुलना में उच्च नहीं है और किसी भी काम के साथ, किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। इस बात की परवाह किए बिना कि काम में शारीरिक ताकत की आवश्यकता है या मानसिक सामर्थ्य की, यह माना जाता है कि हर काम सम्मान के योग्य है। बसावा, शरनस और महात्मा गांधी जैसे सामाजिक सुधारक, श्रम की गरिमा के सिद्धांत के प्रमुख प्रचारक थे।

इसाई नैतिकता में श्रम की गरिमा को एक मुख्य विषय माना जाता है, इसलिए एंज्लिकन कॉम्युनियन, कैथोलिक सामाजिक सिखलाई, मेथोडोस्ट और पुनर्निर्मित धर्मशास्त्र द्वारा भी इसे सही ठहराया गया है।

गांधी जी और श्रम की गरिमा

प्रकृति हमें, हमारी जरूरत की हर चीज उपलब्ध करवाती है। कृषि, व्यापार, उद्योग और शिक्षा जैसी अनेक गतिविधियों द्वारा हम प्रकृति की देन को अपने प्रयोग युक्त वस्तुओं में बदल लेते हैं। इन गतिविधियों का एक आम लक्षण है श्रम, किसी न किसी रूप में। श्रम एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके कारण यह हस्तांतरण संभव हो पाता है। असल में यह हमारे अस्तित्व की कुंजी है। श्रम की विविधता, हमारी जरूरतों की विविधता से मेल खाती है। इसलिए, हर प्रकार का श्रम हमारे लिए, किसी न किसी प्रकार से, महत्वपूर्ण है।

जहां हम में से कुछ लोग, प्रकृति के लौह अयस्क में काम करके इस्पात बनाते हैं, जिससे हमारे उद्योगों का निर्माण होता है, कुछ अन्य लोग पानी, कोयले या तेल में से ऊर्जा का निर्माण करते हैं। हममें से कुछ अन्य लोग खेतों की जुताई करके फसलें उगाते हैं, इसके अलावा कुछ और लोग उन फसलों को आवश्यक भोजन में परिवर्तित करते हैं। आपस में, श्रम का इस प्रकार का वितरण, जीवन जीने में हमारी सहयता करता है। हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि बिना श्रम के और बिना अलग प्रकार के व्यवसायों में संलग्न हुए, हमारा जीवन कैसा होगा।

हालांकि, शुरुआत में, मनुष्य के लिए आवश्यक एवं उपयोगी व्यवसायों को बढ़ावा दिया जाता था और इनका सम्मान भी किया जाता था। लेकिन, समय के साथ, कुछ व्यवसायों के प्रति पक्षपात होने लगा। खास तौर पर ऐसे व्यवसाय जिनमें अधिक

शारीरिक मेहनत लगती थी। इस झुकाव और लोगों के व्यवसाय के आधार पर उनका सामाजिक स्तर तय करने की प्रथा के कारण, समाज में अशांति फैलने लगी। इस प्रकार, जल्द ही, श्रम के वितरण का सिद्धांत, जो समाज के स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी था, एक शाप बनकर रह गया। श्रम के वितरण के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम और कुछ व्यवसायों के विरोध में गहरे पूर्वाग्रह, जातिवाद और अस्पृश्यता का कारण बने। ये प्रथाएं, सदियों से हमारे समाज को घुन की तरह खोखला बना रही हैं। अनेक परोपकारियों और समाज सुधारकों की कोशिशों के कारण, जिन्होंने श्रम की गरिमा को सही ठहराया और भिन्न व्यवसायों के लिए आदर बहाल किया, अधिकतर पूर्वाग्रह आज खत्म हो चुके हैं। खैर, समतावाद और सामाजिक मैत्री के आदर्शों को महसूस करने से पहले, अभी और बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

आधुनिक शिक्षा के कारण लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया, जो श्रम की गरिमा पुनरस्थापित करने में सहायक साबित हुई। शायद, महात्मा गांधी के जीवन को आधुनिक शिक्षा के सामुदायिक जीवन की क्रांति के योगदान का एक प्ररूपी नमूना कहा जा सकता है। वैसे तो गांधीजी का जन्म एक पारंपरिक, रूढ़िवादी हिंदू परिवार में हुआ था। बड़े होने के बाद वे एक सफल वकील बने। बाहरी संसार में मिले उनके संसर्ग ने उनके मन में सभी प्रकार के व्यवसायों के लिए सम्मान स्थापित किया। गांधीजी का उदाहरण इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि दूसरों के विपरीत, उन्होंने उन मूल्यों का पालन किया जिनका उन्होंने प्रचार किया। वे अपना शौचालय स्वयं साफ किया करते थे, जो उस समय, महतरों का काम माना जाता था। उनके इस कार्य से महतरों के काम को सम्मान प्राप्त हुआ। वे अपनी इच्छा से, खेतों में नौकरों का काम किया करते थे। जेल में अपने समय के दौरान उन्होंने मोची का काम सीखा। उन्होंने कताई के काम को इतना ग्लैमराइज किया कि सभी वर्गों और श्रेणियों के लोग अपने जीवन में यह काम करने लगे। गांधी जी द्वारा सभी व्यवसायों को दिया गया समान सम्मान और उनकी हर काम सीखने और करने की इच्छा के कारण उन्हें दक्षिण अफ्रीका और भारत में आत्म–निर्भर समुदाय स्थापित करने में मदद मिली। आज तक, इन समुदायों के सदस्य श्रम की गरिमा का आदर करते हैं और अपना सारा काम स्वयं करते हैं, किसी और पर निर्भर हुए बिना।

इस प्रकार, श्रम के प्रति आदर और उसका सम्मान निश्चित करने से हमें स्वतंत्रता का अहसास होता है। यदि श्रम की गरिमा का समुदाय के प्रत्येक सदस्य द्वारा पोषण किया जाए तो उनमें स्वस्थ संबंध स्थापित हो सकते हैं, जिससे समुदाय की ताकत में वृद्धि होगी।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर और श्रम की गरिमा

अम्बेडकर द्वारा इस तर्क का प्रस्ताव रखा गया कि 1928 की मार ने दलित कार्यकर्ताओं को ऋणग्रस्तता और अत्यधिक आक्रोश की ओर धकेल दिया था। इसके अतिरिक्त, गैर–दलित कार्यकर्ताओं के विपरीत, दलितों के पास लंबी हड़तालों के दौरान, निर्भर करने के लिए खेत नहीं थे। यही कारण था कि दलित अभी एक लंबी हड़ताल पर जाने की स्थिति में नहीं थे। अम्बेडकर ने 1934 की बॉम्बे हड़ताल का भी विरोध किया था, हड़ताल का आयोजन कम्युनिस्टों द्वारा, समान कारणों के चलते करवाया गया था।

टिप्पणी

अम्बेडकर द्वारा 1936 में स्वतंत्र श्रम पार्टी की स्थापना की गई थी। इसके पीछे उनका मकसद था, श्रमिक वर्ग के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना। 1937 में अपनी सफलता के बाद, पार्टी, 1938 के औद्योगिक विवाद अधिनियम का विरोध करने में सबसे आगे रही।

जहां कम्युनिस्ट के नेतृत्व वाली श्रम राजनीति, शहरी फैक्ट्री–आधारित थी, अम्बेडकर ने महार वतन के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया और जाति–आधारित व्यावसायिक व्यवस्था को ललकारा। पात्रता के बदले महारों को व्यापक और शोषणकारी अनिवार्य सेवाएं प्रदान करनी पड़ीं। अम्बेडकर का यह कहना था कि अस्पृश्यता के विरुद्ध आंदोलन तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक इन संरचनाओं के विरुद्ध लड़ाई न लड़ी जाए। 1928 में, अम्बेडकर द्वारा बॉम्बे विधान परिषद में महार वतन समाप्त करने के लिए एक अधिनियम प्रस्तुत किया गया।

अम्बेडकर के नजदीकी सहकर्मी ए वी चित्रे ने षेतकारी संघ की स्थापना की, जो खोटी प्रथा स्माप्त करने के समर्थन में खड़ा हुआ। खोटी प्रथा, एक प्रकार की भू–राजस्व व्यवस्था थी जो कोंकण क्षेत्र में प्रचलित थी। इस प्रथा के चलते छोटे और सीमांत किसानों का शोषण होता था और गोरी सरकार को चार गुना कर उपलब्ध करवाने के लिए जबरन श्रम करवाया जाता था। 1920 के दशक के शुरुआती हिस्से में अम्बेडकर द्वारा खोटी प्रणाली के विरुद्ध आंदोलन और सम्मेलन किए गए। प्रांतीय विधाना सभाओं में, कृषि काश्तकारों की दासता के उन्मूलन के लिए विधेयक की पेशकश करने वाले अम्बेडकर पहले विधायक थे।

2.5.5 आलोचनात्मक बहुसंस्कृतिवाद एवं लोकतांत्रिक शिक्षा

वैसे तो, बहुसांस्कृतिक शिक्षा की अकसर एक अखंड इकाई के रूप में चर्चा की जाती है, दरअसल, इस शीर्ष में सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि की बहुलता शामिल है, जो परस्पर–विरोधी भी हो सकती है। साहित्य की व्यापक समीक्षा के बाद, क्रिस्टीन स्लीपर और कार्ल ग्रांट (1988) ने, उपलब्ध दृष्टिकोणों को निम्नलिखित पांच समूहों में बांटा– (1) असाधारण और सांस्कृतिक रूप से भिन्न शिक्षण; (2) मानवीय संबंध; (3) एकल–समूह अध्ययन; (4) बहुसांस्कृतिक शिक्षा; (5) बहुसांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्निर्माणवादी शिक्षा।

यह अध्याय इन मौजूदा नमूनों के पहले चार का ऐसा संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करता है जो इन्हें महत्वपूर्ण बहुसांस्कृतिक होने की नजदीकी देता है।

असाधारण और सांस्कृतिक रूप से भिन्न शिक्षण

असाधारण और सांस्कृतिक रूप से भिन्न शिक्षण के समर्थक भिन्न संस्कृतियों से संबंधित छात्रों की सहायता करने से संबंधित हैं, इनमें विकलांग भी शामिल हैं, ताकि वे समाज एवं सार्वजनिक स्कूल की मुख्यधारा मांगों के अनुकूल बन सकें। इस सिद्धांत का चरम लक्ष्य है कमियों को दूर करना या "छात्रों एवं स्कूलों के बीच पुल बनाना" (स्लीटर एवं ग्रांट, 1988)।

छात्रों की पृष्ठभूमि के साथ सांस्कृतिक रूप से संगत शैक्षिक सिद्धांतों का प्रयोग करके, असाधारण और सांस्कृतिक रूप से भिन्न शिक्षण प्रदान करने के पीछे, "छात्रों

टिप्पणी

के पास पहले से मौजूद ज्ञान और कौशल पर आधारित, पारंपरिक स्कूली ज्ञान के अधिक प्रभावशाली ढंग से शिक्षण" का इरादा छिपा है (स्लीटर एवं ग्रांट, 1988)। बतौर एक उपचार प्रक्रिया, इस दायरे में काम करने वाले शिक्षक छात्रों के पास मौजूद जानकारी, कौशल, सीखने की शैली, भाषाओं (इनमें संक्रमणकालीन द्विभाषी शिक्षा का कार्यान्वयन शामिल हो सकता है) का प्रयोग करते हैं, इसके साथ ये रचनात्मक शिक्षण शैली भी अपनाते हैं, केवल उस स्तर तक जहां तक ये इन छात्रों को एक सामान्य कक्षा में सुखद अनुभव का अहसास नहीं देते। छात्रों की पृष्ठभूमि की यह जानकारी प्राप्त करने के पीछे अधिक पारंपरिक स्कूल सामग्री विस्थापित करना या बदलने का इरादा नहीं होता। हालांकि यह बहुसांस्कृतिक दर्शन लोगों को अपनी देशी संस्कृतियां और भाषाएं बरकार रखने के लिए प्रत्यक्ष रूप से हतोतसाहित नहीं करता। बाहरी परिस्थितियों में माता–पिताध्देखभाल करने वालों से स्कूल के एजेंडा के समर्थन की अपेक्षा अवश्य रखी जाती है।

मानवीय संबंध

बहुसंस्कृतिवाद के इस सिद्धांत का मुख्य लक्ष्य है, रूढ़िबद्ध धारणाओं को खत्म करके और सहनशीलता एवं एकता को बढ़ावा देकर, स्कूलों में भिन्न समूहों के बीच सकारात्मक संबंधों का प्रोत्साहन करना। विविधता के प्रति यह प्रशंसक भाव, के साथ, सामान्य बंधन मौजूदा सामाजिक संरचनओं के भीतर सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देता है। इसका सभी स्कूलों में कार्यान्वयन का इरादा है (स्लीटर एवं ग्रांट के अनुसार (1988))।

बहुसांस्कृतिक शिक्षा

बहुसांस्कृतिक शिक्षा के समर्थक, व्यवहार पैटर्न, साक्षरता अभ्यास, ज्ञान के निकाय, भाषा के उपयोग और संज्ञानात्मक कौशल की सामाजिक–सांस्कृतिक प्रकृति की सराहना करते हैं। ये शिक्षक, सांस्कृतिक तौर पर संगत शिक्षण के प्रकारों की मांग करते हैं, जिनसे शिक्षकों की शिक्षण शैली, जरूरतों, और वास्तविकताओं का निर्माण हो सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, इस नमूने के भीतर संकाय और कर्मचारियों के भीतर विविधता लाने की बात की गई है ताकि छात्रों और उनके समुदायों को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित किया जा सके।

बहुसांस्कृतिक शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है, न केवल पाठ्यक्रम और व्यक्तियों के व्यवहार को बदलना बल्कि सम्पूर्ण अकादमिक वातावरण में बदलाव लाना।

निष्कर्ष

बहुसांस्कृतिक शिक्षा के एक अखंड इकाई होने की आम गलत धारणाओं के विपरीत, इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाला व्यापक साहित्य और स्थितियां न केवल विभिन्न सैद्धांतिक शिविरों का वजूद और भिन्नताएं दर्शाते हैं, बल्कि इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि इससे कोई सामान्य परिभाषा भी नहीं जोड़ी जा सकती (लीस्टिना और वुड्रम, 1996)। ऐसी शैक्षिक कोशिशों को नाम देने वाले वैचारिक वर्णनकर्ताओं में बहुत अंतर है– पाउलो फ्रेयर (1970) इस प्रकार की शिक्षा को 'महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्र' के रूप में संदर्भित करते हैंय हेनरी गिरौक्स (1994ए) अकसर 'विद्रोही बहुसंस्कृतिवाद' शीर्षक का

उपयोग करते हैं; पीटर मैकलारेन (1994) 'महत्वपूर्ण और प्रतिरोध बहुसंस्कृतिवाद' या 'क्रांतिकारी बहुसंस्कृतिवाद' शब्दों का उपयोग करना पसंद करते हैं; बेल हुक (1994) 'संलग्न' या 'संक्रमणकारी शिक्षाशास्त्र' के विचार को अपनाते हैं।

टिप्पणी

महत्वपूर्ण बहुसंस्कृतिवाद का वर्णन करने के लिए प्रयोग किए गए अनेक नामों के बावजूद, बहुत से महत्वपूर्ण सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि और अभ्यास हैं जो इन विभिन्न अवधारणाओं के हर पहलू में बुने जाते हैं, जो अक्सर मुद्दों और शर्तों के एक सामान्य समूह से विकसित होते हैं, जो राजनीतिक संघर्ष के बदलते क्षेत्रों के भीतर महत्वपूर्ण शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इन बुनियादी सिद्धांतों और कई महत्वपूर्ण सामाजिक सिद्धांतकारों की आवाज के माध्यम से, स्लीपर एवं ग्रांट (1988) के प्रकार के दृष्टिकोण का विश्लेषण किया जाएगा। लेकिन इससे पहले, महत्वपूर्ण बहुसंस्कृतिवाद द्वारा पारंपरिक स्कूली शिक्षा की नामंजूरी को प्रस्तुत करना आवश्यक है।

लोकतांत्रिक शिक्षा

लोकतंत्र, विद्रोह की वह आवाज है जो निरंकुशता, जबरदस्ती, आरोपण और मनमाने अधिकार जो कमजोरों के शक्तिशाली द्वारा शोषण के खिलाफ उठाई जाती है। लोकतंत्र एक वर्तमान अवधारणा है जिसने राजनीतिक लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र और शैक्षिक लोकतंत्र जैसे विभिन्न रूप धारण किए हैं। शिक्षा में लोकतंत्र एक हालिया विचार है और यह हमारे शिक्षण संस्थानों में प्रचलित शिक्षण विधियों के प्रशासन, अनुशासन और पर्यवेक्षण में निरंकुश और अधिनायकवादी प्रथाओं की निरंतरता के विपरीत है।

लोकतंत्र और शिक्षा के विभिन्न पहलू

1. भारत के विशेष संदर्भ में लोकतंत्र और शिक्षा के उद्देश्य

(क) लोकतांत्रिक नागरिकता का विकासः माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि लोकतांत्रिक नागरिकता के विकास के लिए शिक्षा को निम्नलिखित गुणों के विकास पर कार्य चाहिए—

- शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए, स्पष्ट सोच और विचारों की ग्रहणशीलता की क्षमता विकसित करना।
- इसके द्वारा मुक्त चर्चा, अनुनय और विचारों के शांतिपूर्ण आदान—प्रदान के लिए भाषण और लेखन में स्पष्टता विकसित होनी चाहिए।
- शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को दूसरों के साथ रहना सीखना चाहिए। यह गुण अनुशासन, सहयोग, सामाजिक संवेदनशीलता और सहिष्णुता के माध्यम से विकसित किया जा सकता है।
- शिक्षा द्वारा देशभक्ति की भावना के विकास को बढ़ावा मिलना चाहिए।
- शिक्षा द्वारा विश्व नागरिकता की भावना विकसित होनी चाहिए।

(ख) व्यावसायिक दक्षता में सुधार

- हमें विद्यार्थियों के मन में कार्य के प्रति एक नया दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए। एक दृष्टिकोण, जिसका अर्थ है सभी कार्यों की गरिमा की सराहना, करना, मगर, धीरे धीरे।

- कार्य के नए दृष्टिकोण के विकास के साथ शिक्षा के सभी चरणों में तकनीकी कौशल और दक्षता को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

(ग) व्यक्तित्व का विकास : यह निम्न तरीके से प्राप्त किया जा सकता है–

टिप्पणी

- छात्रों में रचनात्मक ऊर्जा के स्रोतों को बढ़ावा देना ताकि वे अपनी सांस्कृतिक विरासत की सराहना कर सकें।
- समृद्ध दिलस्चस्पियों को बढ़ावा देना, जिन पर छात्र अपने खाली समय में कौशल प्राप्त कर सकें जो, बाद में इस विरासत में योगदान दे।
- कला, शिल्प, संगीत, नृत्य आदि विषयों को सम्मान का स्थान देना।
- नेतृत्व के लिए गुणों का विकास।

2. लोकतंत्र और पाठ्यक्रम : लोकतांत्रिक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए हर स्तर पर पाठ्यक्रम में भारी बदलाव लाने की जरूरत है। इस कार्य के लिए निम्न सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए–

- इसका आधार व्यापक होना चाहिए। इसमें उन सभी अनुभवों की समग्रता शामिल होनी चाहिए जो एक बच्चा स्कूल, कक्षा, पुस्तकालय आदि में प्राप्त करता है। इसमें पाठ्य सहगामी गतिविधियां– खेल गतिविधियां, कक्षा प्रक्रिया और परीक्षा प्रणाली शामिल होनी चाहिए।
- इसमें विविधता और लचीलापन होना चाहिए, नियमबद्ध और कठोर नहीं होना चाहिए।
- इसे समुदाय की जरूरतों से सम्पूर्णतः संबंधित होना चाहिए और इसे स्थानीय संसाधनों का पूरा उपयोग करना चाहिए।
- पाठ्यक्रम में व्यावसायिक पूर्वाग्रह भी होना चाहिए। इसे सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए।
- पाठ्यक्रम को एकीकृत और सहसंबद्ध करने की आवश्यकता है।

3. लोकतंत्र और शिक्षण के तरीके : मोंटेसरी विधि, परियोजना विधि, डाल्टन योजना, अनुमानी विधि, प्रयोगशाला पद्धति, या प्रयोगात्मक विधि, सामाजिक तकनीक, सेमिनार, संगोष्ठी, चर्चाएं, सभी, लोकतांत्रिक प्रवृत्ति पर आधारित हैं। लोकतांत्रिक तरीके व्यक्तिगत मतभेदों के साथ–साथ समाज की जरूरतों पर भी ध्यान देते हैं। ये सहयोग को प्रोत्साहित करते हैं और स्वतंत्र सोच के साथ समूह चर्चा के लिए व्यक्ति को प्रशिक्षित करते हैं।

4. लोकतांत्रिक अनुशासन : प्रेम, सहानुभूति, सहयोग और मानवीय संबंधों पर आधारित स्वतंत्र और सकारात्मक अनुशासन है। स्कूलों में छात्र संघ, छात्र समिति, परामर्श समिति, संसद जैसी स्वशासी इकाइयां बनाई जानी चाहिए। इससे आत्म–अनुशासन स्थापित होता है, जो लोकतांत्रिक जीवन का मूल है।

5. लोकतंत्र और शिक्षक : असली लोकतांत्रिक व्यवस्था में, एक शिक्षक एक अत्याचारी के बजाय एक मित्र, दार्शनिक, मंच सेटर, सहानुभूतिपूर्ण मार्गदर्शक या सतर्क

टिप्पणी

पर्यवेक्षक की भूमिका निभाता है। उसके समाज के साथ रचनात्मक संबंध होने चाहिए और उसे लोकतांत्रिक तरीके से जीवन जीने के तरीके का समर्थन करना चाहिए। उसका आचरण उसके उपदेश के अनुकूल होना चाहिए और उसे स्वयं अत्यधिक आत्म–अनुशासन का प्रदर्शन करना है। उसे विभिन्न लोकतांत्रिक सिद्धांतों को वास्तविक व्यवहार में लाना चाहिए।

6. लोकतंत्र और स्कूल प्रशासन

- लोकतांत्रिक स्कूल प्रशासन में शिक्षकों को स्कूल की नीति बनाने, पाठ्यक्रम तैयार करने और स्कूल से संबंधित अन्य मामलों में अधिकार दिए जाते हैं।
- लोकतांत्रिक प्रशासन में शिक्षकों को शिक्षण, अध्ययन और अनुसंधान आदि के तरीकों के चयन में अधिक स्वतंत्रता दी जाती है।
- सहयोग और भाईचारा शिक्षकों और छात्रों के बीचय शिक्षकों और स्कूल के प्रशासकों या आयोजकों के बीचय विश्वविद्यालय के वाइस–चांसलर और शिक्षकों आदि के बीच संबंधों का आधार बनता है।

2.5.6 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और शिक्षा के साथ उनका अंतर्संबंध

टैगोर और कृष्णमूर्ति, इन दो प्रख्यात भारतीय शैक्षिक दार्शनिकों के दृष्टिकोण पर आधारित राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को इस प्रकार से समझा जा सकता है।

राष्ट्रवादः अर्थ और सिद्धांत

राष्ट्रवाद और वैश्वीकरण को अकसर सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक इतिहास में विपरीत ध्रुवों की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया माना जाता है, लेकिन वास्तव में उनके बीच का संबंध कहीं अधिक जटिल रहा है, और ऐसा कहा जा सकता है कि पिछली डेढ़ सदी में उन्होंने एक साथ मिलकर काम किया है। राष्ट्रवाद का जन्म, पश्चिमी यूरोप में सोलहवीं शताब्दी के देश में हुआ– जिसका नाम है इंग्लैंड। इसका उद्भव 'इतिहास में यूरोपीय युग' के उदय के साथ हुआ, पश्चिमी यूरोप का उदय, विशेष रूप से, और पश्चिमी यूरोपीय मूल के समाज, आर्थिक, राजनीतिक और कुछ हद तक पूरी दुनिया के सांस्कृतिक नेतृत्व की स्थिति में।

यह एक ऐसे क्षेत्र में उभरा, जो पश्चिमी ईसाई धर्म द्वारा सांस्कृतिक रूप से एकीकृत था, जो स्वतंत्र रूप से राष्ट्रवाद से स्वतंत्र था, और इतिहास में पहली बार इतने व्यापक पैमाने पर, पहले से ही अन्य महाद्वीपों को अपने अधीन करना शुः कर चुका था, जिससे सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुः हुई। इस वैश्वीकरण की दुनिया के केंद्र में स्पेन था, जिसने हैब्सबर्ग क्राउन के राजनीतिक अधिकार के तहत यूरोपीय 'पवित्र रोमन' साम्राज्य और दक्षिण और मध्य अमेरिका में विशाल क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया 'त्रिकोणीय व्यापार' में आर्थिक रूप से यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका को एकजुट किया और रोमन कैथोलिक धर्म के प्रसार के मिशन के लिए खुद को समर्पित कर दिया। इतने स्तरों पर दुनिया फिर कभी एक प्रणाली में

टिप्पणी

एकीकृत नहीं होगी, यानी इतने अर्थपूर्ण ढंग से, लेकिन चाहे कितना भी गहरा सही, वैश्वीकरण के इस पहले प्रयास की सफलता अल्पकालिक थी।

रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा राष्ट्रवाद का एक उद्धरण इस बात को और ज्यादा स्पष्ट करता है "हां, यह एक राष्ट्र का तर्क है। और यह सत्य और अच्छाई की आवाज कभी नहीं सुनेगा। यह नैतिक भ्रष्टाचार के अपने चक्र–नृत्य में जारी रहेगा, इस्पात को इस्पात और मशीन को मशीन से जोड़ता हुआय सरल विश्वास के मीठे फूलों और मनुष्य के जीवित आदर्शों को अपने पैरों तले रौंदता हुआ।"

सार्वभौमिकता का सिद्धांत

सार्वभौमिकता, एक सार्वभौमिक, उद्देश्य या शाश्वत सत्य के अस्तित्व में एक विचार या विश्वास है, यह सब कुछ निर्धारित करता है, इसलिए, यह हर व्यक्ति में समान रूप से मौजूद होता है और होना भी चाहिए।

सार्वभौमिकता वह दार्शनिक सिद्धांत है जो सार्वभौमिक रूप से निर्विवाद सिद्धांतों के अस्तित्व की पुष्टि करता है, और उन्हें सच बताता है, इसलिए इन्हें प्रत्येक व्यक्ति तथा हर सांस्कृतिक समूह द्वारा, बतौर एक मार्गदर्शक अपनाया जाना चाहिए, जो सही और गलत काम में फर्क करना सिखा सके। धार्मिक स्तर पर, प्रत्येक धर्म केवल अपने विश्वासों की पहचान करवाने और उन्हें सच ठहराने की कोशिश करता है।

धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत

भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने यह बहुत स्पष्ट रूप से देखा कि भारत के धर्मनिरपेक्ष बनने का मतलब यह नहीं था कि वह किसी धर्म के विरुद्ध है। उनका कहना था, "कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि क्योंकि हम एक धर्मनिरपेक्ष राज्य हैं, हम धर्म या आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास नहीं करते हैं। ऐसा होना तो दूर, इसका वास्तव में मतलब है कि इस देश में सभी अपनी पसंद के धर्म को मानने या उसका प्रचार करने के लिए स्वतंत्र हैं और हम सभी धर्मों की भलाई की कामना करते हैं और चाहते हैं कि वे बिना किसी बाधा के अपने तरीके से विकसित हों।" जवाहरलाल नेहरू ने हमारे राज्य की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति की व्याख्या इस प्रकार की, "इसका मतलब है कि जहां धर्म पूरी तरह स्वतंत्र हैं, राज्य अपने व्यापक रूप में विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों को बसा कर, सब को सुरक्षा और अवसर प्रदान करता है और इस प्रकार सहिष्णुता और सहयोग का माहौल बनाता है।"

भारत में धर्मनिरपेक्षता के लिए शिक्षा

निम्नलिखित लक्षण भारत में धर्मनिरपेक्षता के लिए शिक्षा की विशेषता बताते हैं–

- धर्मनिरपेक्ष उद्देश्य
- शैक्षणिक संस्थानों का लोकतांत्रिक संगठन
- विभिन्न पाठ्यक्रम
- विज्ञान शिक्षण
- प्रबुद्ध शिक्षक

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली देश में एक सामाजिक माहौल बनाने की कोशिश कर रही है, जिसमें धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को प्रभावी ढंग से और उत्साहपूर्वक बढ़ावा देने की कोशिश की जाती है।

धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने के संबंध में संवैधानिक प्रावधान–

- अनुच्छेद 28(1) में कहा गया है कि पूरी तरह से राज्य की निधि से संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में कोई धार्मिक निर्देश नहीं दिया जाएगा।
- राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले किसी भी शैक्षणिक संस्थान में भाग लेने वाले किसी भी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना किसी भी धार्मिक निर्देश में भाग लेने की आवश्यकता नहीं होगी। नाबालिग के मामले में, उसके अभिभावक की सहमति की आवश्यकता है।

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रदान करने का कारण

1. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा एक नैतिक दृष्टिकोण विकसित करती है।
2. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा उदार दृष्टिकोण और मूल्यों के विकास में मदद करती है।
3. यह व्यापक दृष्टि विकसित करता है।
4. यह दूसरों के दृष्टिकोण को समझने और उसकी सराहना करने की समझ प्रदान करती है।
5. यह लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करती है।
6. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का संश्लेषण करती है।
7. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा धार्मिक कट्टरता और घृणा के प्रति एक विषहर औषध के रूप में कार्य करती है।

भारत जैसे बहुधार्मिक देश में, राष्ट्र की एकता और अखंडता बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता की भावना का विकास करना आवश्यक है। एक धर्मनिरपेक्ष समाज और उद्देश्यपूर्ण जीवन के लिए लोगों को तैयार करने में, शिक्षा को सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। हमें उम्मीद है कि जब संस्थागत धर्मों की, धीरे–धीरे युवा पीढ़ियों अपनी जबरदस्त पकड़ कम होने के बाद, धर्मनिरपेक्षता भारत की सामाजिक एकता के लिए एक मजबूत ताकत के रूप में विकसित होगी।

शैक्षिक निहितार्थ

देश में धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। संविधान में यह निर्धारित किया गया है कि धार्मिक अल्पसंख्यक, उन्हें प्राप्त अनुदान का प्रयोग करके अपने शिक्षण संस्थान स्थापित करने के लिए स्वतंत्र हैं। धर्मनिरपेक्षता नैतिक शिक्षा का दर्शन है। स्कूल में धर्मनिरपेक्ष व्यवहार, स्कूल के प्रभाव से, स्वयं शिक्षकों के आचरण और व्यवहार और पूरे स्कूल समुदाय में जीवन के माध्यम से पैदा होता है। स्कूल की सभी गतिविधियों और कार्यक्रमों को प्रेम, सच्चाई और सहनशीलता के मूल्यों के समावेश के लिए प्रयास करना चाहिए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. वह कौन सा सिद्धांत है जो समान अवसरों और समाज के प्रत्येक खंड को समान स्तरीय समर्थन प्रदान करता है?
   (क) समानता का सिद्धांत (ख) श्रम सिद्धांत
   (ग) निष्पक्षता का सिद्धांत (घ) सांस्कृतिक सिद्धांत
8. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा स्वतंत्र श्रम पार्टी की स्थापना कब की गई?
   (क) 1920 में (ख) 1950 में
   (ग) 1936 में (घ) 1952 में

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)
7. (क)
8. (ग)

2.7 सारांश

आमतौर पर मूल्यों का मतलब नैतिक विचार, संसार के प्रति सामान्य धारणाएं या झुकाव अथवा साधारण रुचियां, रवैये, प्राथमिकताएं, आवश्यकताएं, भावनाएं और प्रवृत्तियां समझा जाता है। लेकिन समाजशास्त्री इन शब्दों का इस्तेमाल अधिक यथार्थपूर्ण ढंग से करते हैं जिसका मतलब है, "वह सान्यीकृत अंत जिसमें सहीपन, अच्छाई या अंतर्निहित वांछनीयता का अर्थ शामिल हो।"

यह एक संस्कृति के सदस्यों के बीच, अच्छे या बुरे तथा वांछनीय या अवांछनीय चीजों का महत्वपूर्ण तथा दीर्घकालिक विश्वासों या आदर्शों का समूह है। इसका मनुष्य के व्यवहार तथा रवैये पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और यह सभी परिस्थितियों में व्यापक दिशानिर्देशकों का काम करता है। दरअसल, मूल्य इन बुनियादी विश्वासों का प्रतिनिधित्व करते हैं कि, व्यवहार का एक विशिष्ट तरीका या अस्तित्व की एक अंतावस्था, एक विपरीत रवैये के तरीके या अस्तित्व की अंतावस्था की तुलना में निजी या सामाजिक तौर पर बेहतर है।

हमारे व्यक्तिगत मूल्य, हमारे समाज के मूल्यों में अंतर्निहित हैं। हम अपने माता–पिता और शिक्षकों के मूल्यों को और मीडिया में दर्शाए गए मूल्यों को अपनाकर

टिप्पणी

अपने जीवन की शुरुआत करते हैं। कानून, शिष्टाचार, यहां तक कि धार्मिक मान्यताएं सभी सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हैं। लेकिन सामाजिक मूल्यों का विकास होता रहता है। स्त्रियों की स्थिति इस बात का एक मुख्य उदाहरण है। पिछले 100 वर्षों में सामाजिक मूल्यों में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। खास कर स्त्रियों (और पुरुषों) द्वारा खुदको देखने और अपना मूल्य समझने के नजरिए में तो आज बहुत बड़ा अंतर है। व्यक्तिगत मूल्य (इस मामले में, स्वतंत्रता और बराबरी का व्यक्तिगत मूल्य) समाज के मूल्यों में बदलाव लाते हैं और आगे, सामाजिक बदलाव इस प्रकार व्यक्तिगत मूल्यों को प्रभावित करते हैं जिससे देश के लोग अब पुरुषों और स्त्रियों की बराबरी को एक केंद्रीय मूल्य समझते हैं। व्यक्तिगत मूल्य, हमारे आस–पास के मूल्यों से अलग हो सकते हैं – शायद इसलिए क्योंकि हम अलग पृष्ठभूमि से हैं, इसका एक और कारण हो सकता है कि हमारी रुचि अलग है या क्योंकि हम समझ बूझ कर विकल्प लेते हैं।

हम स्थिर अर्थव्यवस्थाओं और अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी समाजों के साथ अधिक टिकाऊ संसार स्थापित करना चाहते हैं। यह लक्ष्य मुश्किल तो है लेकिन नामुमकिन नहीं, अगर हमें सरकार, संस्थाओं, व्यापारों और सबसे अधिक जिम्मेदार वचनबद्ध जनता का साथ मिल जाए। मूल्य शिक्षा एकता, सद्भावना और प्रकृति से प्यार को बढ़ावा देती है।

मूल्य शिक्षा का सिद्धांत उस शिक्षा प्रणाली के बारे में है जो अधिक शिष्ट व लोकतांत्रिक समाज बनाने से संबंधित है। इस प्रकार, मूल्य शिक्षा हमारे राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मतभेदों से परे, मानवाधिकारों की रक्षा, जातीय अल्पसंख्यकों और सबसे कमजोर समूहों की सुरक्षा, और पर्यावरण के संरक्षण पर विशेष महत्व देते हुए, सहनशीलता व समझदारी को बढ़ावा देती है। मूल्य शिक्षा केवल स्कूलों की नहीं बल्कि हम सबली जिम्मेदारी है। उदाहरण के लिए, परिवार, विश्वविद्यालय, व्यवसाय और खेल, सभी, नैतिक सिद्धांतों की शिक्षा के लिए आदर्श संदर्भ हैं। यहां तक कि, ऑस्ट्रेलिया और यूके जैसे देश कई वर्षों से मूल्य शिक्षा को अनिवार्य शिक्षा का एक हिस्सा बनाना चाहते हैं।

नैतिक मूल्यों का होना बिल्कुल वैसा होता है जैसे किसी इमारत की दृढ़ नींव, यदि एक पेड़ की जड़े स्वस्थ और मजबूत होंगी तो उसके पत्ते और उसकी शाखाएं भी स्वस्थ बनेंगी। एक प्रसिद्ध कहावत है, "यदि धन खोया तो कुछ न खोया, यदि स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोयाय यदि चरित्र खोया तो सब कुछ खोया"। इसी कारण बहुत से स्कूलों में नैतिक विज्ञान का विषय पढ़ाया जाता है ताकि नैतिक सीख को आज के आधुनिक बच्चों में बांटा जा सके। एक ठोस नैतिक आधार तैयार करना, आज के जमाने की सबसे बड़ी चुनौती है, और दिन प्रतिदिन अधिक मुश्किल होता जा रहा है।

नैतिक शिक्षा का मतलब है ऐसी शिक्षा जो हमारी, जीवन में, सही रास्ता चुनने में सहायता करती है। इसमें कुछ मूलभूत सिद्धांत शामिल हैं, जैसेकि, सच्चाई, ईमानदारी, दान, सत्कार, सहनशीलता, प्रेम, दया और सहानुभूतिद्य नैतिक शिक्षा पाने पर व्यक्ति उत्तम बन जाता है। इस शिक्षा का लक्ष्य केवल एक डिग्री हासिल करना नहीं है, बल्कि इसमें आवश्यक, मूल्य आधारित सीख शामिल है जिसका परिणाम है चरित्र का निर्माण और समाज का सुधार।

मूल्य शिक्षा को सीख के दृष्टिकोण से जांचने वाले ज्यादातर शिक्षक, मूल्यों को सामाजिक या सांस्कृतिक तौर पर स्वीकृत नियमों या मानकों के रूप में देखते हैं। इसलिए मूल्यों को ऐसी प्रक्रिया समझा जाता है जिसमें एक विद्यार्थी, समाज में महत्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा स्थापित मानकों या नियमों को स्वीकृत करके उन्हें पहचान प्रदान करता है। विद्यार्थी इन मूल्यों को अपनी मूल्य प्रणाली में शामिल करता है। ये शिक्षक मानव प्रकृति को उसी तरीके से देखते हैं जिस प्रकार उससे मूल्य शिक्षा प्रक्रिया के समय काल के दौरान व्यवहार किया जाता है। ये उसे एक आरंभकर्ता की जगह एक प्रतिक्रियाकर्ता के रूप में देखते हैं। टैलकॉट पारसन्स (1951) जैसे चरम अधिवक्ताओं का मानना है कि एक समाज के लिए उसकी जरूरतों का ऊंचा उठना और व्यक्तियों के लक्ष्यों को परिभाषित करना जरूरी है।

टिप्पणी

2.8 मुख्य शब्दावली

- **वांछनीय** : चाहने योग्य।
- **सन्निहित** : समीप में रखा हुआ।
- **सार्वभौमिक** : संपूर्ण पृथ्वी पर फैला हुआ।
- **अंतर्निहित** : अंदर छिपा हुआ।
- **संप्रेषित** : भेजा गया।
- **कार्यान्वित** : व्यवहार में लाया हुआ।
- **अनुशिक्षण** : प्रशिक्षण, अभ्यास।
- **नवाचार** : नया विधान।
- **पूर्वाग्रह** : किसी विषय के संबंध में वह धारणा जो पहले से बिना सोचे–समझे मन में स्थिर कर ली गई हो।
- **अस्पृश्यता** : अछूतापन।

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मूल्यों की परिभाषा दीजिए।
2. मूल्यों के महत्व को बताइए।
3. नैतिक शिक्षा का स्कूलों के लिए महत्व समझाइए।
4. कोलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत को बताइए।
5. आधुनिक मूल्यों से क्या अभिप्राय है?
6. धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मूल्यों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों में विविधता बताइए।

3. सामाजिक संदर्भ में नैतिक मूल्यों की उपयोगिता प्रतिपादित कीजिए।
4. नैतिक विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के विषय में बताइए।
5. गांधी जी और बी.आर. अम्बेडकर के अनुसार श्रम की गरिमा से क्या अभिप्राय है?
6. टिप्पणी लिखिए– (क) राष्ट्रवाद (ख) सार्वभौमिकता (ग) धर्मनिरपेक्षता

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Aggarwal, J.C. 2010. *Theory and Principles of Education* (13th edition). Noida: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Sharma, G.R. 2003. *Trends in Contemporary Indian Philosophy of Education: A Critical Evaluation.* New Delhi: Atlantic Publishers & Dist.
- Samuel, Ravi. 2015. *Education in Emerging India*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd.
- Sharma, A.P. 2010. *Indian & Western Educational Philosophy*. New Delhi: Pustak Mahal.
- Aggarwal, J.C. 2005. *Teacher and Education in a Developing Society* (4th edition). New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Dhawan, M.L. 2005. *Philosophy of Education*. New Delhi: Gyan Books Pvt. Ltd.
- Brubacher, J. S. 1969. *Modern Philosophy of Education*. New Delhi: McGraw Hill.
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- अदिर कोहेन (1983), 'एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ मार्टिन बूबर', एसोशिएटिड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
- एन.आर. स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी (2008), 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- रमन बिहारी लाल (2007), 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार' रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- दास, आर.सी. (1984), 'करिकुलम एंड इवैल्यूएशन', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1975), 'दस साल स्कूल के लिए पाठ्यक्रम – एक फ्रेमवर्क', नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1986), राष्ट्रीय एकता के दिशा निर्देशों के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या– एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्याः एक फ्रेमवर्क (संशोधित संस्करण), एनसीईआरटी।
- एनसीईआरटी (2000), स्कूल शिक्षा, नई दिल्ली के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा।

इकाई 3 पाठ्यचर्या की रूपरेखा

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2. पाठ्यचर्या की अवधारणा
- 3.2.1 पाठ्यचर्या : अर्थ एवं परिभाषाएं
- 3.2.2 पाठ्यचर्या विकास की आवश्यकता और नियमन
- 3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के लक्ष्य और उदेश्य
- 3.2.4 पाठ्यचर्या का पाठ्यपुस्तकों और शिक्षाशास्त्र से संबंध
- 3.2.5 पाठ्यचर्या रचना के विविध आयाम और उनका शिक्षा के उद्देश्यों से संबंध

3.3 पाठ्यचर्या का कार्य क्षेत्र
- 3.3.1 पाठ्यचर्या के कार्य क्षेत्र के विषय में सामान्य विचार–विमर्श
- 3.3.2 पाठ्यचर्या निर्माण में सामाजिक समूहों का समावेश
- 3.3.3 पाठ्यचर्या की सांस्कृतिक अंतर्निहितता

3.4 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की अवधारणा
- 3.4.1 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या : विशेष रूप से लिंग और वंचित समूहों से संबंधित कुछ पाठ्यपुस्तकों की विशेषताओं और कक्षा अभ्यास के संदर्भ में
- 3.4.2 छात्रों के लचीलेपन में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की भूमिका
- 3.4.3 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या में शिक्षक की भूमिका

3.5 पाठ्यचर्या के प्रकार
- 3.5.1 प्रकृतिवाद और पाठ्यचर्या
- 3.5.2 व्यवहारवाद और पाठ्यचर्या
- 3.5.3 आदर्शवाद और पाठ्यचर्या
- 3.5.4 यथार्थवाद और पाठ्यचर्या
- 3.5.5 समझ और दृष्टिकोण विकसित करने हेतु उदार पाठ्यचर्या
- 3.5.6 आजीविका के लिए कौशल केंद्रित व्यावसायिक पाठ्यचर्या
- 3.5.7 मिश्रित पाठ्यचर्या
- 3.5.8 विचारधारा और पाठ्यचर्या का सम्बन्ध

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

किसी भी प्रकार का शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के लिए निर्धारित किए गए विषयों एवं उनसे संबंधित सामग्री को व्यवस्थित और साररूप में प्रस्तुत करना ही पाठ्यक्रम कहलाता है। पाठ्यक्रम प्रायः किसी शिक्षा परिषद (बोर्ड) द्वारा निर्धारित किया जाता है या किसी प्राध्यापक द्वारा तैयार किया जाता है, जो उस विषय के शिक्षण के लिए उत्तरदायी होता है। संपूर्ण पाठ्यक्रम का शिक्षा में एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। पाठ्यक्रम शिक्षा का आधार होता है जिस पर चलकर शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। पाठ्यक्रम के द्वारा ही विद्यार्थि अपना अधिगम कार्य करते हैं और शिक्षक भी अपना शिक्षण कार्य संपन्न करते हैं। पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व का विकास होता

टिप्पणी

है। पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों आधार पर ही किया जाता है। इसको क्रियान्वित रूप विध्यालय और शिक्षकों द्वारा दिया जाता है। पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों में ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक कुशलताओं को विकसित किया जाता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक भावनाओं का विकास किया जाता है। पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों को जीविकोपार्जन के योग्य बनाया जाता है। इसके द्वारा छात्रों में समस्या–समाधान का प्रव्रत्ति भी विकसित की जाती है।

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यक्रम की अवधारणा, पाठ्यक्रम का कार्य क्षेत्र, प्रच्छन्न (छिपा हुआ) पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम के प्रकारों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पाठ्यचर्या के अर्थ और परिभाषा से अवगत हो पाएंगे
- पाठ्यचर्या की आवश्यकता को समझ पाएंगे
- पाठ्यचर्या के कार्यक्षेत्र से भलीभांति परिचित हो पाएंगे
- प्रच्छन्न (छिपे हुए) पाठ्यचर्या के महत्व को समझ पाएंगे
- पाठ्यचर्या के प्रकारों के विषय में जान पाएंगे

3.2. पाठ्यचर्या की अवधारणा

किसी भी समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण इकाई है। शिक्षा के द्वारा न केवल नैतिक और सामाजिक गुणों का विकास छात्रों में किया जाता है अपितु इसके माध्यम से राष्ट्र निर्माण हेतु विद्यार्थियों को तैयार भी किया जाता है। समाज में व्याप्त कुरीतियां, समस्याएं तथा आने वाली चुनौतियों का सामना करने की क्षमता शिक्षा के माध्यम से ही विकसित की जा सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी 21वीं सदी में एक ऐसे मजबूत शिक्षा तंत्र के निर्माण की योजना लेकर आई है, जिसके द्वारा न केवल शिक्षा तंत्र को मजबूती प्रदान की जाए अपितु छात्रों में भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा को भी समाहित किया जाए। एक ऐसा शिक्षा तंत्र जो छात्र केंद्रित हो तथा उसमें 21वीं सदी के कौशल भी उत्पन्न करने का सामर्थ्य हो। 21वीं सदी के कौशल और सामाजिक एवं नैतिक मूल्य किस प्रकार छात्रों में अंतरनिर्विष्ट किए जाएं उसके लिए हमें सर्वप्रथम जिस चिज की आवश्यकता पड़ती है वह है पाठ्यक्रम।

शैक्षिक प्रणाली में पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम निर्माण और उसके विकास एवं नियोजन हेतु शिक्षकों की भूमिका भी सबसे अहम है क्योंकि शिक्षक ही समग्र शिक्षा के विकास के उद्देश्य को पूरा करने में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकते हैं किंतु इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को भी एक ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो छात्रों की रचनात्मकता और तार्किक सोच निर्णय लेने की क्षमता नए–नए प्रयोग करने का साहस के साथ–साथ नैतिकता मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का भी संचार कर सके पाठ्यक्रम के माध्यम से ही हम विद्यार्थियों में जीवन कौशल जैसे परस्पर

सकारात्मक संवाद सहयोग की भावना मिलजुल कर कार्य करने की इच्छा शक्ति आदि का विकास कर सकते हैं।

शैक्षिक प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न स्तरों के लिए अलग–अलग पाठ्यक्रम की योजना राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के संगठन जैसे एनसीईआरटी (NCERT) और एससीईआरटी (SCERT) द्वारा किया जाता है पाठ्यक्रम निर्माण का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है, क्योंकि इसमें शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योजना और उसके क्रियान्वयन का प्रारूप तैयार किया जाता है। पाठ्यक्रम के अंतर्गत ना केवल पाठ्यवस्तु बल्कि पढ़ाने के तरीके शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मिलने वाले अनुभव व शैक्षिक व गैर शैक्षिक गतिविधियां भी शामिल होती हैं। पाठ्यक्रम तैयार हो जाने के बाद कक्षा के स्तर पर उसको लागू करने का कार्यभार एक शिक्षक के कंधों पर होता है। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण से लेकर उसके क्रियान्वयन तक के स्तर में एक शिक्षक की सदैव अहम भूमिका होती है।

3.2.1 पाठ्चर्या : अर्थ एवं परिभाषाएं

अर्थ : पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम दो शब्दों के मेल से बना है पहला शब्द है : पाठ्य और दूसरा है : क्रम अर्थात जो पढाया जाना है उसको सुचारू रूप से क्रमबद्ध करना। पाठ्यक्रम शब्द एक व्यापक शब्द है जिसके अंतर्गत पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु पढाने के तरीके शिक्षण अधिगम के दौरान मिलने वाले अनुभव सभी कारकों को छात्रों की जरूरतों और रुचियों को ध्यान में रखते हुए सुव्यवस्थित तरीके से विकसित किया जाता है। पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी में करिकुलम शब्द से जुड़ा हुआ है करिकुलम शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द (Currere) से लिया गया है जिसका अर्थ दौड़ने अथवा गतिशील होने से संबंधित है इस विषय में दौड़ना या गतिशील होना किसी उद्देश्य की प्राप्ति के संदर्भ में कहा गया है इस प्रकार शैक्षिक प्रणाली के संदर्भ में पाठ्यक्रम को शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक महत्वपूर्ण कारक के तौर पर देखा जाता है। पाठ्यक्रम छात्रों को समग्र मानकों को पूरा करने में मदद करने के लिए सिखाई जाने वाली अवधारणाओं की रूपरेखा है। पाठ्यक्रम वह है जो किसी दिए गए पाठ्यक्रम या विषय में पढाया जाता है। पाठ्यक्रम विशिष्ट लक्ष्यों, सामग्री, रणनीतियों, माप और संसाधनों के साथ अनुदेश और सीखने संवाद की प्रणाली को संदर्भित करता है।

यदि हम पाठ्यक्रम के संकुचित अर्थ को लें तो हम पाठ्यक्रम के अंतर्गत क्या पढ़ाया जाना हैं इस बात की चर्चा करते हैं किंतु यदि पाठ्यक्रम के व्यापक अर्थ को लिया जाए तो इसके अंतर्गत पढाए जाने वाले विषय, उन विषयों को पढाए जाने के तरीके, अपेक्षित संसाधन और शैक्षिक वातावरण में छात्रों को मिलने वाले अनुभव तथा सह–शैक्षिक गतिविधियां भी शामिल हैं। इस प्रकार व्यापक दृष्टि से यदि हम देखें तो पाठ्यक्रम विद्यालय में पढ़ने वाले छात्र के जीवन का वह अभिन्न हिस्सा है जो न केवल उसके मानसिक विकास बल्कि शारीरिक सामाजिक और आध्यात्मिक विकास में भी सहायता करता है।

परिभाषाएं : पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम के व्यापक अर्थ को समझने के लिए पाठ्यक्रम की कुछ परिभाषाओं को समझने का प्रयास करते हैं–

Hilda Taba (1962) के अनुसार, ''एक पाठ्यक्रम में आमतौर पर लक्ष्यों और विशिष्ट उद्देश्यों का विवरण होता है। यह सामग्री के चयन और संगठन को इंगित

करता है। यह उद्देश्य की मांग के अनुसार अथवा सगठन की आवशयकता के कारण सीखने और शिक्षण के प्रतिरूप का उल्लेख करता है। इसमें परिणामों के मूल्यांकन का कार्य भी शामिल रहता है।''

टिप्पणी

Wiles & Bondi (1989) के अनुसार, ''पाठ्यक्रम मूल्यों के समावेश का एक ऐसा लक्ष्य है जो कक्षा में अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से विकसित होता है पाठ्यक्रम के विकास से संबंधित प्रयासों की प्रभावशीलता का आकलन इस बात से लगाया जा सकता है कि लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किस प्रकार के अनुभव छात्र कक्षा में ग्रहण कर रहा है। यदि अनुभव अंततः लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है तो ऐसे पाठ्यक्रम को प्रभावशाली पाठ्यक्रम माना जाता है।''

कनिंघम के अनुसार, ''पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक यंत्र के समान है जिससे वह अपनी सामग्री (शिष्य) को अपने आदर्श (लक्ष्य)के अनुसार अपने कलागृह (विद्यालय) में ढालता है।''

क्रो एवं क्रो के अनुसार ''पाठ्यक्रम में सीखने के लिए सभी अनुभव सम्मिलित हैं जिन्हें वह विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर उस कार्यक्रम के अंतर्गत प्राप्त करता है जो उसके मानसिक शारीरिक सामाजिक संवेगात्मक आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास में सहायक होता है।''

माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, ''यह स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि शैक्षिक पाठ्यक्रम केवल अकादमिक विषयों को पारंपरिक रूप से स्कूल में पढ़ाया जाना ही नहीं है, बल्कि इसमें विद्यालय में होने वाली सभी गतिविधियों से प्राप्त अनुभव भी शामिल है जिसे छात्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करता है जैसे– कक्षा में, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला, खेलने का मैदान और शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच कई अनौपचारिक संपर्क। इस अर्थ में, स्कूल का पूरा जीवन पाठ्यक्रम बन जाता है जो सभी बिंदुओं पर छात्रों के जीवन को छू सकता है और संतुलित व्यक्तित्व के विकास में मदद कर सकता है।''

नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क 2005 (NCF 2005) ने पाठ्यक्रम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए, पाठ्यक्रम विकास के लिए पांच मार्गदर्शक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा थाः

(i) स्कूल के बाहर के ज्ञान को जीवन से जोड़ना;

(ii) यह सुनिश्चित करना कि रटने के तरीकों की बजाय सीखने के तरीकों में बदलाव हो;

(iii) पाठ्यक्रम को समृद्ध करना ताकि इसमें पाठ्यपुस्तकों से बाहर का ज्ञान भी समाविष्ट हो;

(iv) परीक्षाओं को अधिक लचीला बनाना और उन्हें कक्षा एवं जीवन दोनों के साथ एकीकृत करना;

(v) देश की लोकतांत्रिक वयवस्था के अनुरूप राष्ट्र की पहचान का पोषण करना;

3.2.2 पाठ्यचर्या विकास की आवश्यकता और नियमन

शैक्षिक प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है, जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय स्तर से लेकर विद्यालय स्तर तक योजना तैयार की जाती है। शिक्षा

टिप्पणी

के क्षेत्र में शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किस प्रकार की पाठ्यवस्तु होनी चाहिए, शिक्षक की क्या भूमिका रहेगी, पाठ्यपुस्तक किस तरीके की होनी चाहिए तथा किस प्रकार की गतिविधियों को शामिल किया जाए कि छात्र ज्ञान प्राप्ति के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों को भी अपने चरित्र में समाविष्ट कर सकें। इस संदर्भ में पाठ्यक्रम विकास की आवश्यकता को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

ज्ञान और कौशल के विकास के लिए

शिक्षा को ज्ञान और कौशल के विकास के प्राथमिक साधन के रूप में देखा जाता है। ज्ञान और कौशल मानव पूंजी सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व है इसलिए पाठ्यक्रम के माध्यम से ही विद्यार्थिओं की समझ को विकसित करने और ऐसे कौशल विकसित करने का मौका मिलता है जिसके द्वारा किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है। एक निश्चित पाठ्यक्रम होने के कारण विद्यार्थी उत्पादकता और रचनात्मकता के द्वारा समाज को व्यापक सामाजिक लाभ की ओर ले जाता है।

सामाजिक पुनर्निर्माण

शिक्षा का स्वरूप राष्ट्र और समाज की बदलती जरूरतों के हिसाब से बदलता रहता है। एक विशेष समय पर समाज की क्या आवश्यकता है, शैक्षिक प्रणाली से समाज की क्या अपेक्षाएं हैं, समाज के पुनर्निर्माण के लिए किन तत्वों के समावेश की आवश्यकता शिक्षा के क्षेत्र में है, यह सब जानने और समझने के लिए शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत पाठ्यक्रम की रचना आवश्यक मानी जाती है। पाठ्यक्रम ही वह माध्यम बनता है जिसके द्वारा समाज में अपेक्षित सामाजिक मूल्य और पुनर्निर्माण की अवधारणाओं को सृजित करने का मौका मिलता है।

सांस्कृतिक संचरण

शिक्षा और संस्कृति दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे माने जाते हैं एक और जहां शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं वहीं दूसरी ओर संस्कृति के संचरण के लिए हमें शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में अपनी समृद्ध संस्कृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा होता है किंतु उस सांस्कृतिक विकास के लिए क्या–क्या कार्य एक विद्यालय में किए जाने चाहिए इसकी रूपरेखा पाठ्यक्रम के द्वारा निर्धारित की जाती है पाठ्यक्रम की रूपरेखा न केवल शैक्षिक विषयों में अपितु विद्यालय में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों के माध्यम से भी सांस्कृतिक संचरण और सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश करती है।

सांस्कृतिक विविधता और सामंजस्यपूर्ण विकास

हमारा देश सांस्कृतिक विविधताओं का देश है ऐसे में शिक्षा एकमात्र ऐसा विकल्प है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा सकता है तथा अपनी संस्कृति के साथ–साथ दूसरे की संस्कृति का भी आदर व सम्मान कर सकता है। किस स्तर के विद्यार्थियों में किस समय पर कौन से सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश करना है और उन मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करना है इस विषय के निर्धारण के लिए प्रत्येक शिक्षा प्रणाली में एक निश्चित पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है क्योंकि एक ही समय पर सभी विद्यार्थियों को एक जैसा ज्ञान और एक जैसे मूल्यों की शिक्षा नहीं

दी जा सकती है अतः पाठ्यक्रम के द्वारा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यार्थियों के लिए उद्देश्य और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पाठ्यवस्तु व क्रियाकलापों का निर्धारण किया जाता है।

टिप्पणी

आत्मबोध के लिए

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य कर्तव्यबोध, विनयशीलता व आत्मबोध होता है। एक विद्यार्थी के आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा के साथ–साथ नैतिक और सामाजिक मूल्यों की भी भूमिका होती है। अतः पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण के लिए संयम, समय, अर्थ, विचार और धर्म जैसे तत्वों की वास्तविकता से भी अवगत करवाता है और उन्हें भविष्य में समाज के कल्याण और राष्ट्र निर्माण के लिए तयार करता है।

पाठ्यक्रम की आवश्यकता को व्यापक स्तर पर समझने के साथ–साथ निम्नलिखित बिंदु भी शैक्षिक प्रणाली में पाठ्यक्रम की महत्ता को दर्शाते हैं :

राष्ट्रीय स्तर पर एक समान मानक का स्रोत

विद्यालय के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम के निर्माण से हर विद्यालय के लिए शिक्षा के उद्वेश्यों की पूर्ति हेतु एक समान मानक तय होने से सुविधा होती है। शिक्षकों को किस विषय में विषयवस्तु और उससे सम्बंधित संसाधनों के प्रयोग पर भी पाठ्यक्रम के द्वारा दिशानिर्देश निर्धारित होता है।

राष्ट्रीय स्तर पर एक समान मूल्यांकन का स्रोत : पाठ्यक्रम के द्वारा पूरे राष्ट्र के लिए एक जैसी मूल्यांकन की पद्धति बनाई जाती है जिससे कि हर छात्र को एक समान मानकों के आधार पर अंक दिए जा सकें।

गुणात्मक शिक्षा के लिए

पाठ्यक्रम के निर्धारण से प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं और उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सही विषय वस्तु सुनिश्चित करना, उत्तम शिक्षण विधि का चयन, सहायक शिक्षण सामग्री, और छात्रों को मिलने वाले अनुभवों के बारे में नियोजन किया जाता है, शैक्षिक प्रणाली में पाठ्यक्रम के द्वारा किये गए नियोजन को क्रियान्वयन के स्तर तक ले जाकर गुणात्मक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

समाज के प्रत्येक वर्ग के समावेश के लिए

पाठ्यक्रम के द्वारा व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के अनुभवों के प्रारूप को निर्धारित किया जाता है। ऐसा करते समय समाज के हर सामाजिक एवं आर्थिक वर्ग के विद्यार्थी की आवश्यकताओं को अनुभव आधारित शिक्षा प्रदान करने का उद्देश्य रखा जाता है।

3.2.3 पाठ्यचर्या निर्माण के लक्ष्य और उदेश्य

1. **स्पष्ट उद्देश्य और लक्ष्यों को निर्धारित करना** :– पाठ्यक्रम के द्वारा पाठ्यचर्या एवं शैक्षिक गतिविधियों का लिखित लक्ष्य प्रदान किया जाता है जिसके द्वारा छात्र के विकास से सम्बंधित ऐच्छिक परिणाम प्राप्त किये जा सकें। इन लक्ष्यों और उद्देश्यों को काफी विस्तार से और व्यवहार भाषा में निर्दिष्ट करने की आवश्यकता होती है।

2. **सतत मूल्यांकन और गुणवत्ता में सुधार विकसित करना** :– छात्रों का वैध और विश्वसनीय मूल्यांकन आवश्यक है। पाठ्यक्रम निर्माण और उसके सुचारुरूप से क्रियान्वयन से छात्रों के मूल्याङ्कन की एक स्पष्ट रूपरेखा तैयार होती है जिसके द्वारा शिक्षा के पूर्व निर्धारित उदेश्यों को प्राप्त किया जा सके।
3. **पाठ्यचर्या का मनोवैज्ञानिक अनुक्रम निर्धारित करना** :– एक पाठ्यक्रम में शैक्षिक गतिविधियों को एक विकास के क्रम में नियोजित करने की आवश्यकता होती है। यह विकासात्मक अनुक्रम पाठ्यक्रम और उसके घटक पाठ्यक्रमों के इच्छित लक्ष्यों और परिणामों का आधार तथा शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों के लिए एक सुनियोजित पाठ्यक्रम बनाने में मदद करता है।
4. **शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में रणनीति बनाने हेतु** :– पाठ्यक्रम आवश्यक उपयुक्त शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, शिक्षण विधियों, अनुदेशात्मक सामग्रियों आदि के नियोजन के लिए दिशानिर्देश उपलब्ध करवाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों के अनुभवों को लेकर भी सुझाव और शिक्षकों की ओर से पाठ्यक्रम के सही क्रियान्वयन के लिए संसाधन उपलब्ध कराने में मदद करता है।
5. **सीखने के अनुभवों के चयन हेतु** :– विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम में विभिन्न स्तर पर छात्रों को उनके मानसिक स्तर और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर सीखने के अनुभवों के संगठन की जरूरत होती है। यह अध्ययन सामग्री और अन्य गतिविधियों के चयन में मदद करता है ताकि शिक्षार्थियों को लक्ष्य और शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता हो।

3.2.4 पाठ्यचर्या का पाठ्यपुस्तकों और शिक्षाशास्त्र से संबंध

पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसमें पाठ्यवस्तु के साथ–साथ पाठ्य पुस्तकें तथा उन पाठ्य पुस्तकों में दिए गए ज्ञान को बच्चों तक पहुंचाने हेतु शिक्षण विधि शिक्षा शास्त्र व विद्यालय के वातावरण में छात्रों को मिलने वाले अनुभवों का भी समावेश होता है ये सभी विषय पाठ्यक्रम को एक सकारात्मक रूप देकर शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। पाठ्यक्रम के व्यापक सीमा क्षेत्र एंव पाठ्यक्रम का पाठ्य पुस्तकों शिक्षा शास्त्र और पाठ्य वस्तु से संबंध का निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें

पाठ्यक्रम रचना के समय फोकस पाठ्यपुस्तकों और अन्य सामग्रियों में ज्ञान के प्रतिनिधित्व एवं समाज के सामने आने वाली चुनौतियों हेतु विद्यार्थिओं को किस प्रकार तैयार किया जाए इस पर केन्द्रित होना चाहिए। पाठ्यक्रम में प्रस्तावित ज्ञान के चयन के लिए सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों और लक्ष्यों को भी सन्दर्भ में लेना बहुत आवश्यक है। एनसीएफ 2005 (National Curriculum Framework 2005) के अनुसार पाठ्य पुस्तकें विद्यालय स्तर पर समानता का भाव उत्पन्न करने में भी एक महत्वपूर्ण साधन हैं क्योंकि अधिकतर बच्चों और अध्यापकों को सबसे आसानी से उपलब्ध होने वाले संसाधनों में से एक संसाधन पाठ्यपुस्तक ही है। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य पाठ्यपुस्तक के साथ–साथ वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक को भी प्रोत्साहित किया जाए ताकि उसमें गतिविधि

टिप्पणी

ायां और उनके प्रयोग के बारे में विस्तृत चर्चा हो पाए। पाठ्य पुस्तक को विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से जोडध्कर पाठ्य सामग्री व उदाहरण सम्मिलित किए जाने चाहिए। एनसीएफ 2005 (National curriculum framework 2005) में इस बात पर बल दिया गया है कि पाठ्य पुस्तक क्षेत्रीय भाषाओं में भी विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध होनी चाहिए ताकि प्रत्येक छात्र बिना किसी असुविधा के ज्ञान अर्जित कर सके।

अच्छी पाठ्य पुस्तक का निर्माण एवं सुझाव पाठ्यक्रम रचना का अभिन्न हिस्सा है विद्यालय स्तर पर पाठ्य पुस्तकें छात्रों में सीखने के प्रति रुचि पैदा करने वाली हों तथा उनमें उचित तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध हो और उसे अनुभवी लेखकों द्वारा लिखा गया हो ऐसी व्यवस्था पाठ्यक्रम निर्माण के समय सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। पाठ्यक्रम रचना के समय इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्य पुस्तकों में दी गई पाठ्य सामग्री किसी भी प्रकार से भेदभाव को बढ़ावा देने वाली नहीं होनी चाहिए तथा पाठ्य पुस्तक में सम्मिलित उदाहरण समाज के प्रत्येक वर्ग से लिए जाएं और उन्हें विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से जोडध कर देखा जाए।

पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र

शिक्षा शास्त्र के अंतर्गत शिक्षकों द्वारा सिखाने की विधि का सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप निहित होता है। इसके द्वारा एक शिक्षक अपने छात्रों को पहले से अर्जित ज्ञान के साथ नए ज्ञान को जोडध्कर देखने की क्षमता तथा उसके अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में आने की स्थितियों का अध्ययन करता है अतः पाठ्यक्रम और शिक्षा शास्त्र का बहुत ही महत्वपूर्ण संबंध है। अध्यापकों द्वारा कक्षा में सिखाने की विधि ऐसी होनी चाहिए जोकि प्राप्त किए गए ज्ञान को दैनिक जीवन में किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है इस पर आधारित होनी चाहिए। उत्तम पाठ्यक्रम हमेशा पढ़ाने की छात्र केंद्रित विधियों पर बल देता है तथा ऐसे वातावरण के निर्माण को प्राथमिकता देता है जिसमें छात्र निसंकोच अपने विचारों और उदाहरणों को अध्यापक के समक्ष रख सके और अध्यापक भी छात्रों को तर्क संगत चर्चा के लिए प्रोत्साहित कर सके।

3.2.5 पाठ्यचर्या रचना के विविध आयाम और उनका शिक्षा के उद्देश्यों से संबंध

पाठ्यक्रम रचना एक जटिल कार्य है। जिसमें पाठ्यवस्तु, शिक्षाशास्त्र, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण अधिगम के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अनुभव तथा जिनके लिए पाठ्यक्रम विकसित किया जा रहा है, उन विद्यार्थियों की रुचि, मानसिक स्तर और जरूरतों को ध्यान में रखकर पूरे पाठ्यक्रम की रचना की जाती है। पाठ्यक्रम रचना के समय शिक्षा के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता है तथा उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किस प्रकार के शैक्षिक वातावरण की आवश्यकता होगी इस पर भी ध्यान देना जरूरी होता है। पाठ्यक्रम के छह प्रमुख आयामों का अध्ययन किया जा सकता हैं।

पाठ्यचर्या रचना के छह प्रमुख आयाम

1. **व्यापकता** : पाठ्यक्रम की व्यापकता में विषयवस्तु, पाठ्यवस्तु,, विषय और विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव अंतर्निहित होते हैं। पाठ्यक्रम रचना की व्यापकता सिर्फ ज्ञानात्मक स्तर तक ही नहीं अपितु भावात्मक और क्रियात्मक

टिप्पणी

स्तर पर भी होती है। किसी विषय की पाठ्यवस्तु को कितनी गहराई तक ले जाना है तथा किस प्रकार के शैक्षिक गतिविधियों को शामिल किया जाना है और सीखने से संबंधित किन किन क्रियाओं का समावेश एक विशेष स्तर पर किया जाएगा यह सभी बिंदु पाठ्यक्रम की व्यापकता के अंतर्गत आते हैं ।

2. **अनुक्रम** : पाठ्यक्रम के घटकों को व्यवस्थित करते समय एक ऊर्ध्वाधर अनुक्रम का पालन किया जाना चाहिए, इस प्रकार के अनुक्रम से सीखने की प्रक्रिया में निरंतरता बनी रहती हैद्य पाठ्य क्रम के अवयवों की अनुक्रम ता कई तत्वों पर निर्भर करती है जैसे कुछ शिक्षाविद अनुक्रम को पाठ्यवस्तु और अनुभवों के आधार पर रखने का तर्क देते हैं वहीं दूसरी ओर कई शिक्षाविद विद्यार्थी के सीखने के तरीके के हिसाब से अनुक्रम निर्धारित करने की बात करते हैं शिक्षाविद पियाजे के अनुसार बच्चों के सीखने की प्रक्रिया पाठ्यवस्तु गतिविधि यां और ज्ञानात्मक स्तर के हिसाब से अनुक्रम में रखी जानी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम रचना के अंतर्गत पाठ्यवस्तु के अनुक्रम के लिए (Smith, Stanley and Shores 1957) के द्वारा निम्नलिखित अभिगम प्रस्तावित हैं–

- **सरल से कठिन की ओर (Simple to Complex):** सरल से कठिन का अनुक्रम पाठ्यवस्तु को इस तरीके से नियोजित करता है, जिसमें की विषय संबंधित अवधारणा सरल से कठिन की ओर बढ़ेंद्य उदाहरण के लिए जैसे विद्यार्थी द्वारा पहले एक अंक के साथ जमा करना या घटाना सीखना और फिर दो, तीन या चार अंकों के साथ आगे बढ़ते जाना।
- **भाग से पूर्ण की ओर (Part to whole or pre&requisite learning):** भाग से पूर्ण की ओर का अनुक्रम पाठ्यवस्तु को छोटे छोटे भागों में विभाजित कर उनकी जानकारी देना तथा बाद में उन्ही भागों को जोड़कर पूर्णता की ओर आगे बढ़ना उदाहरण के लिए शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों को अलग अलग भागों में विद्यार्थियों को समझना तथा बाद में पूर्ण तौर पर पूरे मानव शरीर के कार्य पर विद्यार्थियों को जानकारी देना।
- **पूर्ण से भाग की ओर (Whole to part):** पूर्ण से भाग की ओर का अनुक्रम में पहले विषय की विषय वस्तु की पूर्ण जानकारी प्रदान करना तथा बाद में उसके अलग अलग भागों के बारे में विचार विमर्श करना उदाहरण के लिए पहले पूर्ण रूप से मानव शारीर के कार्यों की जानकारी देना तथा बाद में अलग अलग भागों की जानकारी प्रदान करना।

6. **कालानुक्रमिक अधिगम (Chronological learning):** कालानुक्रमिक अधिगम के अनुक्रम में विषय वस्तु ने घटित होने वाली घटनाओं को उनके घटित होने के समय के अनुक्रम में सुनियोजित किया जाता हैद्य उदाहरण के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के घटनाक्रम को अनुक्रमित करना।

3. **निरंतरता** : निरंतरता के आयाम के द्वारा विद्यार्थियों में विषय सम्बंधित ज्ञान को मजबूती प्रदान की जाती है। ऐसे कौशल और अनुभवों की पुनरावृति को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाता है जिसके द्वारा विद्यार्थी विषय को गहराई से समझ सकें। इस आयाम में किसी एक विशेष अवधारणा को गहराई से

विद्यार्थियों के मस्तिष्क में बिठाने के लिए लंबे समय के लिए अलग अलग स्तर पर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है ताकि विषय से सम्बंधित अवधारणा का ज्ञान पूर्ण रूप से विद्यार्थी प्राप्त कर सकें।

टिप्पणी

4. **एकीकरण** : एकीकरण का आयाम पाठ्यक्रम में एक विषय की पाठ्यवस्तु का किसी अन्य विषय की पाठ्य वस्तु में के विषय का एकीकरण एवं भूगोल की अवधारणाओं को समझने में विज्ञान विषय की अवधारणाओँ का समावेश।
5. **संयोजन** : पाठ्यक्रम में संयोजन के आयाम के द्वारा विभिन्न विषयों में संबंध स्थापित किया जाता है यह दो प्रकार से सुनिश्चित किया जा सकता है एक पाठ्यक्रम अनुक्रम में पाठ, विषयों, या कार्यक्रम में बाद में प्रदर्शित होने वाले पाठ्यक्रमों के पहलुओं का संबंध दूसरा एक साथ होने वाले तत्वों के बीच संबंध।
6. **संतुलन** : संतुलित पाठ्यक्रम की अवधारणा ऐसे पाठ्यक्रम की रचना पर जोर देती है जिसमें विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने के साथ साथ शिक्षा के लक्ष्यों को भी प्राप्त कर सकें इसके लिए विभिन्न अव्यवों जैसी पाठ्यवस्तु शैक्षिक गतिविधियों विद्यार्थी को मिलने वाले अनुभव सामाजिक मूल्यों का समावेश का संतुलन एक पाठ्यक्रम में बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख उद्देश्यों में शामिल है–
   (क) मजबूत शिक्षा तंत्र का निर्माण
   (ख) भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा को समाहित करना
   (ग) 21वीं सदी के कौशल उत्पन्न करने का सामर्थ्य
   (घ) उपर्युक्त सभी
2. नए पाठ्यक्रम से निम्न में से क्या अपेक्षा है–
   (क) छात्रों में रचनात्मकता और तार्किक सोच–निर्णय क्षमता
   (ख) नए–नए प्रयोग करने का साहस
   (ग) नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का संचार
   (घ) उपर्युक्त सभी
3. केंद्र एवं राज्य स्तरों पर अलग–अलग पाठ्यक्रम की योजना क्रमशः बनाई जाती है–
   (क) NCERT द्वारा (ख) SCERT द्वारा
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
4. 'पाठ्यक्रम' को परिभाषित करने वाले कुछ प्रमुख नाम हैं–
   (क) हिल्दा तबा, कनिंघम (ख) वाइल्स ऐंड बोन्डी
   (ग) क्रो ऐंड क्रो (घ) उपरोक्त सभी

3.3 पाठ्यचर्या का कार्य क्षेत्र

पाठ्यचर्या के कार्य क्षेत्र को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

टिप्पणी

3.3.1 पाठ्यचर्या के कार्य क्षेत्र के विषय में सामान्य विचार–विमर्श

पाठ्यक्रम के विस्तार को सीमाओं में बांधना एक कठिन कार्य है किंतु पाठ्यक्रम के कारकों को ध्यान में रखते हुए इसके विस्तार को समझा जा सकता है। पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के जीवन के सभी पहलुओं को छूता है इसलिए इसका दायरा बहुत व्यापक है। विद्यार्थियों की रुचि, सकारात्मक शैक्षिक पर्यावरण, शैक्षिक अनुभव जिनके द्वारा विद्यार्थियों में वांछित कौशलों और गुणों को विकसित किया जा सके। शुरू से ही पाठ्यक्रम पर सामाजिक उद्देश्यों का प्रभाव देखा गया है पाठ्यक्रम के कारक पाठ्यवस्तु, अवधारणाएं, कौशल और मूल्य कुल मिलाकर पाठ्यक्रम के क्षेत्र को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र इस बात से संबंधित होता है कि क्या पढ़ाया या सिखाया जाना चाहिए। इसके द्वारा पाठ्यक्रम की व्यापकता को संदर्भित करने में सहायता मिलती है य जैसे किस प्रकार की पाठ्य सामग्री को चयनित किया जाए, सीखने के अनुभव किस प्रकार के होने चाहिए तथा किस प्रकार की शैक्षिक गतिविधियों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और कौशल संबंधी उद्देश्य और क्षमताओं के विकास से जुड़ा हुआ है। प्रारंभ में पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र को मात्र अध्ययन हेतु लिए गए विषयों के रूप में देखा जाता था, किंतु समाज में समय के साथ होते गए बदलावों ने पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र को और आगे बढ़ाया जिसके कारण मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्र तथा व्यवहारवाद आदि ने पाठ्यक्रम के अर्थ एवं सीमा क्षेत्र की सीमा को व्यापकता प्रदान की। पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र अथवा कार्य क्षेत्र को समझने के लिए इसके अंतर्गत आने वाले निम्नलिखित कार्यों को समझना आवश्यक है।

- पाठ्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करना
- पाठ्यक्रम में छात्रों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं हस्त कौशलों का विकास करना
- सकारात्मक शैक्षिक वातावरण के निर्माण हेतु सुझाव
- छात्रों को क्षमता एवं रूचि के अनुसार शैक्षिक अनुभव प्रदान करना
- शैक्षिक व सह शैक्षिक गतिविधियों को मूल्यांकन का अंग बनाना
- नवाचार हेतु शैक्षिक स्रोतों का उपयोग करना
- **पाठ्यचर्या द्वारा विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करना**
- पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र में सबसे प्रथम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया हेतु उद्देश्यों का निर्धारण आता है। विद्यार्थियों को क्या पढ़ाया जाना है और कैसे पढ़ाया जाना है यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम विद्यार्थियों को किस लिए पढ़ा रहे हैं अर्थात शिक्षण अधिगम के उद्देश्य क्या है। पाठ्यक्रम निर्माण में शिक्षण

टिप्पणी

अधिगम के उद्देश्य विद्यार्थियों का मानसिक स्तर उनकी आवश्यकताएं रुचि तथा समाज की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाते हैं। किसी विषय विशेष के लिए उद्देश्यों का निर्धारण उस विषय के सीमा क्षेत्र तथा उस विषय की विद्यार्थियों के लिए वर्तमान में तथा भविष्य में उपयोगिता के आधार पर भी निश्चित किया जाता है। पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र में उद्देश्यों का निर्माण एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में है क्योंकि इसके द्वारा ही पाठ्यवस्तु का निर्धारण तथा पाठ्यवस्तु के लिए उपयोग में आने वाले शैक्षिक, संसाधन शैक्षिक वातावरण तथा शिक्षकों की भूमिका का भी निर्धारण किया जाता है

- **पाठ्यक्रम में छात्रों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं हस्त कौशलों का विकास करना**
- प्रारंभ में पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र विद्यार्थियों को केवल पाठ्यवस्तु का ज्ञान देने तक सीमित था जिसके द्वारा विद्यार्थियों का केवल संज्ञात्मक विकास ही संभव था, किंतु शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्र के शिक्षाविदों द्वारा पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र को व्यापक आधार दिया गया जिसके द्वारा पाठ्यक्रम की शैक्षिक व सह शैक्षिक गतिविधियों में संज्ञात्मक, भावनात्मक एवं हस्त कौशलों को प्रमुखता से शामिल किया गया। शिक्षाविदों का यह मानना है कि एक विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात समाज एवं राष्ट्र की सेवा के उद्देश्य के साथ वापस समाज की ओर जाता है जिसके लिए विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में नैतिक व सामाजिक गुणों का समावेश आवश्यक है। इसलिए वर्तमान समय में पाठ्यक्रम में ऐसी सभी गतिविधियों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा ना केवल विद्यार्थी का बौद्धिक विकास हो सके अपितु सामाजिक मनोवैज्ञानिक और अध्यात्मिक तौर पर भी उस का सर्वांगीण विकास संभव हो सके।
- **सकारात्मक शैक्षिक वातावरण के निर्माण हेतु सुझाव**
- सकारात्मक शिक्षण वातावरण के निर्माण हेतु सुझाव भी पाठ्यक्रम की सीमा क्षेत्र का अभिन्न हिस्सा है। विद्यार्थी किस प्रकार के वातावरण में सीख रहे हैं उसका उनके मानसिक स्थिति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र विद्यार्थियों को सकारात्मक शिक्षण वातावरण प्रदान करने के लिए विद्यालय के शिक्षकों, माता–पिता की भूमिका पर भी बल देता है। विद्यालय स्तर पर छात्रों को सीखने के लिए अपेक्षित वातावरण किस प्रकार प्रदान किया जाए ताकि विद्यार्थियों के क्षमता और गुणों को पूर्ण रूप से विकसित किया जा सके पाठ्यक्रम इस विषय को लेकर शिक्षक की भूमिका को अग्रणी मानते हुए कक्षा के बाहर एवं भीतर शिक्षक के व्यवहार तथा आचरण को भी महत्वपूर्ण मानता है। पाठ्यक्रम की सीमा मात्र पाठ्यवस्तु तक सीमित न होकर उस पाठ्यवस्तु को पढ़ाने के लिए वांछित वातावरण प्रदान करने की भी बात करता है।
- **छात्रों को क्षमता एवं रूचि के अनुसार शैक्षिक अनुभव प्रदान करना**
- पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ाए जाने वाले विषयों की पाठ्यवस्तु छात्रों की रुचि और उनकी क्षमता के अनुसार सुनियोजित करना भी पाठ्यक्रम के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है। किसी भी विषय का व्यवहारिक ज्ञान उस विषय

टिप्पणी

को रुचिकर एवं विद्यार्थियों की दैनिक जरूरतों को ध्यान में रखकर दिया जाना आवश्यक है। प्रारंभ में पाठ्यक्रम में विषय वस्तु का निर्धारण सिर्फ विषय के व्यापक क्षेत्र को ध्यान में रखकर किया जाता था जिसके कारण छात्रों में पाठ्यवस्तु को रटने की प्रवृत्ति को अधिक बल मिला और छात्रों की विषय को लेकर व्यापक समझ से दूरी बनने लगी किंतु जैसे जैसे शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहारिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा मिला वैसे वैसे पाठ्यक्रम के नियोजन के मनोवैज्ञानिक आधार को बाल मिला और यह पाठ्यक्रम विकास के सीमा क्षेत्र के अंतर्गत आ गया।

- **शैक्षिक व सह शैक्षिक गतिविधियों को मूल्यांकन का अंग बनाना**
- पाठ्यक्रम विकास का सीमा क्षेत्र शैक्षिक गतिविधियों के मूल्यांकन तक सीमित न होकर विद्यालय के शैक्षिक वातावरण में घटित होने वाले प्रत्येक कार्य को अंतर्निहित करता है। पाठ्यक्रम विकास के समय यह बात सुनिश्चित की जाती है कि पूर्व निर्धारित किए गए शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन किन–किन गतिविधियों के द्वारा किन मापदंडों के आधार पर किया जाएगा। अतः मूल्यांकन की प्रक्रिया भी पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र के अंतर्गत आती है।
- **नवाचार हेतु शैक्षिक स्रोतों का उपयोग करना**

उपरोक्त बिंदुओं पर की गई चर्चा इस बात की ओर दिशा निर्देशित करती है कि पाठ्यक्रम का सीमा क्षेत्र शैक्षिक गतिविधियों, वातावरण, पढ़ाने के तरीके के साथ–साथ छात्रों में सृजनात्मकता मौलिकता तथा नवाचार के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने के उद्देश्य को भी अंतर्निहित करता है। पाठ्यक्रम विकसित करते समय तथा उद्देश्यों के निर्धारण के समय इस बात पर अधिक बल दिया जाता है कि किस प्रकार छात्रों में 21 वी शताब्दी के कौशल विकसित किए जाएं और किस प्रकार की शिक्षण अधिगम प्रणाली विकसित की जाए जो छात्रों को नवाचार सृजनात्मकता मौलिकता की ओर प्रेरित करें।

3.3.2 पाठ्यचर्या निर्माण में सामाजिक समूहों का समावेश

पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम निर्माण के समय सामाजिक समूह का समावेश पाठ्यक्रम को न केवल जानकारी प्रदान करने वाला बनाता है, अपितु समाज के दर्पण के रूप में भी कार्य करता है। शिक्षाविदों के अनुसार पाठ्यक्रम छात्रों के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और भविष्य में आने वाले चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करने वाला होना चाहिए। पाठ्यक्रम की व्यवहारिकता और अधिक बढ़ जाती है जब सामाजिक समूह की स्थिति, परिस्थिति एवं उसकी संरचना का ज्ञान छात्रों को दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर इस प्रकार का समावेश छात्रों को समाज के समीप ले जाता है और सामाजिक समूहों की कार्यप्रणाली और संघर्ष से भी अवगत होते हैं।

पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों में मूल्य और सामाजिक गुणों के विकास की अवधारणा पर बल दिया जाता है और यह तभी संभव है जब छात्रों को अपने समाज तथा आसपास घटित होने वाली क्रियाओं की जानकारी हो सामाजिक एकता, समरूपता, भाईचारा, सौहार्द जैसे गुणों का समावेश विद्यार्थियों में तभी हो सकता है जब विद्यार्थी वास्तविकता से परिचित हूं अतः सामाजिक समूह की जानकारी का समावेश

विद्यार्थियों को सामाजिक समरूपता के प्रयासों के प्रति जागरूक बनाता है तथा समाज कल्याण के प्रति उनकी जिम्मेदारियों से भी उन्हें अवगत करवाता है।

टिप्पणी

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश मैं कई सामाजिक समूहों का ताना–बाना देखने को मिलता है। यह सामाजिक समूह अपनी विशेष संस्कृति व पहचान के लिए दुनिया भर में जाने जाते हैं। अतः सामाजिक समूह की जानकारी का पाठ्यक्रम में अभाव होने से छात्रों को उनकी सांस्कृतिक परिवेश की जानकारी नहीं मिल सकेगी तथा समाज में उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों व योगदान से भी छात्र अपरिचित रहेंगे अतः पाठ्यक्रम के माध्यम से जो भी ज्ञान हम विद्यार्थियों को देना चाहते हैं उसकी व्यवहारिकता सामाजिक समूहों के साथ–साथ उनके संघर्ष चुनौतियां एवं कठिनाइयों को भी दिखाने वाली होनी चाहिए ताकि भविष्य में छात्र समाज में अपने योगदान को निर्धारित करते समय एक दूसरे के प्रति सहायता एवं सौहार्द का भाव रख सकें।

3.3.3 पाठ्यचर्या की सांस्कृतिक अंतर्निहितता

संस्कृति पाठ्यक्रम योजना में एक महत्वपूर्ण कारक है और हर पाठ्यक्रम की सामग्री ड्राइव। इसका कारण यह है कि शिक्षा का सार समाज की सांस्कृतिक विरासत को समाज की युवा पीढ़ी तक पहुंचाना है। पाठ्यक्रम एक राष्ट्र के शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक सत्य उपकरण है। शिक्षा किसी भी देश में विकास के सभी अवसरों का केंद्र है। अगर उसकी शिक्षा व्यवस्था कमजोर है तो कोई देश विकास नहीं कर सकता। इसलिए पाठ्यक्रम योजना को संस्कृति के घटकों को एकीकृत करने का प्रयास करना चाहिए, जो पाठ्यक्रम योजना में शिक्षा का सार है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षा प्रणाली के उत्पाद उनके समाज के कार्यात्मक सदस्य होंगे।

पाठ्यक्रम में संस्कृति के समावेश से अभिप्राय समाज में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन जीने की पद्धति से संबंधित है। पाठ्यक्रम में ऐसे मूल्यों विचारों व मान्यताओं को सम्मिलित करना जो किसी भी समाज के संस्कृति के उद्घोषक हैं जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने देश समाज की संस्कृति से अवगत हो सकें। शिक्षा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं एक और जहां पाठ्यक्रम के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर संस्कृति का प्रभाव भी शिक्षा में देखने को मिलता है पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा को संस्कृति का वाहक माना जाता है जिसके माध्यम से संस्कृति का एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तांतरण सुनिश्चित किया जा सके तथा संस्कृति का प्रचार प्रसार विद्यार्थियों में सही तरीके से हो सके शिक्षा के द्वारा सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी सुनिश्चित किया जाता है जो समय की मांग के अनुसार समाज व राष्ट्र के हित में हो। पाठ्यक्रम में संस्कृति की अंतर्निहितता समाज में सांस्कृतिक मूल्यों की निरंतरता बनाए रखने में सहायक होती है। पाठ्यक्रम में संस्कृति का समावेश आने वाली पीढ़ियों तक संस्कृति के ज्ञान को हस्तांतरित करने में सहायक होता है संस्कृति का समावेश पाठ्यक्रम में करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि संस्कृति समाज में ऐसे परिवर्तनों के लिए सहायक बने जिसके द्वारा रूढिवादिता और समाज के विकास को अवरुद्ध करने वाले कारक परिवर्तित किए जा सकें इसके द्वारा न केवल समाज का विकास अपितु विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास में भी सहायता मिलती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. पाठ्यक्रम के कार्यक्षेत्र को समझने के लिए निम्न कार्यो को समझना आवश्यक है—
   (क) पाठ्यक्रम में छात्रों के संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं हस्त कौशलों का विकास करना
   (ख) सकारात्मक शैक्षिक वातावरण के निर्माण हेतु सुझाव
   (ग) छात्रों को क्षमता एवं रुचि के अनुसार शैक्षिक अनुभव प्रदान करना
   (घ) उपर्युक्त सभी
6. पाठ्यक्रम में संस्कृति के समावेश से अभिप्राय है—
   (क) समाज में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन जीने की पद्वति
   (ख) समाज में सांस्कृतिक मूल्यों की निरंतरता
   (ग) राष्ट्र के शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करना
   (घ) उपर्युक्त सभी

3.4 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की अवधारणा

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम एक ऐसी अवधारणा है जिसके माध्यम से कई ऐसी बातें और गुण बच्चों को सिखाये जाते हैं जो उनके सीखने और समझने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। यह अवधारणा अकसर अनकही और बिना किसी विषय से सम्बंधित होती है। किताबों के अलावा भी बच्चे कई अन्य तरीकों से भिन्न–भिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं विद्यालय का वातावरण और शिक्षकों का व्यवहार इस प्रकार की अवधारणा में अहम् भूमिका निभाता है।

3.4.1 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या : विशेष रूप से लिंग और वंचित समूहों से संबंधित कुछ पाठ्यपुस्तकों की विशेषताओं और कक्षा अभ्यास के संदर्भ में

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम विद्यालय शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। इस पाठ्यचर्या के अंतर्गत ऐसी गतिविधियां शामिल होती हैं। जो अनपेक्षित रूप से कक्षा के भीतर एवं बाहर होने वाली गतिविधियों से जुड़ी हुई होती हैं। इस पाठ्यचर्या में औपचारिक पाठ्यचर्या की तरह पूर्व निर्धारित गतिविधियां तथा पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं होता है अपितु इस पाठ्यचर्या का सीधा संबंध मानदंडों और मूल्यों के संचरण से संबंधित होता है। इसके माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य और समाज द्वारा अपेक्षित व्यवहार का संचरण कर सकता है। प्रच्छन्न पाठ्यचर्या विद्यार्थियों में भावनाओं, दृष्टिकोण, मूल्य, आदतों और समाजिक क्षमताओं के अधिग्रहण में सहायक होता है (Ercan et al., 2009). एक अवधारणा के रूप में प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की रूपरेखा दुर्खीम के द्वारा लिखी गई पुस्तक 'एजुकेशन एंड सोशियोलॉजी' में देखने को मिलती है जहां

टिप्पणी

दुर्खीम द्वारा एक ऐसी पाठ्यचर्या की बात की गई है जो वास्तव में सामाजिक एकरूपता और समरसता को बनाए रखती है। इसी क्रम में दुर्खिम की विचारधारा से प्रभावित होकर प्रच्छन्न पाठ्यक्रम शब्द का उपयोग व वर्णन फिलिप जैक्सन द्वारा 1968 में लिखी गई पुस्तक 'लाइफ इन क्लासरूम्स' में किया गया है। जैक्सन ने इस बात का उल्लेख किया कि 'हिडन करिकुलम' कक्षा में होने वाले क्रियाकलापों के लगभग 90% हिस्से से जुडघ है तथा एक समाज व संस्कृति के आधारभूत ढांचे को मजबूती प्रदान करने में छात्रों को समाज एवं भविष्य के लिए तैयार करने में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम औपचारिक पाठ्यक्रम से बिल्कुल अलग होता है और इसकी शुरुआत विद्यार्थी जीवन के आरंभ से ही हो जाती है। इसके माध्यम से विद्यार्थी किसी विशेष विषय से संबंधित अपनी राय, अपने विचार को एक रूप देते हैं तथा इसके माध यम से समाज में अपेक्षित व्यवहार से संबंधित कई मूल्यों का समावेश भी छात्रों के व्यक्तित्व का हिस्सा बनता है। उदाहरण के लिए छात्र को विद्यालय में किस प्रकार का व्यवहार करना है अपने साथियों के साथ किस प्रकार बातचीत करनी है अपने अध यापकों का किस तरह से आदर करना है तथा अनुशासन संबंधी कई और चीजें भी छात्र प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं। एक विद्यार्थी अपने विद्यालय शिक्षा के वर्षों में अपने एटीट्यूड (दष्टिकोण) और अपने विचारों से संबंधित कई ऐसी बातें सीखता है जिनका कोई औपचारिक पाठ्यक्रम नहीं होता है। इस तरह के पाठ्यक्रम से मुख्यतया छात्रों में मूल्यों के विकास एवं समाज में प्रचलित नैतिक विषय, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक भिन्नता, रूढ़िवदी लैंगिकता और भाषाओं से संबंधित भी कई चीजें छात्र प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं। प्रच्छन्न पाठ्यक्रम सकारात्मकता के साथ साथ नकारात्मक दिशा भी दे सकता है यदि समय से इस पर ध्यान न दिया जाए। जैसे उद्धरण के लिए कक्षा में लड़की और लड़के के बीच भेदभाव, शिक्षा सम्बंधि ात गतिवधियों में छात्रों को उनके लिंग के आधार पर सम्मलित करना जो कि आगे चलकर अनेक रूढ़िवादी धारणाओं को बढावा देता है।

जेराल्ड (2006) के अनुसार प्रच्छन्न पाठ्यक्रम एक ऐसा अन्तर्निहित पाठ्यक्रम है जो दृष्टिकोण, ज्ञान और व्यवहार को व्यक्त करता है और किसी व्यक्ति के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा पाठ्यक्रम जो बिना किसी उद्देशय के दूसरे को अवगत कराया जाता है। ऐसा अप्रत्यक्ष रूप से वयवहार और क्रियाकलापों अथवा शब्दों द्वारा किया जाता है। विद्यालय में प्रच्छन्न पाठ्यक्रम किसी भी समस्या के समाधान के लिए, सकारात्मक या नकारात्मक भूमिका निभाता हैय यह पूर्णतः इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यालय में शिक्षक किस प्रकार स्वयं को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, शिक्षकों की भूमिका प्रच्छन्न पाठ्यक्रम में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

(मिलर एंड सेलर, 1990) के अनुसार प्रच्छन्न पाठ्यक्रम शैक्षिक वयवस्था में मौजूद अनकहे या अंतर्निहित मूल्यों, व्यवहारों, प्रक्रियाओं और मानदंडों को संदर्भित करता है। हालांकि ऐसी अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से नहीं लिखा जाता है, प्रच्छन्न पाठ्यक्रम एक सीखने के माहौल को संचालित करते समय कुछ व्यवहार, मानकों और सामाजिक विश्वासों का संवर्धन और प्रवर्तन करता है।

टिप्पणी

वैलेंस (1980) के अनुसार, प्रच्छन्न पाठ्यक्रम एक ऐसा अस्पष्ट शब्द है,जो किसी विशेष प्रक्रिया या सामग्री की तुलना में बाद में दिखाई देने वाले परिणाम को अधिक संदर्भित करता है।

माइकल एप्पल (१९८२) के अनुसार छिपे हुए पाठ्यक्रम में विभिन्न हित, सांस्कृतिक रूप, संघर्ष, और समझौते शामिल होते हैं। वह आधिपत्य की अवधारणा को बताते हैं जो कई मामलों में विद्यालय की भूमिका को एक आकार देता है और विद्यालयों को न सिर्फ वितरकों बल्कि संस्कृति के उत्पादकों के रूप में परिभाषित करता है, जो छात्रों के समाजीकरण के लिए महत्वपूर्ण है। छात्र विद्यालय में अपना सामाजिक जीवन बनाने के लिए नियमों और गतिविधियों के माध्यम से विभिन्न मानदंडों और संस्कृतियों को जानते और सीखते हैं।

प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की विशेषताएं

मूल्यों व आधारभूत सामाजिक कौशल प्राप्त करने में सहायक : विद्यार्थियों को सामाजिक मूल्यों व कौशल की शिक्षा देने में हिडेन करिकुलम का सबसे अधिक योगदान है क्योंकि इसके द्वारा छात्रों को मूल्यों की शिक्षा व्यवहार द्वारा बतिविधियों ो द्वारा परोस रूप से दी जाती है बजाय इनकी पढ़ाई करवाने के। उदाहरण के लिए जब एक शिक्षक अपने छात्रों को खेल के मैदान में किसी गतिविधि के लिए ले जाता है तो न केवल उस गतिविधि के द्वारा खेल से संबंधित उद्देश्यों को पूरा किया जाता है अपितु परोक्ष रूप से अध्यापक छात्रों में एक दूसरे की सहायता करने का भाव एक समूह में कार्य करने की क्षमता कार्य नियोजन का कौशल और अन्य कई सामाजिक कौशलों का भी निर्माण करता है।

जीवन के लिए तैयार करना : शिक्षा के द्वारा छात्र परोक्ष रूप से जीवन के कौशल सीखता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की चुनौतियों से निपटने के लिए ऐसे जीवन मूल्यों की आवश्यकता होती हैं जो उसे वातावरण के प्रति अनुकूल और सकारात्मक व्यवहार प्रदर्शित करने में सहायक हो। ऐसा ज्ञान जो व्यक्ति को इतना सक्षम बना दे कि वह अपनी दिनचर्या की जिंदगी में उन्हें इस्तेमाल करके अपने जीवन को एक सकारात्मक दिशा प्रदान कर सके।

विद्यार्थी जीवन में ऐसे जीवन कौशल सीखने में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि एक विद्यालय के सकारात्मक वातावरण में ही छात्र कई गतिविधियों के परोक्ष परिणाम के द्वारा महत्वपुर्ण सोंचविचार, प्रभावी संप्रेषण, भावनाओं पर नियंत्रण, निर्णय क्षमताए और समस्या समाघान जैसे जीवन कौशलों को सीखता है जो आगे चलकर उसे जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

सामाजिक एकता एवं समरसता : प्रच्छन्न पाठ्यचर्या सामाजिक एकता और समरसता के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए, जब हम स्कूलों में कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय दिवस मनाते हैं, तो यह न केवल छात्रों को घटनाओं के बारे में जागरूक करने के लिए होता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सद्भाव और एकजुटता के लिए आवश्यक मूल्यों और कौशल को विकसित करता है। यहां शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है ताकि वे अपने छात्रों को मूल्यवान नागरिक बनाने के लिए सहयोग, एकता, सहानुभूति और लोकतंत्र जैसे विभिन्न मूल्यों का एहसास करा सकें।

टिप्पणी

चरित्र निर्माण में सहायक : विद्यालय केवल शैक्षिक अवधारणाओं को ही सीखने का स्थान नहीं है बल्कि यह एक विद्यार्थी के जीवन का ऐसा महत्वपूर्ण पडघव है जहां उसके चरित्र निर्माण की नींव रखी जाती है। ऐसे में विद्यालय में शिक्षक आदर्श के रूप में परोक्ष तरीके से सम्मान, अनुशासन, ईमानदारी और सच्ची दया के भाव स्थापित करता है। शिक्षक कक्षा में हर दिन अच्छे चरित्र के उदाहरण प्रदान कर सकते हैं।

3.4.2 छात्रों के लचीलेपन में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की भूमिका

लचीलापन नकारात्मक जीवन की घटनाओं और चुनौतियों का सामना करने की क्षमता है। इसके द्वारा व्यक्ति किसी भी कठिन से कठिन परिस्थिति का समाना करने में और पुनः संतुलित अवस्था में वापिस आने की क्षमता रखता है। विद्यार्थियों में इस क्षमता का विकास करना आवश्यक है ताकि जीवन में वे हर परिस्थिति का समाना कर सकें और मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी स्वस्थ रह सकें।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संगठन (American Psychological Association) के अनुसार लचीलापन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम प्रतिकूल परिस्थितियों, आघात, त्रासदी, खतरों और यहां तक कि तनाव के महत्वपूर्ण स्रोतों – जैसे परिवार और रिश्तों की समस्याओं, गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं, या कार्यस्थल और वित्तीय तनावों का सामना करने की क्षमता रखते हैं।

एक गतिशील प्रणाली की वो क्षमता जो उस प्रणाली के कार्य, व्यवहार्यता, या उस प्रणाली के विकास के लिए खतरा पैदा करने वाली गडघ्बडघे को सफलतापूर्वक अनुकूलित करती है, लचीलापन कहलाती है। – (Ann S. Masten. Resilience in Development – Early Childhood As A Window of Opportunity)

लचीलापन एक ऐसी क्षमता और गतिशील प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सामान्य मनोवैज्ञानिक और शारीरिक कामकाज को बनाए रखते हुए अनुकूल रूप से तनाव और प्रतिकूलताओं पर काबू पाने की क्षमता का विकास होता है। — Gang, Adriana, Hagit, Joanna, Solara, Dennis, Aleksander. Understanding Resilience

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के द्वारा बच्चों में यह क्षमता विकसित की जा सकती है क्योंकि विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ न केवल विद्यार्थी शैक्षिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करते है अपितु जीवन जीने का कौशल भी सीखते हैं।

विद्यार्थियों में लचीलेपन की क्षमता किसी चीज को याद रखने के तरीके, गणना करने की विधि या फिर सामान्य तौर पर पढ़ाए जाने वाले तरीकों से नहीं सिखाई जा सकती है। इसमें दो सबसे महत्वपूर्ण तत्वों की आवश्यकता होती हैरू संवाद और जुड़ाव।

लचीलापन हमारे जीवन में स्वयं का निर्माण करने की एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे बच्चे धीरे–धीरे अपने आसपास घटित होने वाली घटनाओं के अनुभव वार्तालाप और समझ के अनुसार ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा छात्र धीरे–धीरे यह आत्मविश्वास पैदा कर लेते हैं कि उनमें किसी भी चुनौती का सामना करने की क्षमता है तथा वह किसी भी कठिनाई पर काबू पाने में योग्य और सक्षम हैं अर्थात वे लचीले बन जाते हैं।

टिप्पणी

लचीलेपन के कारकों के विकास में प्रच्छन्न पाठ्यचर्या की भूमिका

पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों के विकास की नींव रखता है।

कैहिल, बीडल, फैरेली, फोर्स्टर और स्मिथ (2014) के अनुसार लचीलेपन के निम्नलिखित अहम् कारक हैं,

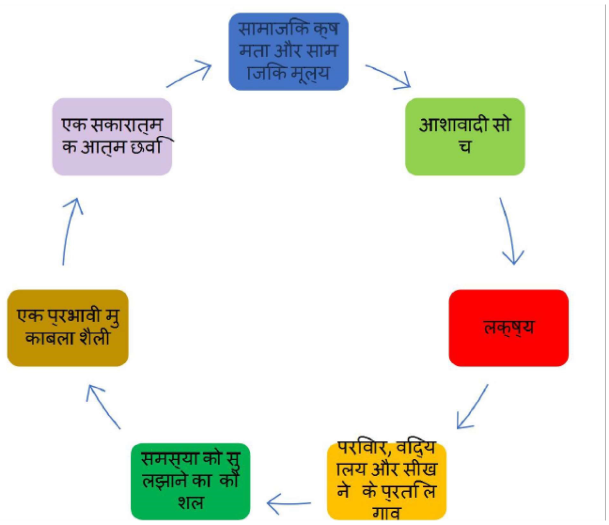

एक विद्यालय को लघु समाज के रूप में देखा जाता है। विद्यालय में छात्रों में सामाजिक सहयोग, सहनशीलता, अनुशासन, सहानुभूति और सामाजिक चेतना जैसे गुणों का विकास किया जाना सबसे महत्वपूर्ण उदेश्य माना गया है। विद्यालय में होने वाली कई सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के द्वारा छात्रों में समाज के प्रति भावनात्मक दृष्टिकोण का निर्माण स्वतः ही हो जाता है। विद्यालय में होने वाली अनेक गतिविधियां जिसमें प्रातः काल की प्रार्थना सभा तथा विशेष उत्सव पर कार्यक्रम का आयोजन, महान व्यक्तियों की जीवनी पर नाटक, खेल के मैदान में टीम वर्क व अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से परोक्ष रूप से छात्र इन सभी सामाजिक गुणों का समावेश अपने व्यक्तित्व में करते हैं। सामाजिक मूल्य किसी एक विषय से संबंधित नहीं होते हैं तथा न ही इन्हें किसी किताबी ज्ञान के द्वारा बच्चों में विकसित किया जा सकता है। इन सामाजिक मूल्यों और गुणों को विकसित करने का सबसे उत्तम तरीका विद्यालय में होने वाली गतिविधियों के माध्यम से छात्रों को अनुभव क्रिया के द्वारा किया जा सकता है।

छात्रों के व्यक्तित्व में विद्यालय के वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पडघ्ता है। प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की भूमिका वातावरण को सकारात्मक बनाने में एहम होती है। अच्छी सोच और उत्तम विचार सकारात्मक वातावरण को बनाने में बहुत सहायक होते हैं और ऐसे वातावरण को विद्यालय में शिक्षक छात्रों की प्रति संवेदनात्मक सोच एवं अपनत्व का भाव रखने से छात्रों में विद्यालय के प्रति सकारात्मक सोच उत्पन्न कर सकते हैं और शैक्षिक गतिविधियों के माध्यम से छात्र के मन में अपने समाज और राष्ट्र के प्रति भी सकारात्मक सोच का निर्माण कर सकते हैं। अधिगम प्रक्रिया के दौरान भी छात्रों का उत्साहवर्धन करना और उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करना भी उनमें सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर सकता है।

3.4.3 प्रच्छन्न पाठ्यचर्या में शिक्षक की भूमिका

टिप्पणी

छिपा हुए पाठ्यक्रम एक बच्चे की शिक्षा के आरंभिक काल से ही प्रभाव डालना शुरू कर देता है। जब एक बच्चा विद्यालय में प्रवेश लेता है तो उसका जीवन एक कच्चे घड़े की तरह होता है जिसे शिक्षक और विद्यालय का वातावरण जिस रूप और रंग में ढाल दें वही उसके भविष्य की दिशा निर्धारित करता है । विद्यालय में छात्र अपने पर्यावरण और अपने सहपाठियों के बारे में राय और विचार बनाना सीखते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे स्कूल में कार्य करने के लिए उपयुक्त तरीके सीखते हैं, वे यह भी सीखते हैं कि उनसे क्या अपेक्षा की जाती हैय उनका व्यवहार कैसा होना चाहिए, उनके व्यक्तित्व में किन गुणों का समावेश होना चाहिए इत्यादि। इन नजरिए और विचारों को किसी भी औपचारिक तरीके से नहीं सिखाया जाता है, इसलिए प्रच्छन्न पाठ्यक्रम में शिक्षक की भूमिका को एहम माना गया है क्योंकि एक शिक्षक ही छात्रों की उर्जा को सकारात्मक दिशा प्रदान कर सकता है। प्रच्छन्न पाठ्यक्रम न केवल सकारात्मक प्रभाव डालता है बल्कि अगर इसके नियोजन को सही तरीके से नहीं किया जाए तो इसकी दिशा नकारात्मक भी हो सकती है। हमारे स्कूलों में छिपे हुए पाठ्यक्रम के क्षेत्र जो छात्रों के दृष्टिकोण को ढालते हैं, उनमें लिंग, नैतिकता, सामाजिक वर्ग, रूढिवादिता, सांस्कृतिक अपेक्षाएं, राजनीति और भाषा जैसे मुद्दे मुख्य हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई शिक्षक विद्यालय में छात्रों के प्रति भेदभाव करता है तथा सामाजिक रुड़िवादी सोच के आधार पर छात्रों की योग्यता पर सवाल उठाता है तो इसका सीधा असर छात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, विद्यालय में लडध्कों और लड़कियों को लिंग भूमिकाओं, के आधार पर विभाजित करना, खेल कूद के विषय में सिर्फ लड़कों को प्रोत्साहित करना भी प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के नकारात्मक प्रभाव के उदाहरण हैं क्योंकि इसके द्वारा लड़कियों में हीनता का भाव उत्तपन होता है और समानता के विचार को ठेस पहुँचती है।

अतः प्रच्छन्न पाठ्यक्रम में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। छात्रों को मूल्यों को आत्मसात करने में मदद करने में विद्यालय का वातावरण और शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यालय में घटित होने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप में छात्र और शिक्षक दो मुख्य कारक हैं। अतः अधिगम प्रक्रिया के दौरान कई ऐसे मौके आते हैं जहाँ पर शिक्षक परोक्ष रूप से छात्रों को अनुशासन और व्यावहारिक जीवन के कौशल और मूल्यों को सीखने में मदद करता है। शिक्षण रणनीतियों का उपयोग शिक्षकों को सीखने के माहौल को प्रभावी बनाने में सक्षम बनाता है। निम्नलिखित बिंदु प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में शिक्षकों द्वारा छात्रों में सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के समावेश में सहायक है।

1. **सकारात्मक संबंध विकसित करना** : एक शिक्षक का कार्य कक्षा में अधिगम प्रक्रिया में छात्रों को सक्रिय करने के साथ–साथ छात्रों के साथ सकारात्मक संबंध विकसित करना भी होता है जब एक शिक्षक छात्रों के साथ सकारात्मक संबंध स्थापित करता है तो छात्र अपनी समस्याओं तथा अपने विचारों को खुलकर शिक्षक के समक्ष रखते हैं तथा कार्य में आने वाली कठिनाइयों और चुनौतियों से निपटने के उपाय पर बिना किसी झिझक के चर्चा करते हैं। यह सकारात्मक संबंध शिक्षक और छात्रों के बीच में तब स्थापित होता है जब शिक्षक छात्रों को यह अहसास करवाता है कि वह

टिप्पणी

उनकी सहायता के लिए हर वक्त उनके साथ है तथा वह उनके मनोभावों को भलीभांति समझता है। एक शिक्षक की भूमिका छात्र के जीवन में सर्वाधिक महत्व रखती है क्योंकि किसी भी छात्र के जीवन को सही दिशा प्रदान करने में और उसके व्यक्तित्व में सामाजिक गुणों के समावेश के लिए शिक्षक की भूमिका आदरणीय होती है।

2. सामाजिक एवं भावनात्मक कौशल विकास : सामाजिक एवं भावनात्मक कौशल विकास की परिभाषा के अनुसार यह जीवन कौशल सीखने के लिए एक प्रक्रिया है, जिसमें अपने आप को, अपने सामाजिक जीवन में दूसरों के प्रति आपका रवैया और जीवन में आने वाली चुनौतियों से निपटना और प्रभावी तरीके से काम करना शामिल है। जिस प्रकार घर में माता–पिता बच्चों के सामाजिक विकास की नींव रखते हैं उसी प्रकार विद्यालय में शिक्षक छात्रों में सामाजिक एवं भावनात्मक कौशल प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की सहायता से विकसित करते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षक कई ऐसी कार्यनीति का उपयोग कर सकता है जो कि प्रच्छन्न पाठ्यक्रम का हिस्सा होती है किन्तु शैक्षिक पाठ्यक्रम में भी उसका समावेश किया जा सकता है, जैसे छात्रों में एकाग्रता को बढ़ाना, उन्हें उनके आस–पास होने वाले परिवर्तनों के प्रति जागरूक बनाना, दूसरों के प्रति सहयोग की भावना रखना, अपने संवेगों को नियंत्रण में लेना और उन्हें उचित दिशा प्रदान करना तथा एक आदर्श के रूप में स्वयं का उदाहरण विद्यार्थियों के समक्ष रखना।

3. सकारात्मक भावनाओं को बढ़ावा देना : सकारात्मक भावनाओं का विकास एक शिक्षक परोक्ष रूप से अपने विषय के माध्यम से ही छात्रों में भली–भांति कर सकता है जिसके लिए शिक्षक द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय का हमारे दैनिक जीवन तथा समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा द्वारा किया जा सकमा है यदि एक शिक्षक अपने विषय से संबंधित चर्चा में अधिक से अधिक छात्रों को भागीदार बनाता है और उनके द्वारा दिए गए उदाहरणों और सुझावों पर चिंतन और मनन करता है तो प्रत्येक छात्र में एक सकारात्मक भावना का निर्माण होता है। जिसके द्वारा छात्र समाज में अपनी अहमियत को तथा अपनी जिम्मेदारी और कर्तव्यों को पहचानते हैं। इस प्रकार प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की सहायता से एक ओर शिक्षक अपनी शैक्षिक गतिविधियों को पूरा करता है वहीं दूसरी ओर बच्चों में सकारात्मक भावना का भी विकास करता है। ऐसे क्रियाकलाप और गतिविधियां करते समय शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक छात्र को कक्षा में अपने विचार रखने की स्वतंत्रता प्रदान करे तथा उसके दिए गए सुझावों पर छात्र को कार्य करने हेतु प्रोत्साहित भी करें।

4. छात्रों में संभावित क्षमता का विकास करना : एक कक्षा में छात्र अलग–अलग योग्यताओं और क्षमताओं के हो सकते हैं किंतु एक शिक्षक को बिना किसी सामाजिक और आर्थिक भेदभाव के प्रत्येक छात्र को आगे बढ़ने के समान अवसर प्रदान करने तथा सभी बच्चों को एक समान दृष्टि से देखने की आवश्यकता होती है। ऐसे बहुत से गुण हैं जिन्हें छात्र अपने शिक्षक के व्यवहार से भी ग्रहण करता है। अतः एक शिक्षक का प्रयास यह रहना चाहिए कि उसे अपनी कक्षा में शिक्षा ग्रहण कर रहे प्रत्येक छात्र की योग्यता और उसकी कार्यक्षमता के बारे में जानकारी हो तथा वह उसकी रूचि के अनुसार उसे आगे बढ़ने के मौके प्रदान कर सके। यह कार्य शिक्षक

अपनी कक्षा में विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय भी कर सकता है जिसमें छात्रों को विषय से संबंधित कार्य क्षेत्रों की जानकारी देना उन कार्य क्षेत्रों में अपेक्षित क्षमता एवं योग्यताओं पर चर्चा करना शामिल है।

टिप्पणी

5. अर्थपूर्ण जीवन का निर्माण : प्रच्छन्न पाठ्यक्रम छात्रों को उद्देश्य पूर्ण एवं अर्थ पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा भी देता है क्योंकि इसके माध्यम से छात्रों में ऐसे गुणों और मूल्यों का विकास होता है जिसके द्वारा छात्र अपने जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं। शिक्षा का अर्थ मात्र किताबी ज्ञान प्राप्त करना नहीं है अपितु समाज और राष्ट्र के प्रति, अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत होना तथा समाज कल्याण की भावना विकसित करना भी है। विद्यालय एवं कक्षा में होने वाली विभिन्न गतिविधियां छात्रों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक एवं नैतिक गुणों के समावेश की ओर प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए समाज कल्याण से जुड़े किसी व्यक्ति जैसे महात्मा बुद्व महात्मा गांधी जैसे विभिन्न राष्ट्र महापुरुषों और महिलाओं के जन्मदिन पर उनके जीवन और योगदान पर प्रार्थना सभा में की गई चर्चा, विद्यालय में मानवाधिकार दिवस विश्व शांति दिवस, स्वतंत्रता दिवस आदि पर कार्यक्रम आयोजित करना नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से संबंधित साहित्य पर पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित करना विभिन्न प्रकार के मूल्यों से संबंधित विषयों पर कला और चित्रकला प्रतियोगिताएं आयोजित करना जैसे कई कार्यक्रम छात्रों के जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

7. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम को निम्न में से किस ने परिभाषित किया है–
   (क) दुर्खीम, जैक्सन (ख) जेराल्ड बैलेंस
   (ग) मिलर एंड सेलर (घ) उपर्युक्त सभी
8. निम्न में से कौन प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की विशेषता है ?
   (क) मूल्य व आधारभूत सामाजिक कौशल का ज्ञान
   (ख) भावी जीवन की तैयारी
   (ग) चरित्र निर्माण, सामाजिक एकता एवं समरसता
   (घ) उपर्युक्त सभी
9. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षक निम्न में से किस गुण का विकास करने में सहायक होता है ?
   (क) सकारात्मक भावनाओं और संबंधों का विकास
   (ख) सामाजिक–भावनात्मक कौशल एवं अर्थपूर्ण जीवन निर्माण
   (ग) उपर्युक्त दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं

3.5 पाठ्यचर्या के प्रकार

पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान शिक्षा के दार्शनिक आधार में निहित होता है। जिसका उल्लेख निम्नलिखित हैं–

3.5.1 प्रकृतिवाद और पाठ्यचर्या

शिक्षा के दर्शन के रूप में प्रकृतिवाद 18 वीं शताब्दी में विकसित किया गया था। प्रकृतिवाद वास्तविकता की पूर्णता का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय प्रकृति को देता है। प्रकृतिवाद अलौकिकता जैसी किसी भी अवधारणा में विश्वास नहीं करता है। प्रकृतिवाद के अनुसार, भौतिक दुनिया ही वास्तविक दुनिया है। यह एकमात्र वास्तविकता है। प्रकृतिवाद प्रकृति से परे किसी भी चीज के अस्तित्व से इनकार करता है। प्रकृतिवाद का मानना है कि सब कुछ प्रकृति से आता है और प्रकृति की ओर लौटता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रकृतिवाद पारंपरिक व्यवस्था से अलग शिक्षा के रूप को देखता है।

प्रकृतिवाद शिक्षा की पारंपरिक व्यवस्था को बच्चों के लिए सही नहीं मानता है जहाँ पर बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता न मिले। प्रकृतिवाद में, अधिकतम स्वतंत्रता और केंद्रीय स्थिति बच्चे को दी जाती है। इस दर्शन का मानना है कि शिक्षा बच्चे के स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए। यह प्राकृतिक परिस्थितियों के निर्माण की बात करता है जिसमें बच्चे का प्राकृतिक विकास संभव हो।

प्रकृतिवाद दृढ़ अथवा अनन्य पाठ्यक्रम में विश्वास नहीं रखता है, अपितु प्रकृतिवाद ऐसे पाठ्यक्रम की अवधारणा में विश्वास रखता है, जिसके द्वारा बच्चे की प्रवृत्ति के अनुसार उसमें निहित क्षमताओं का प्राकृतिक रूप से विकास हो सके। प्रकृतिवाद ऐसे पाठ्यक्रम की रचना में विश्वास रखता है जो मनोवैज्ञानिक तौर पर आधारित हो और बच्चे में निहित जन्मजात प्रवृत्तियों को विकसित करने में सहायक हो। प्रकृतिवाद पाठ्यक्रम में छात्रों के पूर्व गृह ग्रहण किए गए अनुभवों को विशेष बल देने की बात करता है तथा नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा पर बल नहीं देता है। प्रकृतिवाद पढ़ाने की ऐसी विधियों पर बल देता है जो बच्चों को कक्षा की चारदीवारी से बाहर निकाल कर कार्य करके सीखने की प्रेरणा देता है। इसलिए प्रकृतिवाद कार्य करके सीखना, प्लेवे विधि, अवलोकन और प्रयोग का उपयोग जैसी विधियों एवं बच्चों में सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए प्रकृति की गोद में ले जाकर सीखने के अनुभव ग्रहण करने पर बल देता है।

3.5.2 व्यवहारवाद और पाठ्यचर्या

व्यवहारवाद एक शैक्षिक दर्शन है जो कहता है कि शिक्षा जीवन और विकास के बारे में होनी चाहिए। यानी शिक्षकों को छात्रों को ऐसी चीजें सिखानी चाहिए जो जीवन के लिए व्यावहारिक हों और उन्हें बेहतर लोगों के रूप में विकसित होने के लिए प्रोत्साहित करें। इसमें संतोषजनक ढंग से काम करने और व्यावहारिक परिणामों को स्वीकार करने की बात कही जाती है।

व्यवहारवाद पाठ्यक्रम के क्षेत्र में ऐसे पाठ्यक्रम को विकसित करने पर बल देता है जो उपयोगिता छात्रों की रुचि व अनुभव के एकीकरण के सिद्धांत पर आधारित हो।

टिप्पणी

व्यवहारवाद पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को व्यवहारवाद में शामिल करने की बात करता है जो बच्चों की जरूरतों और आगे आने वाले जीवन और भविष्य की अपेक्षाओं पर खरा उतरता हो, ऐसे विषय जिसके द्वारा विद्यार्थी आगे चलकर जीविकोपार्जन के विकल्प ढूंढ सके। इसके साथ ही व्यवहारवाद पाठ्यक्रम निर्माण के समय बच्चों की रुचि को भी ध्यान में रखने पर बल देता है जिससे बच्चे आसानी से पाठ्य सामग्री से ज्ञान को ग्रहण कर आत्मसात कर सकें। व्यवहारवाद इस बात पर भी बल देता है कि बच्चों को मिलने वाले शिक्षक अनुभव उनके ज्ञान को लंबे समय तक सक्रिय रखने में सहायक होते हैं तथा इसके द्वारा बच्चों में सृजनात्मकता, मौलिकता और विश्लेषण के कौशल विकसित होते हैं। परियोजना विधि वयवहारवाद के दर्शन का एक महत्वपूर्ण योगदान है जिसमें विद्यार्थियों को कार्य करके सीखने की प्रक्रिया में भाग लेने का मौका मिलता है, जिसके द्वारा छात्रों में रचनात्मकता और आत्मविश्वास का संचरण होता है।

व्यवहारवाद के अनुसार पाठ्यक्रम गतिविधि आधारित होना चाहिए जहां प्रत्येक छात्र गतिविधि कर सके और अनिरंतर सीख सके। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बच्चों के भविष्य के जीवन के लिए उपयोगी होना चाहिए तथा पाठ्यक्रम विकसित करते समय केंद्र में विद्यार्थी हो। विद्यार्थी को मिलने वाले अनुभव उसके ज्ञान को चिरस्थाई बनाते है। अतः पाठ्यक्रम में इन बातों को ध्यान में रखा जाना बहुत आवश्यक है।

3.5.3 आदर्शवाद और पाठ्यचर्या

आदर्शवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण विचार और ज्ञान को ही वास्तविकता का आधार मानता है। आदर्शवाद के जनक प्लेटो के अनुसार—मनुष्य ज्ञान की उत्पत्ति नहीं अपितु ज्ञान की खोज करता है। आदर्शवाद के अनुसार सत्य को तर्क, अंतर्ज्ञान और दिव्य रहस्योद्घाटन के माध्यम से पाया जा सकता है। पाठ्यक्रम के लिए, आदर्शवादी अवध ाारणा सीखने की प्रकिया को एक बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में देखती है। सीखने की प्रक्रिया में छात्र विचारों के साथ जुड़ते हैं। आदर्शवाद शिक्षा को एक अत्यधिक संरचित रूप में देखता है और ऐसे विषयों को पाठ्यक्रम में जोड़ने पर बल देता है जिनमें विचारों को केंद्र में रखा जाता है जैसे—कला शिक्षा। मानविकी को भी सबसे महत्वपूर्ण विषयों के रूप में देखा जाता है क्योंकि ये क्षेत्र विचारों से निहित होते हैं।

3.5.4 यथार्थवाद और पाठ्यचर्या

यथार्थवाद एक ऐसी विचारधारा है जो भौतिक जगत को सत्य मानती हैद्य हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से जिन भी वस्तुओं को देख सकते हैं अथवा अनुभव कर सकते हैं, वे सभी वास्तविक हैं अथवा सत्य हैं। यथार्थवाद, जैसा यह संसार है वैसा ही सामान्यतः उसे स्वीकार करने का विचार रखता है। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा की रूपरेखा का गठन सुनियोजित तरीके से होना चाहिए। शिक्षा व्यक्तियों की धारणा पर आधारित न होकर विज्ञान के आधार पर विकसित होनी चाहिए। यथार्थवादी पाठ्यक्रम भौतिक दुनिया, विशेष रूप से विज्ञान और गणित के विषय पर जोर देता है। शिक्षक एक अनुशासन के भीतर व्यवस्थित रूप से सामग्री का आयोजन और प्रस्तुतीकरण करता है, निर्णय लेने में मानदंडों के उपयोग का प्रदर्शन करता है। शिक्षण विधियां प्रदर्शन और पाठ के माध्यम से तथ्यों और बुनियादी कौशल की महारत पर ध्यान केंद्रित करती हैं। छात्रों को भी अवलोकन और प्रयोग का उपयोग कर, गंभीर और वैज्ञानिक रूप से

सोचने की क्षमता प्रदर्शित करनी चाहिए। पाठ्यक्रम से वैज्ञानिक रूप से संपर्क किया जाना चाहिए, वह मानकीकृत और अनुशासन पर आधारित होना चाहिए। आचरण के नियमों में प्रशिक्षण के माध्यम से चरित्र को विकसित किया जाता है। यथार्थवाद प्रायोगिक जीवन पर आधारित पाठ्यक्रम पर बल देता है जिसमें छात्रों को निरीक्षण एवं परीक्षण के अवसर मिल सकें तथा वे ज्ञान को सत्य की कसौटी पर पढ़ा सकें। यथार्थवाद छात्रों को व्यवहारिक ज्ञान देने वाले विषयों के साथ–साथ व्यवसायिक शिक्षा के समावेश पर बल देता है।

3.5.5 समझ और दृष्टिकोण विकसित करने हेतु उदार पाठ्यचर्या

उदार पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में बहु अनुशासनात्मक विषयों के प्रति समझ और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक माना जाता है।उदार पाठ्यक्रम विकसित करते समय उदार शिक्षा के सिद्धांतो और उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाता है। पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति बहु अनुशासनात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाता है। इस प्रकार का पाठ्यक्रम शिक्षण अधिगम की ऐसी प्रणाली पर बल देता है जो विद्यार्थियों को विविध विषयों के विकल्प प्रदान करे तथा छात्र पाठ्यक्रम के व्यापक क्षेत्र को समझ सकें।

उदार पाठ्यक्रम छात्रों को कई विषयों के साथ जुड़कर विभिन्न मुद्दों को अलग दृष्टिकोण से देखने का विकल्प प्रदान करता है जिसकी सहायता से छात्रों में विभिन्न विषयों के प्रति गहरी समझ और समस्याओं के बेहतर समाधान का सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में छात्रों को आजीवन सीखने, सहिष्णुता और अच्छे नागरिक के तौर पर आगे बढ़ने पर बल दिया जाता है। उदार पाठ्यक्रम में छात्रों को विभिन्न विषयों के माध्यम से जो ज्ञान अर्जित करने का मौका मिलता है उसके आधार पर छात्र आगे चलकर अपने लिए सही विषय का चुनाव कर सकते हैं और सभी विषयों को लेकर अपनी समझ और दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं। इसकी सहायता से छात्र एक विषय में अर्जित किए गए ज्ञान को दूसरे विषय के साथ जोड़कर भविष्य में आने वाली चुनौतियों के समाधान के बारे में भी सही तरीके से सोच सकता है।

उदार पाठ्यचर्या की विशेषताएँ

- विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान
- बौद्धिक जिज्ञासा और तार्किक क्षमता का विकास
- चुने हुए अनुशासन का गहन अध्ययन
- रचनात्मक समस्या को सुलझाने की क्षमता
- ज्ञान को संश्लेषित करने और स्थानांतरित करने की क्षमता
- अंतरसांस्कृतिक ज्ञान और मजबूत समझ
- विश्लेषणात्मक, सूचना साक्षरता कौशल नैतिक तर्क
- अंतःविषय शिक्षा
- सीखने के लिए अंतर दृष्टिकोण

टिप्पणी

3.5.6 आजीविका के लिए कौशल केंद्रित व्यावसायिक पाठ्यचर्या

व्यावसायिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जिसमें विद्यार्थियों को विद्यालय स्तर पर ही कुछ विशेष कौशलों से अवगत व सक्षम कराया जाता है ताकि भविष्य में ये छात्र अपने जीविकोपार्जन के लिए उन कौशलों का इस्तेमाल कर सकें। भारत में व्यावसायिक शिक्षा की अवधारणा नई नहीं है। 1964 में कोठारी कमीशन के द्वारा भी व्यावसायिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया गया था, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया था कि ऐसे बहुत से जीविकोपार्जन के क्षेत्र हैं, जहां पर उच्च शिक्षा की डिग्री की आवश्यकता न होकर व्यक्ति के कौशल युक्त होने की अधिक आवश्यकता है। छात्रों को विद्यालय स्तर पर ही व्यावसायिक शिक्षा का एक अलग विकल्प प्रदान किया जाना चाहिए। वर्तमान में राज्य स्तर पर शिक्षा बोर्ड और केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

व्यावसायिक शिक्षा का पाठ्यक्रम छात्रों को ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण और मूल्यों की एक विस्तृत श्रृंखला विकसित करने में मदद करता है।

कार्य निर्वाह क्षमता पर आधारित पाठ्यक्रम व्यावसायिक शिक्षा के लिए सहायक होता है इस पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में किसी विशेष कौशल के प्रति ज्ञान प्राप्त कर उसमें कार्य निर्वाह की क्षमता विकसित की जाती है। 'इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ एजुकेशन' के अनुसार कार्य निर्वाह क्षमता पर आधारित पाठ्यक्रम ज्ञान कौशल और छात्रों का कार्य के प्रति दृष्टिकोण विकसित करने पर बल देता है। यह पाठ्यक्रम परंपरागत पाठ्यक्रम से अलग होता है, जहां छात्रों को परंपरागत तरीके से सभी विषयों का ज्ञान दिया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा का पाठ्यक्रम छात्र केंद्रित होता है और उसे समाज की जरूरतों के अनुकूल बनाया जाता है ताकि आने वाले समय में छात्र अपने ज्ञान और कौशल के द्वारा अपना व्यवसाय चुन सकेंद्य वर्तमान में सीबीएसई (CBSE) के द्वारा वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में 40 व्यावसायिक पाठ्यक्रम और माध्यमिक स्तर पर 4 व्यावसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। इनमें से कई पाठ्यक्रम पेशेवर संगठनों के सहयोग से उद्योग के लिए कुशल जनशक्ति बनाने के लिए पेश किए जाते हैं, ताकि युवा पीढ़ी के कौशल और प्रवीणता को उन्नत किया जा सके और विभिन्न करियर विकल्पों के बारे में ज्ञान और जागरूकता प्रदान की जा सके। एक छात्र चुने हुए क्षेत्र में कौशल बढ़ाने के लिए सामान्य शिक्षा के साथ–साथ योग्यता आधारित कौशल सीखने का लाभ उठाने के लिए चुन सकता है। इसके अलावा, ये पाठ्यक्रम उन्हें किसी विशेष पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करने के साथ–साथ उपलब्ध नए रास्तेधविकल्पों का पता लगाने की अनुमति देते हैं।

3.5.7 मिश्रित पाठ्यचर्या

मिश्रित पाठ्यक्रम से अभिप्राय ऐसे पाठ्यक्रम से है जो किसी विशेष विषय कौशल ज्ञान एवं योग्यता पर अधारित न होकर शिक्षा के सभी कारकों का समावेश कर विद्यार्थियों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को छात्र केंद्रित बनाने के साथ–साथ विषय आधारित तथा कौशल एवं समाज की जरूरतों को ध्यान में रखकर विकसित किया जाता है। मिश्रित पाठ्यक्रम किसी विशेष कौशल या किसी

विशेष विषय में प्रवीणता हासिल करने में सहायक नहीं होता है अपितु सामान्य जानकारी को बढ़ावा देने हेतु और ज्ञान अर्जित करने के संबंध में मिश्रित पाठ्यक्रम के लाभ देखे जा सकते हैं।

टिप्पणी

3.5.8 विचारधारा और पाठ्यचर्या का सम्बन्ध

विचारधारा और पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम में सम्बन्ध को समझने से पूर्व विचारधारा का अर्थ समझना आवश्यक है। एक विचारधारा किसी समूह या व्यक्ति की राय या मान्यताओं का एक संग्रह होता है। अकसर विचारधारा राजनीतिक मान्यताओं या विचारों का ऐसा संग्रह होता है जो किसी विशेष संस्कृति की विशेषता को संदर्भित करता है।उद्धरण के लिए पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और मार्क्सवाद ये सभी विचारधाराएं हैं। विचारधारा के माध्यम से व्यक्ति दुनिया को देखता है। यह किसी भी व्यक्ति के मूल्यों, विश्वासों, मान्यताओं और अपेक्षाओं का समूह है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों और कार्यों को दिशा प्रदान करता है तथा अपने कार्यों के द्वारा समाज को भी अपनी विचारधारा से जोड़ने का प्रयास करता है।

ब्रिटिश साहित्यिक सिद्धांतकार टेरी ईगलटन ने विचारधारा को समाजशास्त्र में एक मौलिक अवधारणा के रूप में देखते हुए विचारधारा के बारे में कहा,

"Ideology is a system of concepts and views which serves to make sense of the world while obscuring the *social interests* that are expressed therein, and by its completeness and relative internal consistency tends to form a *closed* system and maintain itself in the face of contradictory or inconsistent experience."

विचारधारा समाजशास्त्र के अनुसार एक ऐसी मौलिक अवधारणा है जो समाज को संगठित करने के कार्य के साथ–साथ सामाजिक ढांचे, आर्थिक व्यवस्था यहाँ तक कि राजनैतिक व्यवस्था को शक्तिशाली बनाती है। जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स को समाजशास्त्र के विषय में विचारधारा के सिद्धांतिक रूप को तैयार करने का श्रेय दिया जाता है। उनके अनुसार विचारधारा समाज के उत्पादन के तरीके से उभरकर सामने आती है उदाहरण के लिए पूंजीवाद एक ऐसी विचारधारा है जो समाज में उत्पादन के आर्थिक रूप को उजागर करती है।

शिक्षा किसी भी समाज में विचारधारा को संचारित करने में सहायक होती है। बहुत से समाजशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि विद्यालय पाठ्यक्रम वैचारिक संदेशों का वाहक होता है। हम विद्यालय में क्या पढ़ाते हैं, किस प्रकार की शिक्षा प्रदान करते हैं, इस प्रक्रिया से विद्यार्थियों का एक विचारधारा के अनुरूप समाजीकरण होता है। समाज की विचारधारा का असर कई प्रकार से पाठ्यवस्तु में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए देश, समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक विचारधारा को देखें तो कई विद्यालय संबंधी विषयों में इसका प्रभाव दिखाई देता है, जैसे किसी पाठ्यवस्तु में पुरुष की स्त्री की तुलना में अधिक मजबूत भूमिका को दर्शाना, कई किताबों में चित्र के माध्यम से भी महिला को मात्र घर के कार्य करते हुए दर्शाना तथा पुरुष द्वारा घर से बाहर कार्य करना अथवा व्यापार करते हुए दिखाना। इस प्रकार के कई उदाहरण गणित विज्ञान या सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में देखने को मिलते हैं, जो लिंग संबंधी रूढ़िवादी विचारधारा का प्रतीक है। इसी प्रकार विद्यालय स्तर पर न केवल औपचारिक

टिप्पणी

पाठ्यक्रम विचारधारा से प्रभावित होते हैं अपितु प्रच्छन्न पाठ्यक्रम भी वैचारिक संदेशों का संवाहक होता है। प्रच्छन्न पाठ्यक्रम अनेक गतिविधियों द्वारा विचारधारा को छात्रों के मस्तिष्क में प्रभावित करता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में शिक्षक की विचारधारा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि शिक्षक की विचारधारा समाज – उन्मुखी होती है तो विद्यार्थी भी अच्छे कार्य की प्रेरणा लेकर आगे बढ़ाते हैं अन्यथा रूढ़िवादी विचारधारा से विद्यार्थी एवं समाज का ह्रास होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

10. उदार पाठ्यक्रम की विशेषताएं हैं–
    (क) विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान
    (ख) रचनात्मक समस्या को सुलझाने की क्षमता
    (ग) अंतर सांस्कृतिक ज्ञान और मजबूत समझ
    (घ) उपर्युक्त सभी
11. 1964 में किस कमीशन के द्वारा व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया था ?
    (क) कोठारी कमीशन (ख) राष्ट्रिय शिक्षा नीति
    (ग) नवीन शिक्षा नीति (घ) माध्यमिक शिक्षा आयोग

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (घ)
3. (ग)
4. (घ)
5. (घ)
6. (क)
7. (घ)
8. (घ)
9. (ग)
10. (घ)
11. (क)

3.7 सारांश

किसी भी समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण इकाई है। शिक्षा के द्वारा न केवल नैतिक और सामाजिक गुणों का विकास छात्रों में किया जाता है अपितु इसके माध्यम से राष्ट्र निर्माण हेतु विद्यार्थियों को तैयार भी

टिप्पणी

किया जाता है। समाज में व्याप्त कुरीतियां, समस्याएं तथा आने वाली चुनौतियों का सामना करने की क्षमता शिक्षा के माध्यम से ही विकसित की जा सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी 21वीं सदी में एक ऐसे मजबूत शिक्षा तंत्र के निर्माण की योजना लेकर आई है, जिसके द्वारा न केवल शिक्षा तंत्र को मजबूती प्रदान की जाए अपितु छात्रों में भारतीय ज्ञान–विज्ञान की परंपरा को भी समाहित किया जाए। एक ऐसा शिक्षा तंत्र जो छात्र केंद्रित हो तथा उसमें 21वीं सदी के कौशल भी उत्पन्न करने का सामर्थ्य हो। 21वीं सदी के कौशल और सामाजिक एवं नैतिक मूल्य किस प्रकार छात्रों में अंतरनिर्विष्ट किए जाएं उसके लिए हमें सर्वप्रथम जिस चिज की आवश्यकता पड़ती है वह है पाठ्यक्रम।

शिक्षा को ज्ञान और कौशल के विकास के प्राथमिक साधन के रूप में देखा जाता है। ज्ञान और कौशल मानव पूंजी सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व है इसलिए पाठयक्रम के माध्यम से ही विद्यार्थिओं की समझ को विकसित करने और ऐसे कौशल विकसित करने का मौका मिलता है जिसके द्वारा किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है। एक निश्चित पाठयक्रम होने के कारण विद्यार्थी उत्पादकता और रचनात्मकता के द्वारा समाज को व्यापक सामाजिक लाभ की ओर ले जाता है।

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम एक ऐसी अवधारणा है जिसके माध्यम से कई ऐसी बातें और गुण बच्चों को सिखाये जाते हैं जो उनके सीखने और समझने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। यह अवधारणा अकसर अनकही और बिना किसी विषय से सम्बंधित होती है। किताबों के अलावा भी बच्चे कई अन्य तरीकों से भिन्न–भिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं विद्यालय का वातावरण और शिक्षकों का व्यवहार इस प्रकार की अवधारणा में अहम् भूमिका निभाता है।

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम विद्यालय शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। इस पाठ्यचर्या के अंतर्गत ऐसी गतिविधियां शामिल होती हैं। जो अनपेक्षित रूप से कक्षा के भीतर एवं बाहर होने वाली गतिविधियों से जुड़ी हुई होती हैं। इस पाठ्यचर्या में औपचारिक पाठ्यचर्या की तरह पूर्व निर्धारित गतिविधियां तथा पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं होता है अपितु इस पाठ्यचर्या का सीधा संबंध मानदंडों और मूल्यों के संचरण से संबंधित होता है। इसके माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य और समाज द्वारा अपेक्षित व्यवहार का संचरण कर सकता है। प्रच्छन्न पाठ्यचर्या विद्यार्थियों में भावनाओं, दृष्टिकोण, मूल्य, आदतों और समाजिक क्षमताओं के अधिग्रहण में सहायक होता है।

प्रच्छन्न पाठ्यक्रम औपचारिक पाठ्यक्रम से बिल्कुल अलग होता है और इसकी शुरुआत विद्यार्थी जीवन के आरंभ से ही हो जाती है। इसके माध्यम से विद्यार्थी किसी विशेष विषय से संबंधित अपनी राय, अपने विचार को एक रूप देते हैं तथा इसके माध यम से समाज में अपेक्षित व्यवहार से संबंधित कई मूल्यों का समावेश भी छात्रों के व्यक्तित्व का हिस्सा बनता है। उदाहरण के लिए छात्र को विद्यालय में किस प्रकार का व्यवहार करना है अपने साथियों के साथ किस प्रकार बातचीत करनी है अपने अध यापकों का किस तरह से आदर करना है तथा अनुशासन संबंधी कई और चीजें भी छात्र प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं। एक विद्यार्थी अपने विद्यालय शिक्षा के वर्षों

टिप्पणी

में अपने एटीट्यूड (दष्टिकोण) और अपने विचारों से संबंधित कई ऐसी बातें सीखता है जिनका कोई औपचारिक पाठ्यक्रम नहीं होता है। इस तरह के पाठ्यक्रम से मुख्यतया छात्रों में मूल्यों के विकास एवं समाज में प्रचलित नैतिक विषय, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक भिन्नता, रूढ़िवदी लैंगिकता और भाषाओं से संबंधित भी कई चीजें छात्र प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं।

व्यावसायिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जिसमें विद्यार्थियों को विद्यालय स्तर पर ही कुछ विशेष कौशलों से अवगत व सक्षम कराया जाता है ताकि भविष्य में ये छात्र अपने जीविकोपार्जन के लिए उन कौशलों का इस्तेमाल कर सकें। भारत में व्यावसायिक शिक्षा की अवधारणा नई नहीं है। 1964 में कोठारी कमीशन के द्वारा भी व्यावसायिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया गया था, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया था कि ऐसे बहुत से जीविकोपार्जन के क्षेत्र हैं, जहां पर उच्च शिक्षा की डिग्री की आवश्यकता न होकर व्यक्ति के कौशल युक्त होने की अधिक आवश्यकता है। छात्रों को विद्यालय स्तर पर ही व्यावसायिक शिक्षा का एक अलग विकल्प प्रदान किया जाना चाहिए। वर्तमान में राज्य स्तर पर शिक्षा बोर्ड और केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **अंतरनिर्विष्ट** : समझ में आना।
- **पाठ्यक्रम** : पाठ्य पुस्तकों का क्रम जिसके अनुसार पुस्तकें पढ़नी होती हैं।
- **क्रियान्वयन** : कार्य रूप में लाना।
- **अंतर्निहित** : अंदर छिपा हुआ प्रच्छन्न पाठ्यक्रम।
- **प्रच्छन्न पाठ्यक्रम** : अलिखित पाठ्यक्रम।
- **छात्रों में लचीलापन** : समयानुसार निर्णय लेने की क्षमता।
- **अप्रत्यक्ष** : जो दिखाई न द।
- **मानकीकृत** : मानक रूप में लाया हुआ।
- **संवाहक** : ले जाने वाला।

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्य बताइए।
2. नए पाठ्यक्रम से जो अपेक्षाएं हैं उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क 2005 (NCF 2005) द्वारा पाठ्यक्रम विकास हेतु प्रस्तावित पांच मार्गदर्शक सिद्धांतों का परिचय दीजिए।
4. पाठ्यक्रम योजना में संस्कृति किस प्रकार से महत्वपूर्ण कारक है, संक्षेप में बताएं।

5. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम क्या होता है ? संक्षिप्त परिचय दीजिए।
6. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
7. छात्रों के लचीलेपन में प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की क्या भूमिका होती है?
8. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम में शिक्षक की भूमिका के महत्व के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।
9. उदार पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में विषयों के प्रति समझ और सकारात्मक दष्टिकोण विकसित करने में किस प्रकार से सहायक है।
10. व्यावसायिक शिक्षा से क्या अभिप्राय है संक्षेप में बताइए।
11. मिश्रित पाठ्यक्रम पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषाओं का विस्तृत विवरण दीजिए।
2. नए पाठ्यक्रम की आवश्यकता, उद्देश्यों, निर्माण और क्रियान्वयन में शिक्षकों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. पाठ्यक्रम का शिक्षाशास्त्र, पुस्तकों एवं विषयवस्तु से संबंधों पर प्रकाश डालिए।
4. पाठ्यक्रम के विभिन्न आयामों, उद्देश्यों और विकास में राज्य की महत्ता का विस्तृत विवेचन कीजिए।
5. पाठ्यक्रम के कार्यक्षेत्र के विषय में विस्तारपूर्वक विवरण दीजिए।
6. पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक अंतर्निहितता के महत्व को विस्तार से वर्णित कीजिए।
7. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के महत्व का विस्तृत विवेचन कीजिए।
8. लिंग और वंचित समूहों के संदर्भ में कुछ पाठ्यपुस्तकों और कक्षा–गत अभ्यासों के प्रभाव की समीक्षा कीजिए।
9. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम की भूमिका और लचीलेपन पर प्रकाश डालिए।
10. प्रच्छन्न पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में शिक्षकों की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
11. टिप्पणी लिखिए–

    (क) उदार पाठ्यक्रम, (ख) व्यावसायिक पाठ्यक्रम
12. विचारधारा और पाठ्यक्रम में संबंध को प्रतिपादित कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Aggarwal, J.C. 2010. *Theory and Principles of Education* (13th edition). Noida: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Sharma, G.R. 2003. *Trends in Contemporary Indian Philosophy of Education: A Critical Evaluation.* New Delhi: Atlantic Publishers & Dist.
- Samuel, Ravi. 2015. *Education in Emerging India*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd.
- Sharma, A.P. 2010. *Indian & Western Educational Philosophy*. New Delhi: Pustak Mahal.

टिप्पणी

- Aggarwal, J.C. 2005. *Teacher and Education in a Developing Society* (4th edition). New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Dhawan, M.L. 2005. *Philosophy of Education*. New Delhi: Gyan Books Pvt. Ltd.
- Brubacher, J. S. 1969. *Modern Philosophy of Education*. New Delhi: McGraw Hill.
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- अदिर कोहेन (1983), 'एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ मार्टिन बूबर', एसोशिएटिड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
- एन.आर. स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी (2008), 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- रमन बिहारी लाल (2007), 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार' रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- दास, आर.सी. (1984), 'करिकुलम एंड इवैल्यूएशन', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1975), 'दस साल स्कूल के लिए पाठ्यक्रम – एक फ्रेमवर्क', नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1986), राष्ट्रीय एकता के दिशा निर्देशों के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या– एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्याः एक फ्रेमवर्क (संशोधित संस्करण), एनसीईआरटी।
- एनसीईआरटी (2000), स्कूल शिक्षा, नई दिल्ली के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा।

इकाई 4 पाठ्यचर्या और उत्पादक कार्य

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य की समझ
4.2.1 भारतीय शिक्षा में मूर्त वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करने हेतु उत्पादक गतिविधि की परिकल्पना
4.2.2 वर्तमान समय में कार्य की बदलती प्रकृति
4.2.3 क्या शिक्षा के साथ 'कार्य' असंगत है?
4.3 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा
4.3.1 शिक्षा में उत्पादक कार्य की गांधीवादी धारणा और बेसिक शिक्षा
4.3.2 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा के कार्यान्वयन के अनुभव की समीक्षा
4.3.3 क्या हम पारंपरिक शिल्पों को आधुनिक औद्योगिक उत्पाद के साथ प्रतिस्थापित कर सकते हैं?
4.3.4 कार्य शिक्षा की गांधीवादी धारणा
4.4 पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा
4.4.1 पाठ्यचर्या में कार्य को शामिल करने के लाभ
4.4.2 वास्तविक जीवन की स्थितियों के संदर्भ में ज्ञान, कौशल और मूल्यों को एकीकृत करने में कार्य अनुभव की भूमिका
4.4.3 पाठ्यचर्या से कार्य शिक्षा के अभाव के परिणाम
4.4.4 क्या बच्चों को अपनी पाठ्यचर्या स्वयं निर्धारित करनी चाहिए?
4.4.5 पाठ्यचर्या मूल्यांकन
4.5 व्यावसायिक शिक्षा
4.5.1 भारत में व्यावसायिक शिक्षा
4.5.2 उदार शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा
4.5.3 सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के संयोजन की संभावना
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

बच्चे अपने दैनिक जीवन की परिस्थितियों से बहुत कुछ सीखते हैं। नई–नई वस्तुएं उन्हें सदैव आकर्षित करती हैं। अपने आस–पास के परिवेश और घटनाओं को देखकर उनमें अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं उत्पन्न होती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वह अपने घर, परिवार, विद्यालय ओर आस–पास के अनेक उत्पादक कार्यों में शामिल होता है जिससे न केवल उसकी जिज्ञासा शांत होती है अपितु उसमें दूसरों की सहायता करने की प्रवृत्ति भी विकसित होती है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए ही शिक्षा प्रणाली को उत्पादक गतिविधियों से जोड़ने के लिए स्कूली शिक्षा में कार्य शिक्षा को सम्मिलित करना

आवश्यक समझा गया। कार्य शिक्षा शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह विद्यार्थियों में ज्ञान और कौशल दोनों का विकास करती है तथा भविष्य में आत्मनिर्भर बनने में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। कार्य शिक्षा विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने के अवसर प्रदान करती है। यह विद्यार्थियों को अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम बनाती है।

प्रस्तुत इकाई में उत्पादक गतिविधियों के रूप में कार्य की समझ, महात्मा गांधी की उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा संबंधी धारणा, पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के विषय में अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य शिक्षा के महत्व को समझ पाएंगे;
- महात्मा गांधी की कार्य शिक्षा संबंधी धारणा से अवगत हो पाएंगे;
- पाठ्चर्या में कार्य शिक्षा की आवश्यकता के विषय में जान पाएंगे;
- व्यावसायिक शिक्षा से भलीभांति परिचित हो पाएंगे।

4.2 एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य की समझ

भारत में शिक्षा प्रणाली को अधिक यथार्थवादी और उत्पादक बनाने और शिक्षा और उत्पादकता के बीच की कड़ी को मजबूत करने के लिए स्कूली शिक्षा के सभी चरणों में कार्य को शामिल करने की आवश्यकता महसूस की गई। कार्य शिक्षा के द्वारा छात्रों में कौशल और मूल्यों के विकास की कल्पना को सार्थक रूप देने के लिए और छात्रों की भविष्य में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और उत्पादकता में सम्बन्ध स्थापित करने पर जोर दिया गया। उत्पादक कार्य शिक्षा सामुदायिक सेवा और सामाजिक कार्यों के माध्यम से देश के आर्थिक विकास को तेज करने में भी सहायक है।

4.2.1 भारतीय शिक्षा में मूर्त वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करने हेतु उत्पादक गतिविधि की परिकल्पना

भारत में शिक्षा को उत्पादक गतिविधि के माध्यम से कार्य शिक्षा के साथ जोड़ने की परिकल्पना राष्ट्रीय शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964–66 की गई। कमीशन द्वारा इस बात की सिफारिश की गई कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय विकास हेतु उत्पादकता के साथ जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। अतः भारतीय शिक्षा के ढांचे में कार्य अनुभव की अवधारणा को जोड़ा गया। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के अनुसार उस समय भारत में शिक्षा कुछ वर्ग विशेष के लोगों तक ही पहुंच में थी। उसे जनमानस तक पहुंचाने के लिए बहुत अधिक संसाधनों की आवश्यकता थी ऐसे में आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई कि यदि शिक्षा को उत्पादकता के साथ जोड़ा जाए तो राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी के कई विकल्प खुलेंगे जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा मिलेगा और अंततः संसाधनों की कमी भी कम या खत्म की जा सकेगी। शिक्षा और उत्पादकता के बीच संबंध स्थापित करने के लिए आयोग द्वारा निम्नलिखित सुझाव दिए गए–

- शिक्षा और संस्कृति में विज्ञान को बुनियादी घटक बनाना
- माध्यमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण करना जिसके द्वारा समाज में उद्योग कृषि और व्यापार की जरूरतों को पूरा करने में सहायता मिले
- भारतीय समाज की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए कृषि और संबंधित क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देना तथा विभिन्न अनुसंधान के माध्यम से उत्पादकता को बढ़ावा देना

ईश्वरभाई पटेल समिति 1977

ईश्वर भाई पटेल समिति द्वारा 1977 में सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाने का प्रस्ताव दिया गया। सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य को उद्देश्य पूर्ण अर्थपूर्ण सार्थक कार्य के रूप में देखा गया जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं या सेवाएं समुदाय के लिए उपयोगी हो सकती हैं। सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य का अर्थ : "सामाजिक" शब्द उस बच्चे को संदर्भित करता है जिसने न्यूनतम स्तर की शिक्षा प्राप्त की है, वह सामाजिक और कार्य कौशल के संबंध में अपने समुदाय में कुशलतापूर्वक कार्य करने में सक्षम होगा और तात्कालिक समूह में समायोजन के संदर्भ में भी। "उपयोगी" शब्द गतिविधियों की कार्यात्मक प्रकृति और गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले उत्पादों को संदर्भित करता है। शिक्षा में "उत्पादक कार्य" सीखने की कोई भी गतिविधि जिसके परिणामस्वरूप कुछ उत्पाद तैयार किये जाएं जो समाज द्वारा उपभोग्य हों।

समिति द्वारा उत्पादक कार्य को सीखने के निम्नलिखित उद्देश्य बताये गए–

उत्पादक कार्य सीखने के उद्देश्य

- छात्रों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से मैनुअल काम करने को तैयार करना है।
- छात्रों को कार्य की दुनिया से अवगत करवाना और समुदाय के लिए सेवा कार्य और श्रमिकों के लिए सम्मान की भावना विकसित करना।
- कार्य शिक्षा के द्वारा समाज के जागरूक नागरिक की भांति योगदान देना और समाज में लोगों के प्रति सहायता का भाव रखना।
- टीम वर्क के सकारात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक रूप से वांछनीय मूल्यों जैसे आत्मनिर्भरता, श्रम की गरिमा, सहिष्णुता, सहयोग, सहानुभूति का विकास करना।
- कार्य के विभिन्न रूपों में शामिल सिद्धांतों को समझना।
- छात्रों को उत्पादक कार्य में तेजी से भाग लेने और सीखने की प्रक्रिया के दौरान कमाने के अवसर भी प्रदान करना।
- छात्रों में काम करने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना।
- सामाजिक और सामुदायिक सेवा प्रदान करना।
- समुदाय को वैज्ञानिक प्रगति के प्रति जागरूक करना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करना।

टिप्पणी

- समुदाय की दिन–प्रतिदिन की समस्याओं को हल करने के लिए व्यावसायिक ज्ञान सीखना।
- राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में भागीदारी और राज्य और राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति।

उत्पाद के रूप में मूर्त वस्तुओं और सेवा कार्यों का महत्व

सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण उत्पादक कार्य या तो किसी प्रकार की मूर्त वस्तु को तैयार करता है या सेवा कार्य द्वारा कार्य की उपयोगिता को सार्थक रूप दिया जाता है।

उत्पादन केंद्रित गतिविधियों के उदाहरण कुछ मूर्त वस्तुएं हैं और सेवा उन्मुख गतिविधियों में परिवहन, संचार और कार्यालय का काम शामिल है। यह समुदाय के लिए उपयोगी है– जब कोई भी काम स्कूल या समुदाय के लिए किया जाता है और जिसके परिणामस्वरूप समुदाय में विद्यालय, छात्रों और शिक्षकों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है।

4.2.2 वर्तमान समय में कार्य की बदलती प्रकृति

वर्तमान समय में संयोजकता और संज्ञानात्मक प्रौद्योगिकी के विकास के कारण काम की प्रकृति बदल रही है। संज्ञानात्मक प्रौद्योगिकियों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता में एक निरंतर प्रगति के कारण समाज की आवश्यकताओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।विश्व विकास रिपोर्ट 2019 के अनुसार वर्तमान समय में कार्य की प्रकृति के बदलने का कारण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर विकास को माना जा सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि तकनीकी प्रगति से कार्य की प्रकृति में निरंतर बदलाव आता रहता है और उसी के अनुसार बाजार का विस्तार होता है और समाज विकसित होते हैं। प्रौद्योगिकी के विकास से कार्य करने के नए अवसर पैदा होते हैं तथा नए रोजगार का सृजन होता है। इसके साथ–साथ उत्पादकता बढ़ाने और प्रभावशाली सामाजिक सेवाएं प्रदान करने का मार्ग भी प्रशस्त होता है।

वर्तमान समय में कार्य की प्रकृति तेजी से बदल रही है। पहले जो काम श्रमिक हाथों द्वारा करते थे वही काम आज मशीनों के द्वारा किया जाने लगा है जिससे कम समय में उत्पादकता को बढ़ाने में मदद मिलती है। काम की प्रकृति में परिवर्तन कुछ मायनों में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में अधिक है जहां प्रौद्योगिकी व्यापक है और श्रम बाजार औपचारिकता के उच्च स्तर से शुरू होते हैं। हालांकि, उभरती अर्थव्यवस्थाएं भी काफी समय से कार्य में आ रहे बदलावों का सामना कर रही हैं।

समाज में कार्य की बदलती प्रकृति के अनुसार ही शिक्षा को भी ऐसे कार्यों से जोड़ने की आवश्यकता है जिससे छात्र शिक्षा पूरी करने के पश्चात जीविकोपार्जन के विकल्प ढूंढ सकें। विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा में नए विकल्प तलाशने की आवश्यकता है तथा ऐसे कौशल विकशित करने की आवश्यकता है जिससे कि कार्य की बदलती प्रकृति के अनुसार छात्र स्वयं को कार्य हेतु सक्षम बना सकें।

4.2.3 क्या शिक्षा के साथ 'कार्य' असंगत है?

कार्य शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण और सार्थक शारीरिक श्रम माना गया है, जो शिक्षण प्रक्रिया के आंतरिक भाग के रूप में आयोजित की जाती है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी

शिक्षा व्यवस्था का विकास करना होता है जो विद्यार्थियों को अपनी प्रतिभा को विकसित करने का अवसर प्रदान करे। इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि शारीरिक श्रम को शिक्षा के साथ जोड़ा जाए।

टिप्पणी

शिक्षा के साथ कार्य के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है–

उद्देश्य पूर्ण कार्य

कार्य करने से पूर्व यदि छात्रों को यह जानकारी हो कि कार्य क्यों किया जा रहा है तथा किस उद्देश्य के लिए किया जा रहा है तो उस कार्य को पूर्ण दक्षता के साथ करने का अवसर छात्रों को मिलता है। अतः कार्य को शिक्षा का अंग बनाते समय योजना विश्लेषण और विस्तृत तैयारी की आवश्यकता होती है। कार्य शिक्षा का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए तथा इसका दायरा केवल यांत्रिक कौशल तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि प्रौद्योगिकी पर आधारित प्रगतिशील समाज की जरूरतों और अपेक्षाओं के अनुसार भी होना चाहिए।

अर्थ पूर्ण कार्य

कार्य शिक्षा को अर्थ पूर्ण कार्य के तौर पर देखा जाता है क्योंकि इसके द्वारा छात्र अपने समुदाय विशेष की आवश्यकताओं को जानने का प्रयास करते हैं। इसे अर्थपूर्ण इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ संबंध स्थापित किया जाता है। जैसे– भोजन, कपड़ा, आश्रय, स्वास्थ्य, स्वच्छता, मनोरंजन और समाज सेवा।

शारीरिक श्रम का महत्व

शारीरिक श्रम को उत्पादकता से जोड़कर देखने का एक उद्देश्य छात्रों में श्रमदान की गरिमा को बढ़ावा देना है। शारीरिक श्रम कार्य को कुशलता पूर्वक पूर्ण करने में सहायता प्रदान करता है तथा इसके द्वारा कार्य करके सीखने के सिद्धांत को भी बल मिलता है। इसके द्वारा छात्रों को यह बात समझने में भी सहायता मिलती है कि समाज में अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाला कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता है अपितु उसके पीछे कार्य करने की भावना प्रमुख होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत में शिक्षा को उत्पादक गतिविधि के माध्यम से कार्य शिक्षा के साथ जोड़ने की परिकल्पना किस आयोग द्वारा की गई?
   (क) राष्ट्रीय शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन द्वारा
   (ख) उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग द्वारा
   (ग) माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग द्वारा
   (घ) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा
2. ईश्वर भाई पटेल समिति द्वारा उत्पादक कार्य को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाने का प्रस्ताव कब दिया गया?
   (क) 1960 में (ख) 1966 में
   (ग) 1977 में (घ) 1980 में

4.3 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा

"Taken as a whole, a vocation is the best medium for the all-round development of a boy or a girl and therefore the syllabus should be woven around vocational training."–Mahatma Gandhi

महात्मा गांधी विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने के पक्ष में थे, जिससे उनमें भारतीय संस्कार विकसित हो सकें तथा किसी भी प्रकार के काम के प्रति विद्यार्थी सम्मानपूर्वक भाव रखें। महात्मा गांधी ने विद्यार्थियों में हस्त कौशल विकसित करने को बढ़ावा दिया, जिससे कि शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत विद्यार्थी सिर्फ नौकरी की ही तरफ न भागें अपितु स्वरोजगार के लिए अपने आसपास के संसाधनों के प्रयोग से शुरुआत कर सकें। गांधीजी ने शिक्षा को लघु उद्योग के साथ जोड़कर विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए जाने वाली वस्तुओं के विक्रय तथा मिलने वाली आमदनी को विद्यालय के विकास में लगाने का सुझाव दिया। भारत में शिक्षा को उत्पादक कार्य के साथ जोड़ने और विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ–साथ जीविका उपार्जन के भी कौशल विकसित करने का विचार महात्मा गांधी के द्वारा दी गई बेसिक शिक्षा की अवधारणा में देखने को मिलता है। बेसिक शिक्षा का सिद्धांत ज्ञान को कार्य से अलग होकर नहीं देखता है और इसी के आधार पर महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा की अवधारणा को सबके समक्ष रखा। बेसिक शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को कुशल और कार्य निपुण बनाने के लिए गतिविधि केंद्रित शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया। गांधीजी शिक्षा के द्वारा आत्मनिर्भर समुदायों का निर्माण करना चाहते थे जिससे कि विद्यार्थी आगे चलकर मेहनती, स्वाभिमानी और उदार बन सकें। बेसिक शिक्षा के माध्यम से स्थानीय शिल्प को शिक्षा के साथ जोड़ा गया जिससे कि विद्यार्थियों का सम्पूर्ण विकास संभव हो सके। महात्मा गांधी हस्तकौशलों के ज्ञान को न केवल विद्यार्थियों के भावी जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानते थे अपितु इसके द्वारा वे इसे देश से बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार और कई अन्य वर्तमान समस्याओं के समाधान के रूप में भी देखते थे।

4.3.1 शिक्षा में उत्पादक कार्य की गांधीवादी धारणा और बेसिक शिक्षा

महात्मा गांधी के द्वारा बेसिक शिक्षा की अवधारणा 23 अक्टूबर, 1937 में वर्धा शिक्षा सम्मेलन में सबके समक्ष रखी गई। इस सम्मेलन में कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए जो निम्नलिखित थे–

- राष्ट्रीय स्तर पर मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा देना
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना
- सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव जो इस शिक्षा सम्मेलन में पारित किया गया वह था शिक्षा को हस्त कार्यों की ओर केंद्रित करना, जिसके द्वारा हस्तशिल्प की उत्पादकता और शिक्षा में संबंध स्थापित किया जा सके।

महात्मा गांधी के उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की रूपरेखा स्थापित करने वाली बेसिक शिक्षा के मुख्य बिंदु इस प्रकार थे–

टिप्पणी

मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा : गांधीजी ने बेसिक शिक्षा के द्वारा 6 से 14 साल के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रस्ताव सबके समक्ष रखा।

शिल्प केंद्रित शिक्षा : इसके द्वारा शिल्प या उत्पादक काम के द्वारा शिक्षा प्रदान करने का प्रस्ताव रखा गया जिससे कि विद्यार्थी ना केवल शैक्षिक और सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करें बल्कि शारीरिक श्रम के महत्व के प्रति जागरूक हो सकेंद्य बुनियादी शिल्प के विकल्पों के साथ–साथ इस बात पर बल दिया गया कि ये शिल्प मात्र यांत्रिक रूप से नहीं बल्कि व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप से सामाजिक महत्व को ध्यान में रखते हुए सिखाये जाने चाहिए। बुनियादी शिल्प के विकल्प के रूप में (क) कताई और बुनाई (ख) बढ़ईगीरी, (ग) कृषि, (घ) फल और फूलों की खेती, (ङ) चमड़े का काम, (च) मछली की खेती, (छ) मिट्टी के बर्तन, (ज) स्थानीय जरूरत के अनुसार कोई हस्तकला, (झ) पेंटिंग और संगीत।

आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा : महात्मा गांधी की उत्पादक कार्य को शिक्षा के साथ जोड़ने के पीछे का कारण विद्यार्थियों को उनके जीवन में आत्मनिर्भर बनाने की संकल्पना से था। महात्मा गांधी का आत्मनिर्भरता को लेकर मूल विचार यह था कि यदि हस्तशिल्प की शिक्षा विद्यार्थियों को सही तरीके से विद्यालय स्तर से ही देना शुरू किया जाए, तो विद्यार्थी द्वारा निर्मित उत्पाद विद्यालय की आय में बढ़ोतरी करेंगे तथा विद्यालय से निकलने के बाद विद्यार्थी आजीविका के साथ–साथ श्रम की गरिमा को भी बनाए रखेंगे।

शिक्षा का माध्यम : बेसिक शिक्षा के द्वारा मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात कही गई क्योंकि इसके द्वारा विद्यार्थी को अपने विचारों को सही तरीके से बोलने में, लिखने में और पढ़ने में सहायता मिलती है। स्थानीय स्तर के हस्त कौशलों को सीखने में भी मातृभाषा का अहम योगदान होता है।

कार्य करके सीखना

बुनियादी शिक्षा का महत्वपूर्ण उदेश्य विद्यार्थियों में कार्य करके सीखने का भाव उत्पन्न करना भी था। महात्मा गांधी के अनुसार यह सोचना सरासर गलत है कि सच्ची शिक्षा केवल किताबों से ही हासिल की जाती है। ऐसे और भी तरीके और स्रोत हैं जो सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने में अधिक सहायक होते हैं।

विद्यालय में शिक्षा के साथ शिल्प कार्य का महत्व : महात्मा गांधी का शिक्षा के साथ शिल्प कार्य को जोड़ने का तात्पर्य सिर्फ उत्पादकता से न होकर शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों के समाधान के साथ जोड़कर देखा गया। मनोवैज्ञानिक तौर पर भी इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि यह विद्यार्थियों को बौद्धिक और व्यावहारिक तत्वों के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है। विद्यार्थी जो कुछ भी बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करते हैं उसको यदि रचनात्मकता के साथ अपनी अभिव्यक्ति का उपयोग करके एक उत्पाद का रूप दे दें तो इस प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान श्रम की गरिमा के साथ–साथ विद्यार्थियों को आने वाले जीवन में जीविका कमाने के साधन ढूंढने में भी सहायक होगा। सामाजिक रूप से देखने पर भी इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों को समाज में किसी भी कार्य को करने के प्रति प्रेरणा तथा उस कार्य की गरिमा को समझने में सहायक होती है। महात्मा गांधी ने हमेशा

टिप्पणी

इस बात पर बल दिया कि ज्ञान वही उत्तम है जिसे हम व्यावहारिक रूप में बदल सकें अर्थात हस्तशिल्प कार्यों के द्वारा विद्यार्थी अपने ज्ञान को मूर्त रूप देकर उत्पादकता के साथ–साथ जीवन जीने के कौशलों को भी सीखेंगे। आर्थिक रूप से भी शिक्षा को शिल्प के साथ जोड़ने में विद्यालय को विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गए उत्पादकों से होने वाली आय को विद्यालय के लिए खर्च करने में सहायता मिलेगी।

4.3.2 उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा की गांधीवादी धारणा के कार्यान्वयन के अनुभव की समीक्षा

महात्मा गांधी द्वारा कार्य अनुभव और शिक्षा को विद्यार्थियों के व्यक्तिगत जीवन के साथ जोड़कर देखा गया। कार्य अनुभव आधारित शिक्षा एक ऐसे वातावरण के निर्माण पर बल देती है जो विद्यालय और समाज के बीच में एक संबंध स्थापित करने का कार्य करती है। इस अवधारणा के द्वारा विद्यालय में घटित होने वाले कार्यों का सीधा संबंध समाज की जरूरतों के साथ स्थापित करना था हस्तशिल्प के द्वारा विद्यार्थियों में श्रम भावना के आदर के साथ–साथ उत्पादित वस्तुओं को समाज में जरूरतों के हिसाब से तैयार करना और होने वाली आमदनी को पुनः विद्यालय के विकास पर खर्च करने का उद्देश्य एक प्रेरणादायक कदम था। कार्य अनुभव के साथ शिक्षा को जोड़ने के कारण ही विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा की नींव रखी गई। महात्मा गांधी के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाने के साथ–साथ समाज में व्याप्त कई समस्याओं के हल की ओर ले जाती है। शिक्षा और हस्तशिल्प को साथ में लेकर चलने की महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा कई बिंदुओं में शिक्षाविदों के मध्य आलोचना का कारण भी बनी। कई शिक्षाविदों के अनुसार हस्त कौशल को बढ़ावा देने वाली महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा योजना छात्र और अध्यापक के रिश्ते को हतोत्साहित करने वाली थी क्योंकि इस योजना के द्वारा छात्र पैसे कमाने वाली मशीन के रूप में देखे जाने लगे तथा शिक्षकों की निर्भरता भी छात्रों की कमाई पर अधिक होने लगी। विद्यार्थी के सीखने की प्रक्रिया में संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मनोक्रियात्मक अनुक्षेत्र आते हैं। बेसिक शिक्षा के द्वारा मात्र तीसरे अनुक्षेत्र को ही बढ़वा दिया गया जिसके कारण विद्यार्थी के संपूर्ण विकास की अवधारणा विफल मानी गई।

शिक्षा को उत्पादकता के साथ जोड़ने के कारण विद्यार्थियों की शिक्षा में शिल्प पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा जिसके कारण उदारवादी शिक्षा को पूर्ण रूप से उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी के लिए सही शिल्प का चयन करना भी एक कठिन समस्या के रूप में देखा गया। हस्तशिल्प के चयन को शिक्षाविदों और अध्यापकों के द्वारा गंभीरता से न लिया जाना और शिल्प के शैक्षिक उद्देश्य तथा सामाजिक महत्व को भी नजरअंदाज करना बेसिक शिक्षा की विफलता का कारण बना।

महात्मा गांधी की हस्तशिल्प आधारित कार्य कुशलता से युक्त शिक्षा को गरीब ग्रामीण इलाकों के लोगों की शिक्षा के रूप में देखा गया जिसके कारण शहरी लोग इस स्वयं को शिक्षा के साथ जुड़ा हुआ महसूस नहीं कर सके।

आर्थिक स्तर पर भी इस प्रकार की शिक्षा को, तेजी से हो रहे औद्योगीकरण और विकास की गति तथा जरूरत के अनुरूप नहीं देखा गया। एक और जहां महात्मा गांधी की हस्तशिल्प की अवधारणा स्थानीय और सांस्कृतिक बोध से युक्त हस्तशिल्प और

कार्यकुशलता की बात करती है वहीं दूसरी ओर आधुनिकीकरण की दौड़ में इस अवधारणा को पिछड़ा माना जाने लगा।

टिप्पणी

पाठ्यक्रम में हस्तशिल्प से जुड़े हुए कार्यों को अधिक समय देने के कारण दूसरे शैक्षिक विषयों को कम समय दिए जाने की समस्या भी उभर कर सामने आई।

4.3.3 क्या हम पारंपरिक शिल्पों को आधुनिक औद्योगिक उत्पाद के साथ प्रतिस्थापित कर सकते हैं?

पारंपरिक शिल्प और हस्तकला हाथों द्वारा निर्मित और तैयार की गई ऐसी वस्तुएं होती हैं जो परंपराओं के संरक्षण और संस्कृति की जानकारी सभी लोगों तक पहुंचाने का काम करती हैं। शिल्पकार अपने उत्पाद में, विचारों, रूपों, सामग्री और काम के तरीकों में अपनी सांस्कृतिक विरासत के एक क्षेत्र को स्थानांतरित करते हैं, इसी तरह अपने मूल्यों, जीवन के दर्शन, फैशन और आत्म–छवि के रूप को अन्य लोगों तक पहुचाने का काम करते हैं। औद्योगिकीकरण की दुनिया में तेजी से हो रहे तकनीकी विकास के कारण पारंपरिक शिल्प अपनी पहचान खोते जा रहे हैं जिसके कारण समाज में कारीगर वैकल्पिक आय के स्रोत खोज रहे हैं। शिक्षा के माध्यम से पारंपरिक कौशलों और ज्ञान को संरक्षित करने का उद्देश्य शिक्षा नीति 2021 में भी उल्लेखित है। जहा पर प्रत्येक छात्र, कक्षा 6–8 के दौरान, स्थानीय कौशल की जरूरतों के अनुसार, बढ़ईगीरी, इलेक्ट्रिक वर्क, मेटल वर्क, बागवानी, मिट्टी के बर्तन बनाने आदि जैसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक शिल्पों से संबंधित कौशल विकसित करेगा और सभी छात्र कम से कम दस दिनों के लिए स्थानीय व्यावसायिक कारीगरों से उनके हस्तकौशलों को सीखेंगे। बढ़ती तकनीक से चलने वाली और औद्योगीकृत दुनिया में लोग तेजी से पारंपरिक शिल्प को भूलकर आधुनिक मशीनों से बने उत्पादों की ओर बढ़ रहे हैं। इसके कारण, कारीगर वैकल्पिक आय उत्पादन विधियों की ओर बढ़ रहे हैं और हस्तकला और शिल्प कला अपनी पकड़ खो रही है ।

पारंपरिक शिल्प और आधुनिक औद्योगिक उत्पाद

पारंपरिक शिल्प को आधुनिक उत्पादों के साथ प्रतिस्थापित करना संभव नहीं है क्योंकि पारंपरिक शिल्प में समाज और संस्कृति की जो झलक देखने को मिलती है वो आधुनिक उत्पादों में मिल पाना संभव नहीं है। किन्तु आज के समय में आधुनिक उत्पादों को पूरे सिरे से नकारना भी संभव नहीं होगा। अतः पारंपरिक उत्पादों को आधुनिकता के साथ ताल मेल बिठा कर आधुनिक समाज में भी पारंपरिक उत्पादों को जीवित रखा जा सकता है। पारंपरिक हस्त कौशलों और शिल्प को निम्नलिखित तरीकों से प्रतिस्थापित होने से बचाया जा सकता है–

- **वैश्विक बाजार को समझना** : पारंपरिक शिल्प को जीवित रखने के लिए स्थानीय कारीगरों के लिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि वैश्विक बाजार की मांग क्या है और किस प्रकार के उत्पाद अधिक मात्र में बिक रहे हैं।
- **उपभोक्ताओं तक कला की जानकारी पहुंचाना** : आधुनिकता के दौर में लोगों तक पारंपरिक उत्पादों की जानकारी पहुंचाना अत्यंत आवशयक है। यह लोगों को प्रेरित करता है और कला और खरीदार के बीच एक संबंध स्थापित करता है। इससे कारीगरों को यह जानने में भी मदद मिलती है कि उपभोक्ता की जरूरत क्या है।

टिप्पणी

- **पारंपरिक और आधुनिक शिल्प का मिश्रण :** पारंपरिक शिल्प को अधिक आकर्षक एवं आधुनिकता के साथ संतुलन बनाये रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि बाज़ार में पारंपरिक और आधुनिक शिल्प का मिश्रण लोगों की पहुंच में हो।

पारंपरिक शिल्प और कौशल भारत की वैश्विक स्तर पर एक पहचान बनाते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि विद्यालयों में शिक्षा के साथ कार्य शिक्षा के रूप में भारतीय पारंपरिक शिल्प और कौशल का ज्ञान विद्यार्थियों को दिया जाए ताकि एक और जहां विद्यार्थी आने वाले समय में इस क्षेत्र में अपने व्यवसाय को ढूंढ सकें वहीं दूसरी ओर भारतीय पारंपरिक शिल्प के प्रति सम्मान और इसे एक वैश्विक पहचान दिलाने में योगदान दे सकें।

4.3.4 कार्य शिक्षा की गांधीवादी धारणा

महात्मा गांधी ने शिक्षा को सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ जोड़कर देखा। उनके द्वारा बेसिक शिक्षा की अवधारणा का उद्देश्य व्यावसायिक प्रशिक्षण या कार्य अनुभव को जोड़कर विद्यार्थियों को न केवल शारीरिक श्रम की गरिमा को बतलाना था अपितु उनकी रचनात्मक सोच को बढ़ावा देना था। महात्मा गांधी द्वारा कार्य अनुभव के महत्व को 1964 में कोठारी कमीशन के द्वारा भी समझा गया जिसके फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में देखा जाने लगा। महात्मा गांधी के अनुसार विद्यार्थियों को दिया जाने वाला किताबी ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान के साथ जोड़ा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि विद्यार्थियों को कृषि से संबंधित विषय का ज्ञान दिया जा रहा हो तो यह आवश्यक है कि विद्यार्थी खेत में जाकर एक कृषक के नजरिए से कृषि से संबंधित ज्ञान को प्राप्त करें, उसी प्रकार हस्तशिल्प के विषय में भी महात्मा गांधी द्वारा छात्रों को कौशल युक्त एवं रचनात्मकता और मौलिकता के साथ उत्पादन कार्य के साथ–साथ भविष्य के लिए जीविका उपार्जन के रूप में भी देखा गया। महात्मा गांधी के अनुसार कार्य अनुभव से युक्त शिक्षा व्यक्ति के आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। इससे न केवल छात्र उत्पादन करना सीखते हैं अपितु समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को भी समझने का प्रयास करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. महात्मा गांधी विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने के पक्ष में थे–
   (क) जिससे उनमें भारतीय संस्कार विकसित हो सकें
   (ख) विद्यार्थी किसी भी प्रकार के काम के प्रति सम्मानपूर्वक भाव रखें
   (ग) (क) और (ख) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
4. महात्मा गांधी द्वारा बेसिक शिक्षा की अवधारणा सबके समक्ष कब रखी गई?
   (क) 23 सितंबर, 1937 में (ख) 2 अक्टूबर, 1937 में
   (ग) 5 अक्टूबर, 1937 में (घ) 23 अक्टूबर, 1937 में

4.4 पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा

टिप्पणी

शिक्षा के क्षेत्र में सुनियोजित पाठ्चर्या या पाठ्यक्रम के द्वारा छात्र शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं तथा भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए सक्षम बनते हैं जब पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है तो ऐसा पाठ्यक्रम एक ओर छात्रों में किसी भी कार्य को करने के प्रति लगाव व कार्य की गरिमा को बनाए रखने का भाव उत्पन्न करता है वहीं दूसरी ओर सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में भी कार्य करता है। कार्य आधारित पाठ्यक्रम शिक्षा के महत्वपूर्ण घटक के तौर पर समाज व समुदाय की जरूरतों को समझने में भी सहायता करता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में ज्ञान कौशल वह मूल्यों का समावेश स्वता ही हो जाता है और छात्र भविष्य में समाज में महत्वपूर्ण योगदान देने में सक्षम बनते हैं कार्य शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली को यथार्थवादी और उत्पादक बनाने में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करती है इसके द्वारा छात्रों में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिलता है और सामाजिक कार्यों एवं सामुदायिक सेवा के द्वारा समाज के आर्थिक विकास में भी योगदान का मौका मिलता है।

पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का समायोजन छात्र–छात्राओं में काम के प्रति उचित दृष्टिकोण बनाने तथा कार्य मूल्यों को और कार्य कौशल विकसित करने में अत्यंत सहायक है पाठ्यक्रम में यदि छात्रों के दैनिक जीवन से संबंधित कार्य शिक्षा को सम्मिलित किया जाए तो इसका सीधा असर विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक कौशल विकसित करने में पड़ता है इसके द्वारा न केवल समाज की उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है अपितु छात्र आत्मनिर्भर बनने में भी सक्षम होते हैं पाठ्यक्रम में कार्य का महत्व इसलिए भी अधिक हो जाता है क्योंकि कार्य सम्मिलित होने के कारण छात्रों को अपने रुचि और योग्यता के अनुसार भविष्य में व्यवसाय चुनने में भी मदद मिलती है इस प्रकार कार्य शिक्षा छात्रों को एक सफल व्यस्त जीवन जीने के लिए प्रेरणा देती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के निर्देशन में बना नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (National Curriculum framework) 2005 के अनुसार "ज्ञान अधिग्रहण, मूल्यों के विकास और बहु–कौशल गठन में शैक्षणिक माध्यम के रूप में काम की शैक्षणिक क्षमता को साकार करने के लिए पूर्व–प्राथमिक से वरिष्ठ माध्यमिक चरणों तक स्कूल पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए। जैसे–जैसे बच्चा परिपक्व होता है, काम की दुनिया के लिए तैयार रहने के लिए बच्चे की जरूरत को पहचानने के लिए पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है, और एक कार्य केंद्रित शिक्षाशास्त्र को बढ़ती जटिलता के साथ आगे बढ़ाया जा सकता है, जबकि हमेशा आवश्यक लचीलेपन और प्रासंगिकता के साथ समृद्ध किया जा रहा है।

4.4.1 पाठ्यचर्या में कार्य को शामिल करने के लाभ

पाठयचर्या में कार्यानुभव के संयोजन के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं–

- **छात्रों के उचित विकास के लिए** : छात्रों की उम्र और उनकी योग्यता को ध्यान में रखकर यदि पाठ्यक्रम के साथ कार्य को जोड़ा जाए तो ऐसा पाठ्यक्रम छात्रों की वृद्धि एवं विकास में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है इसके द्वारा छात्र मूल्य बुनियादी वैज्ञानिक अवधारणाओं कौशल और रचनात्मक अभिव्यक्ति सीखने

टिप्पणी

में सक्षम होते हैं।

- **छात्र की सामाजिक पहचान का विकास** : कार्य अनुभव छात्रों को समाज में एक अलग पहचान बनाने में भी सहायक होता है अपने द्वारा किया गया कार्य छात्र को अर्थपूर्ण लगने के साथ–साथ उसके मन मस्तिष्क में ज्ञान का निर्माण करने में भी सहायक सिद्ध होता है। शिक्षा के साथ कार्य अनुभव जोड़ने के कारण छात्र समाज के लिए उपयोगी और उत्पादक कार्य संबंधी कौशल सीखता है। सामाजिक जीवन जीने के लिए आवश्यक मूल्यों को स्वतः ही अपने चरित्र का हिस्सा बना लेता है। शिक्षा के साथ कार्य अनुभव जोड़ने पर छात्र न केवल कौशल सीखते हैं अपितु समाज में अन्य व्यक्तियों द्वारा उस कार्य को किए जाने पर कार्य की गरिमा का भी महत्व समझते हैं।
- **मूल्यों और कौशल का विकास** : पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव जोड़ने से छात्र परस्पर निर्भरता की अवधारणा को भी समझते हैं तथा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे की सहायता आत्म नियंत्रण एवं सकारात्मक मानसिक ऊर्जा को विकसित करने का प्रयास करते हैं। कार्य अनुभव विद्यार्थियों को न केवल कार्य अपितु एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित करने और कार्य के प्रति लगाव ज्ञान अर्जित करना तथा उसे समाज की जरूरतों के अनुरूप ढालने के लिए परस्पर सहयोग के गुण को भी सीखते हैं। इस प्रकार एक गहरी समझ बनाने और प्राकृतिक पदार्थों और सामाजिक संबंधों के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होती है।
- **आजीविका के बारे में सीखना** : कार्य अनुभव के द्वारा छात्र कौशलों में निपुण बनते हैं और साथ–साथ सीखे गए कार्य को किस प्रकार भविष्य में आजीविका कमाने के लिए इस्तेमाल में लाया जा सकता है इस संबंध में भी ज्ञान अर्जित करते हैं अतः एक ओर पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव का संयोजन छात्रों के बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास में सहायक है वहीं दूसरी ओर भविष्य के लिए छात्रों को आजीविका चुनने में भी सहायक सिद्ध होता है।
- **रचनात्मकता की वृद्धि** : शैक्षिक प्रक्रिया का उद्देश्य छात्रों में रचनात्मक क्षमता को विकसित करना है और रचनात्मकता के विकास में सांस्कृतिक वातावरण अनुभव और प्रशिक्षण के प्रभाव को कम नहीं आंका जा सकता है। शिक्षा में कार्य अनुभव छात्रों में कल्पनाशीलता को जागृत करते हैं छात्रों में कौतूहल का भाग जगाते हैं और कार्य के प्रति गहरी समझ पैदा करते हैं ऐसे कार्यों से रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है और छात्र अधिक अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं।

उपरोक्त लिखित लाभ तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब कार्य अनुभव स्कूली पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बन जाए। शैक्षिक वातावरण में कार्य अनुभव को जोड़ने से छात्रों में रचनात्मकता के नए आयाम स्थापित किए जा सकते हैं जिससे कि छात्रों में कार्य की प्रकृति को समय की मांग के अनुसार बदलने और समाज की जरूरतों के अनुरूप उत्पादक बनाने में भी सहायक हो सकते हैं भारतीय परिवेश में जनसंख्या व विशेषकर युवा जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए स्वरोजगार के अवसर पैदा करने में भी कार्य अनुभव अहम भूमिका निभा सकता है और कार्य करके सीखने की प्रवृत्ति को

भी बढ़ावा दिया जा सकता है।

4.4.2 वास्तविक जीवन की स्थितियों के संदर्भ में ज्ञान, कौशल और मूल्यों को एकीकृत करने में कार्य अनुभव की भूमिका

वास्तविक जीवन की स्थितियों में कार्य अनुभव द्वारा विद्यार्थियों में ज्ञान कौशल और मूल्यों को एकीकृत करने के लिए सर्वप्रथम कार्य अनुभव के उद्देश्यों को समझना आवश्यक है कार्य अनुभव के उद्देश्य हमें यह समझने में सहायता करते हैं कि किस प्रकार कार्य अनुभव छात्रों को ज्ञान कौशल और मूल्यों से परिपूर्ण करके वास्तविक जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करते हैं

ज्ञान के विकास हेतु कार्य अनुभव के उद्देश्य

- कार्य शिक्षा छात्रों को कार्य से संबंधित वैज्ञानिक, सैद्धांतिक तथा तथ्यात्मक ज्ञान को समझने में सहायक बनाती है।
- कार्य अनुभव के द्वारा छात्रों को तकनीकी रूप से सक्षम बनाना।
- समाज की जरूरतों के अनुसार कौशलों को विकसित करना।
- विभिन्न उपकरणों की जानकारी प्राप्त कर उनके इस्तेमाल में कुशलता हासिल करना।
- विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण एवं सृजनात्मकता का विकास करना।
- उत्पादक गतिविधियों का महत्व समझना।
- सही योजना निर्माण एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।

मूल्यों के विकास के लिए कार्य अनुभव के उद्देश्य

- कार्य की गरिमा को बनाए रखने तथा समाज में किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के प्रति आदर का भाव विकसित करना।
- आत्मनिर्भरता आत्म नियंत्रण सहयोग समूह कार्य दृढ़ता सहिष्णुता तथा समर्पण जैसे गुणों का विकास करना।
- समाज सेवा से जुड़े कार्यों के प्रति जिम्मेदारी का अहसास विकसित करना।
- कार्य करके सीखना तथा उपलब्धियों से आत्मविश्वास का विकास करना।
- समयबद्धता और अनुशासन इमानदारी जैसे गुणों को विकसित करना।
- समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझना।
- समाज की जरूरत के प्रति संवेदनशील होना तथा जरूरत के अनुसार कौशल विकसित करना।

कौशल के विकास हेतु कार्य अनुभव के उद्देश्य

- कार्य अनुभव से संबंधित गतिविधियों में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरणों की जानकारी हासिल करना।
- विभिन्न उपकरणों तथा सामग्रियों के चयन व्यवस्था और उपयोग से संबंधित

टिप्पणी

कौशल विकसित करना।

- उत्पादकता बढ़ाने हेतु कुशल नियोजन सीखना।
- कार्य अनुभव में नवाचार को बढ़ावा देना।
- कार्य अनुभव के द्वारा रचनात्मकता मौलिकता से संबंधित कौशल विकसित करना।
- भविष्य में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरणों एवं उनकी कार्यपद्धती को नवाचार के माध्यम से उपयोगी बनाना।

4.4.3 पाठ्यचर्या से कार्य शिक्षा के अभाव के परिणाम

कार्य शिक्षा उद्देश्य पूर्ण एवं अर्थपूर्ण शिक्षा का अभिन्न घटक है। वर्तमान समय में कार्य शिक्षा को ज्ञान कौशल और मूल्यों को मनोगत करने का उत्तम साधन माना गया है। यदि पाठ्यक्रम से कार्य शिक्षा को अलग कर दिया जाए अथवा हटा दिया जाए तो इसके कई दुष्प्रभाव देखने को मिल सकते हैं, जैसे छात्रों का कार्य के प्रति रुझान कम होना और किसी भी कार्य की गरिमा के महत्व को न समझना। कार्य शिक्षा छात्रों में मात्र कौशलों का विकास ही नहीं करती है अपितु संज्ञानात्मक उद्देश्यों के साथ–साथ भावात्मक उद्देश्य को प्राप्त करने में भी सहायक होती है। कार्य शिक्षा पाठयक्रम का अभिन्न हिस्सा है जिसके अभाव में निम्नलिखित परिणाम देखने को मिल सकते हैं–

- **कार्य शिक्षा के अभाव में सामाजिक मूल्यों में कमी** : पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा न होने के कारण सामाजिक रूप से वांछनीय मूल्य जैसे– आत्मनिर्भरता, सहकारिता, सामूहिक कार्य, सहनशीलता आदि मूल्यों को विद्यार्थियों में विकसित करने में कठिनाई हो सकती है। अकसर यह देखा गया है कि कार्य शिक्षा के द्वारा छात्र नियमितता, समयबद्धता, अनुशासन और कार्यकुशलता स्वतः ही सीखते हैं जिसकी कमी के कारण छात्रों में समाज के प्रति उत्तरदायित्व और प्रतिबद्धता की भावना में भी कमी आती है। अतः विद्यार्थियों को समाज व समुदाय के लिए सेवा कार्य से जोड़ने के लिए पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा को अभिन्न अंग बनाना अत्यंत आवश्यक है।
- **व्यावहारिक ज्ञान की कमी** : कार्य शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता छात्रों को किसी भी कार्य को करके सीखने के सिद्धांत पर आधारित है। छात्र किताबी ज्ञान को व्यावहारिक ज्ञान के साथ जोड़कर अपने दैनिक जीवन में घटित होने वाली क्रियाओं का अवलोकन करने में सक्षम बनते हैं तथा स्वयं समस्या का समाधान ढूंढने में निपुण बनते हैं। यदि कार्य शिक्षा को पाठ्यक्रम से हटा दिया जाए तो छात्रों में व्यावहारिक ज्ञान की कमी देखने को मिलेगी जिसके परिणामस्वरूप छात्र किताबी ज्ञान में तो आगे बढ़ पाएंगे किंतु शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उस ज्ञान को व्यावहारिक रूप में समाज में कैसे प्रयोग में लाना है यह नहीं समझ पाएंगे। अतः शैक्षिक पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का होना अत्यंत आवश्यक बिंदु है।
- **रचनात्मकता और साहसिक चिंतन की कमी** : पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा की कमी रचनात्मक और साहसिक चिंतन को कम कर देती है अर्थात जब पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा को उचित रूप से जोड़ा जाता है, तो छात्र अपने विचारों को नए

तरीके से सबके समक्ष प्रस्तुत करने का कौशल सीखते हैं तथा कार्य करके उसमें कई प्रकार के प्रयोग करके अपने विचारों को नया रूप प्रदान करते हैं। मौलिकता रचनात्मकता और साहसिक चिंतन सीधे तौर पर कार्य शिक्षा के साथ जुड़े हैं। अतः पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा की कमी छात्रों में इन गुणों की कमी ला सकती है।

- **शारीरिक श्रम एवं कार्य की गरिमा में कमी** : कार्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में न होने से शिक्षा के मनोगत उद्देश्य जिसमें हम छात्रों में शारीरिक श्रम एवं कार्य की गरिमा का महत्व समझाना चाहते हैं, को प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य होगा क्योंकि जब छात्र कार्य अनुभव प्राप्त करते हैं, कौशलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, कुशल कारीगरों की मेहनत को देखते हैं तथा स्वयं भी सीखने का प्रयास करते हैं तो इससे छात्रों को उस कार्य की गरिमा के महत्व को समझने का मौका मिलता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां पर अधिकतर लोग हस्त कौशलों और शिल्प कला के व्यवसाय में सम्मिलित हैं ऐसे देश में छात्रों में शारीरिक श्रम एवं कार्य की गरिमा को समझना अत्यंत आवश्यक है। अतः इसकी कमी छात्रों में शिक्षा के मनोगत उद्देश्यों को प्राप्त करने में रुकावट का काम करेगी।

4.4.4 क्या बच्चों को अपनी पाठ्यचर्या स्वयं निर्धारित करनी चाहिए?

पाठ्यक्रम विकसित करना एक जटिल प्रक्रिया है तथा पाठ्यक्रम निर्माण के समय अध्यापक या शिक्षाविद कई महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिए जैसे क्या पढ़ाया जाना चाहिए, पाठ्यवस्तु किस प्रकार की होनी चाहिए, पाठ्यवस्तु को कैसे सुयोजित किया जाए तथा उस पाठ्यवस्तु को कैसे पढ़ाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माण के समय इन प्रश्नों के उत्तर शिक्षाविद और अध्यापकों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक होते हैं। सर्वप्रथम क्या पढ़ाया जाना चाहिए इस बात का निर्धारण करने से पूर्व यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जिसे पढ़ाया जाना है उसका मानसिक स्तर क्या है, उन विद्यार्थियों की रूचि क्या है तथा वे किस प्रकार की गतिविधियों के द्वारा पाठ्यवस्तु को आसानी से समझ पाएंगे।

पाठ्यवस्तु के चुनाव के समय ध्यान देने योग्य बात यह है कि शिक्षा और समाज की जरूरतों में संबंध स्थापित किया जा सके अर्थात विद्यार्थी जो पाठ्यवस्तु विद्यालय में पढ़ रहे हैं उसकी व्यावहारिकता समाज को किस प्रकार फायदा पहुंचाएगी इस बिंदु को ध्यान में रखना आवश्यक है।

विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुए उनकी जरूरतों और रुचि उनका भी ध्यान रखते हुए पाठ्यवस्तु को विभिन्न स्तरों पर समायोजित करने की आवश्यकता होती है तथा छात्र केंद्रित पाठ्यक्रम में ऐसी गतिविधियों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा ज्ञान को अध्यापक से छात्रों तक स्थानांतरित करने में सहायता मिल सके।

उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए यह समझना आवश्यक है कि विद्यार्थी किसी भी पाठ्यक्रम का केंद्र बिंदु है। अतः विद्यार्थियों को उनका पाठ्यक्रम निर्धारित करने की बात कई शिक्षाविदों द्वारा कहीं गई हैं। विद्यार्थियों द्वारा अपना पाठ्यक्रम निर्धारित करने का सही अर्थ उनके द्वारा लिए जाने वाले विषयों से संबंधित होना चाहिए

अर्थात एक विद्यार्थी किस विषय को सीखना चाहता है, किस विषय में रुचि रखता है, उसका चुनाव करने की स्वतंत्रता विद्यार्थी को होनी चाहिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी पाठ्यक्रम को इस प्रकार लचीला बनाने की कल्पना करती है जिसके द्वारा अध्ययन के लिए छात्र अलग–अलग विषयों के रचनात्मक संयोजन में सक्षम हो सकें और जीवन पर्यंत सीखने की नई संभावनाएं पैदा हो सकें। यह कदम इसलिए भी आवश्यक है ताकि छात्र अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषयों का चुनाव कर सकें और उन्हें पढ़ाई में भी कठिनाई का सामना न करना पड़े। पाठ्यक्रम निर्माण में पाठ्यक्रम निर्माण करने वाली कमेटी विद्यार्थियों के सुझावों को सम्मिलित कर सकती है तथा उनकी अपेक्षाओं, रुचि और मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकती है। पाठ्यक्रम में छात्रों को विषयों के चुनाव का निर्णय करने का अधिकार देना एक सकारात्मक पहल हो सकती है जिसके द्वारा छात्र अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार विषय चुनकर आने वाले भविष्य की चुनौतियों के लिए स्वयं को तैयार कर सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 छात्रों को पाठ्यक्रम में विषयों के चुनाव के लिए सशक्त बनाने की सिफारिश करती है जिसके अंतर्गत छात्रों को विशेष रुप से माध्यमिक स्कूल में अध्ययन करने के लिए विषयों के विकल्प चुनने का अवसर दिया जाए, जिसमें शारीरिक शिक्षा, कला, शिल्प एवं व्यावसायिक कौशल के विषय भी शामिल हों जिसके द्वारा छात्र भविष्य की योजनाओं और अपने आजीविका कमाने के अवसर भी ढूंढ़ सकें।

4.4.5 पाठ्यचर्या मूल्यांकन

पाठ्यक्रम के संबंध में, मूल्यांकन एक भाग या पूरे पाठ्यक्रम की योग्यता या मूल्य के बारे में मूल्य निर्णय लेने की प्रक्रिया है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रकृति अक्सर इसके उद्देश्य जिनके लिए ये बनाया गया है, उन पर निर्भर करती है। पाठ्यक्रम का मूल्यांकन आमतौर निम्नलिखित बिन्दुओं से संबंधित है–

- **छात्रों पर पाठ्यक्रम का प्रभाव** : पाठयक्रम का प्रभाव मूल्याकन की प्रक्रिया से स्पष्ट होता है की व्यक्तिगत रूप से छात्रों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, क्या पाठ्यक्रम छात्रों की उनकी जरूरतों के अनुरूप है, शैक्षिक कार्यों में उनका योगदान क्या है और छात्रों का प्रदर्शन किस स्तर का है।
- **पाठयक्रम का समाज पर प्रभाव** : क्या पाठयक्रम के द्वारा समाज में वांछित मूल्यों की उपयुक्तता और दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया गया है, और सार्वजनिक संतुष्टि का स्तर क्या है; आर्थिक विकास के संकेतक के रूप में श्रम बाजार सहित अर्थव्यवस्था पर पाठयक्रम का की अप्रभाव है।
- **नवीन तकनिकी और नवाचार पर आधारित पाठ्यक्रम** : पाठयक्रम की अनुरूपता सामाजिक, तकनीकी, आर्थिक या वैज्ञानिक परिवर्तन के अनुरूप है; शैक्षिक अनुसंधान और शैक्षिक प्रतिमान में पाठ्यक्रम परिवर्तन के लिए भविष्य की संभावित दिशाएं क्या हैं।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि नए अपनाए गए पाठ्यक्रम अभीष्ट परिणामों को विकसित कर रहे हैं या नहीं और इसके द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को पूरा कर रहे हैं, और यह किसी भी शैक्षिक वातावरण में किसी भी नए पाठ्यक्रम को अपनाने और लागू करने की प्रक्रिया में एक अनिवार्य घटक है। पाठ्यक्रम

मूल्यांकन का एक अन्य उद्देश्य ऐसी जानकारी इकट्ठा करना है जो सुधार या परिवर्तन की जरूरत वाले क्षेत्रों की पहचान करने में मदद करे।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन यह निर्धारित करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है कि क्या नया डिजाइन पर आधारित पाठक्रम अभीष्ट और वांछित परिणाम पैदा करने में सक्षम है या नहीं। यह निर्धारित करने का साधन है कि क्या कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को पूरा कर रहा है, अर्थात अनुदेशात्मक उदेश्य पूर्व निर्दिष्ट परिणामों से मेल खाते हैं अथवा नहीं। (Tuckman, 1979)

पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता : पाठ्यक्रम मूल्यांकन की कुछ महत्वपूर्ण जरूरतें इस प्रकार हैं–

- एक नया पाठ्यक्रम विकसित करना
- कार्यान्वयन के तहत एक पाठ्यक्रम की समीक्षा करना
- पाठयक्रम के अवांछित भागों को हटाना और मौजूदा पाठ्यक्रम को अपडेट करना
- पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता का पता लगाना

राल्फ टायलर का पाठ्यक्रम मूल्यांकन मॉडल

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में लागू पाठ्यक्रम मूल्यांकन मॉडल पाठ्यक्रम राल्फ टायलर द्वारा परिभाषित उद्देश्यों पर आधारित है। टायलर द्वारा पाठ्यक्रम मूल्यांकन मॉडल का एक वैचारिक ढांचा प्रस्तुत किया गया पाठयक्रम के स्थापित सिद्धांतों या उद्देश्यों के साथ छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इस मॉडल में चार चरण हैं–

उद्देश्यों का निर्धारण करना

ज्ञान, संचार कौशल, सामाजिक और नैतिक परिप्रेक्ष्य, मात्रात्मक और विश्लेषणात्मक कौशल, और संज्ञानात्मक/वर्गीकरण के संदर्भ में सीखने के उद्देश्यों को परिभाषित करना । टायलर के अनुसार शैक्षिक उद्देश्य तीन स्रोतों से उत्पन्न होते हैं– समाज का अध्ययन, शिक्षार्थियों का अध्ययन, और विषय–वस्तु विशेषज्ञ के द्वारा।

उद्देश्य से संबंधित शैक्षिक अनुभवों का चयन

शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित होने के पश्चात टायलर के द्वारा सीखने के अनुभवों के चयन पर बल दिया गया। सीखने के अनुभव के प्रक्रिया में आयोजित की जाने वाली गतिविधियां इस प्रकार से सुनिश्चित की जानी चाहिए जिसमें की विद्यार्थी स्वयं भाग लेकर कुछ ना कुछ अवश्य सीखें छात्र द्वारा किसी कार्य को करना तथा कार्य के अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान को समझना अत्यंत आवश्यक है इस स्तर पर अध्यापक से अधिक छात्र सक्रिय रहते हैं।

सीखने के अनुभवों का आयोजन

पाठ्यक्रम निर्माण में सीखने के अनुभवों का आयोजन बहुत महत्वपूर्ण होता है जो की पाठयक्रम निर्धारित करने वाले व्यक्ति की योग्यता और अनुभव पर आधारित होता है। मात्र सीखने के अनुभवों से शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति संभव नहीं होती है, बल्कि उन अनुभवों को सही तरीके से आयोजित करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। कार्य अनुभव

आयोजित करते समय छात्रों का मानसिक स्तर, उनकी जरूरतों और रुचि को ध्यान में रखना आवश्यक है।

टिप्पणी

छात्रों के प्रदर्शन का मूल्यांकन

मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की स्थिति का पता चलता है। शैक्षिक उदेश्य शैक्षिक अनुभवों को सीखने और उनके मनोवैज्ञानिक रूप से आयोजन के साथ–साथ मूल्यांकन की प्रक्रिया में भी सही होते हैं। इनके द्वारा पाठ्यक्रम और अनुदेश के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। टायलर के अनुसार, पाठ्यक्रम मूल्यांकन शिक्षार्थी द्वारा प्राप्त परिणामों के साथ व्यवहार उद्देश्यों के रूप में प्रारंभिक अपेक्षाओं के मिलान की प्रक्रिया है। मूल्यांकन के दो कार्य हैं– सबसे पहले, मूल्यांकन छात्रों द्वारा शैक्षिक लक्ष्यों की उपलब्धि पर जानकारी प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। दूसरा, मूल्यांकन सीखने की प्रक्रिया की प्रभावशीलता को मापने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का समायोजन करने से–
   (क) इसका सीधा असर विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक कौशल विकसित करने में पड़ता है
   (ख) इसके द्वारा विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनने में भी सक्षम होते हैं
   (ग) छात्रों को अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार भविष्य में व्यवसाय चुनने में भी सहायता मिलती है
   (घ) उपर्युक्त सभी
6. रॉल्फ टायलर के पाठ्यक्रम मूल्यांकन मॉडल में कितने चरण हैं?
   (क) चार (ख) पांच
   (ग) सात (घ) नौ

4.5 व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिसके द्वारा किसी खास विषय या क्षेत्र में महारत हासिल की जाती है। इस प्रकार की शिक्षा मुख्यतः कौशल प्रशिक्षण पर आधारित होती है। इसमें विद्यार्थियों को विविध पाठ्यक्रमों जैसे– कम्प्यूटर, बैंकिंग, वित्त, पर्यटन, व्यापार आदि क्षेत्रों में कुशल बनाया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा की अवधारणा व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित होती है। किसी विषय से संबंधित कौशलों को सीखने के लिए किताबी ज्ञान के साथ साथ व्यावहारिक ज्ञान की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी किसी विशेष विषय में कुशलता एवं निपुणता हासिल करके भविष्य में जीविका कमाने के कई विकल्प ढूंढने में सक्षम हो सकते हैं। व्यावसायिक शिक्षा न केवल छात्रों को व्यवसाय चुनने एवं व्यवसाय संबंधित योग्यता प्राप्त कराने में सहायक है अपितु व्यावसायिक शिक्षा देश की कई प्रकार की आर्थिक समस्याओं जैसे– बेरोजगारी, निर्धनता, आर्थिक समानता, आदि के समाधान में

भी सहायक है। भारत में व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 के सुझावों द्वारा हुई। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में व्यावसायिक शिक्षा को मंजूरी दी गई।

4.5.1 भारत में व्यावसायिक शिक्षा

भारत में व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 के सुझावों द्वारा हुई। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में व्यावसायिक शिक्षा को मंजूरी दी गई।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 ने माध्यमिक शिक्षा स्तर पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के लिए सुविधाएं बढ़ाने की जरूरत को समझा और इसकी शिक्षा प्रदान करने की बात कही जो विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं और वास्तविक रोजगार के अवसरों के अनुरूप हो। कृषि, उद्योग, व्यापार और वाणिज्य, चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह प्रबंधन, कला और शिल्प आदि जैसे बड़ी संख्या में क्षेत्रों को कवर करने के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के लिए सुविधाओं को उपयुक्त रूप से विकसित किये जाने पर बल दिया गया। विज्ञान को शिक्षा और संस्कृति के साथ जोड़कर कार्य अनुभव को सामान्य शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाने पर जोर दिया गया जिसके द्वारा उद्योग, कृषि और व्यापार की जरूरतों को पूरा करने के लिए माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यवसायीकरण से जुड़े विषयों पर विशेष जोर दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और व्यावसायिक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में व्यावसायिक शिक्षा को कार्य अनुभव के साथ जोड़कर प्राथमिक स्तर से आरंभ करने की बात की गई। इसके द्वारा छात्रों में कार्य के प्रति एक सकारात्मक रवैया विकसित करने पर जोर दिया गया। माध्यमिक स्तर पर कार्य अनुभव के कार्यक्रमों के द्वारा छात्रों में गतिविधियों के माध्यम से हस्तकौशलों के प्रयोग के प्रति आत्मविश्वास विकसित करने पर बल दिया गया। माध्यमिक स्तर पर छात्रों द्वारा पूर्व में हस्त शौचालयों के लिए की गई गतिविधियों के आधार पर छात्रों को व्यावसायिक कार्यक्रम चुनने का विकल्प दिए जाने की सिफारिश की गई। इस स्तर पर बच्चों के स्कूल छोड़ने के कारणों को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक शिक्षा का प्रारूप इस प्रकार से तैयार करने पर बल दिया गया ताकि छात्र अपने भविष्य के लिए वांछित कौशल और क्षमता को विकसित कर सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और व्यावसायिक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व्यावसायिक शिक्षा के संबंध में छात्रों को माध्यमिक स्तर पर विषयों के चुनाव में विभिन्न विकल्प प्रदान करने की बात करती है। इन विषयों में शारीरिक शिक्षा, कला और हस्तकौशल तथा व्यावसायिक कौशलों से संबंधित विषयों को शामिल किए जाने की बात कही गई है। ऐसे विषयों को अन्य शैक्षिक विश्व विषयों से अलग न देखकर उन्हें सामान्य शिक्षा का ही एक अभिन्न हिस्सा माना जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कक्षा 6–8 स्तर पर ऐसे विषय पाठयक्रम में शामिल करने की अनुशंसा करती है जो छात्रों को खेल–खेल में हस्त कौशल का अनुभव प्रदान करे जैसे– बढ़ईगीरी, बिजली का काम, धातु का काम, बागवानी, मिट्टी के बर्तन बनाने आदि

टिप्पणी

का कार्य। छात्र स्थानीय व्यावसायिक विशेषज्ञों जैसे— बढ़ई, माली, कुम्हार, कलाकारों आदि के साथ भी कम से कम 10 दिन का कार्य सीखेंगे, ऑनलाइन माध्यम से व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी उपलब्ध कराए जाएंगे। कला, प्रश्नोत्तरी, खेल और व्यावसायिक शिल्प से जुड़ी विभिन्न प्रकार की संवर्धन गतिविधियों के लिए भी छात्रों को प्रोत्साहित किया जाएगा। बच्चों को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पर्यटन महत्व के स्थानों/स्मारकों का दौरा करने, स्थानीय कलाकारों और शिल्पकारों से मिलने तथा उनके गांव/तहसील/जिला/राज्य में उच्च शिक्षण संस्थानों का दौरा करने के माध्यम से स्कूल के बाहर की गतिविधियों के लिए आवधिक संसर्ग प्रदान किया जाएगा।

4.5.2 उदार शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा

अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन कॉलेज और विश्वविद्यालयों (AAC + U) के अनुसार उदार शिक्षा एक ऐसा दृष्टिकोण है जो व्यक्ति को जीवन में आने वाली जटिलता, विविधता और परिवर्तन से निपटने के लिए सशक्त बनाता है। यह सब छात्रों में सामाजिक जिम्मेवारी की भावना तथा ऐसे बौद्धिक कौशल विकसित करने का काम करती है जिसके द्वारा छात्र वास्तविक दुनिया में अपने ज्ञान और कौशल को प्रयोग में लाने में सक्षम होते हैं। मुख्यतया इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों को समाज के अभिन्न हिस्से के रूप में जीवन जीने के लिए तैयार करती है। इस प्रकार की शिक्षा छात्रों को एक जिम्मेवार नागरिक के तौर पर तैयार करती है।

उदारवादी शिक्षा छात्रों को सही और गलत में अंतर करने में सक्षम बनाती है तथा विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का विकास करती है। इस प्रकार का विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण छात्रों को अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों के लिए वैज्ञानिक कलात्मक तथा गुणात्मक समाधान ढूंढ़ने में भी सक्षम बनाती है। उदार शिक्षा, शिक्षा के प्रति बहु–अनुशासनात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है। उदार शिक्षा छात्रों को पाठ्यक्रम लेने के विविध विकल्प प्रदान करती है जो ज्ञान की कई धाराओं का ज्ञान प्रदान करते हैं। यह शिक्षा छात्रों को वर्तमान और भविष्य के वास्तविक विश्व परिदृश्यों में लागू करने में मदद करने वाले ज्ञान को जोड़ने और एकीकृत करने की क्षमताओं के साथ विकसित करती है। उदार शिक्षा छात्रों की बौद्धिक जिज्ञासा, एक महत्वपूर्ण विचार प्रक्रिया, आत्म प्रतिबिंब, नेतृत्व और टीम वर्क कौशल, प्रतिबद्धता और व्यावसायिकता की भावना तथा एक सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण के लिए संवेदनशीलता को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।

संक्षेप में, उदार शिक्षा निम्नलिखित को जागृत करती है—

- कई विषयों का व्यापक ज्ञान
- चुने हुए अनुशासन का गहन अध्ययन
- अंतर–अनुशासनात्मक शिक्षा
- सीखने के लिए अंतर दृष्टिकोण
- हस्तांतरणीय कौशल
- व्यावहारिक वास्तविक स्थितियों के लिए ज्ञान लागू करने की क्षमता
- विभिन्न मानसिक मॉडलों के माध्यम से समस्याओं को हल करना

टिप्पणी

- प्रासंगिक शिक्षा
- मन की स्वतंत्रता
- आजीवन सीखने

दूसरी और व्यावसायिक शिक्षा आमतौर पर "रोजगार उन्मुख" केंद्रित होती है। सामान्यतः शिक्षा को व्यवसाय के साथ जोड़ना ही व्यावसायिक शिक्षा कहलाती है परन्तु वास्तव में इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। व्यावसायिक शिक्षा छात्रों को व्यवसाय चुनने एवं व्यवसाय संबंधित योग्यता प्राप्त कराने का अवसर प्रदान करती है। व्यावसायिक शिक्षा का उदेश्य छात्रों को सही व्यवसाय के चुनाव द्वारा समाज में सम्मानपूर्वक रहने योग्य बनाना तथा छात्रों में ऐसे कौशल विकसित करना है जिससे कि छात्र भविष्य में जीविकोपार्जन के साधन ढूंढ़ सकें और एक व्यस्क के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें। व्यावसायिक शिक्षा के व्यापक अर्थ में राष्ट्र का विकास करना और समाज की भलाई के लिए सही दिशा प्रदान करना भी निहित है। इसका उद्देश्य छात्रों को सामाजिक कार्यों के प्रति संवेदनशील बनाना भी है। इसके द्वारा छात्रों को विद्यालयों में क्रियाशील रखा जाता है और इससे उनका शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है।

4.5.3 सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के संयोजन की संभावना

शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य में शैक्षिक ज्ञान के साथ–साथ कौशल विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर भारतीय संस्कृति उच्च शिक्षा के माध्यम से जीवित रखने हेतु विद्यार्थियों को परंपरागत हुनर और रोजगार के माध्यम से सशक्त बनाने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में 21वीं शताब्दी के कौशलों के विकास के साथ–साथ विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने की भी आवश्यकता है जिसके द्वारा विद्यार्थी सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सके। कार्य कौशलों से युक्त शिक्षा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, स्व जागरूकता, निर्णय लेने की क्षमता और उपलब्ध जानकारी का उचित प्रयोग करने में सक्षम है। भारत जैसे देश में जहां बेरोजगारी की समस्या एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी है ऐसी स्थिति में सामान्य शिक्षा के साथ यदि व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास के कार्यक्रमों को जोड़ा जाए तो एक सकारात्मक तरीके से समाज में व्याप्त समस्याओं का हल खोजा जा सकता है। सामान्य शिक्षा जहां एक ओर व्यक्ति में ज्ञान वर्धन और जीने की कला का नव संचार करती है वहीं व्यावसायिक शिक्षा कौशलों के माध्यम से छात्रों में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है। सामान्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी सभी पक्षों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपनी बौद्धिक क्षमताओं का निरंतर विकास करते हैं। व्यावसायिक शिक्षा में छात्र किसी विशेष विषय के संबंध में कार्य कौशल की कुशलता प्राप्त कर उस ज्ञान को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं। मूल रूप से सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा एक–दूसरे के विपरीत दिखाई देते हैं किंतु इन दोनों प्रकार की शिक्षा का मेल वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नया रूप प्रदान कर सकता है। मुख्य तौर पर देखा जाए तो वेबसाइट शिक्षा का अध्ययन करने से पूर्व छात्रों को एक स्तर तक सामान्य शिक्षा का ज्ञान होना आवश्यक है जो व्यावसायिक शिक्षा के लिए आधार का कार्य करता है। छात्रों की रुचि अभिरुचि क्षमताएं उनकी योग्यताएं सामान्य शिक्षा के

टिप्पणी

द्वारा ही पता चलती है और सही व्यवसाय कौशल के चुनाव में भी सहायक सिद्ध होती हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यावहारिकता की दृष्टि से सफल नहीं मानी जाती है क्योंकि छात्र बौद्धिक ज्ञान तो प्राप्त करते हैं किंतु उसे व्यावहारिक रूप से जीवन में उपयोग में लाने में असफल हो जाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए छात्रों को विभिन्न विषयों के चुनाव और कौशल सीखने पर बल देती है। शिक्षा नीति 2020 स्थानीय ज्ञान और परंपरागत कौशलों को सीखने के लिए समाज में उपलब्ध संसाधनों के इस्तेमाल की सिफारिश करती है।

12वीं पंचवर्षीय योजना 2012 से 2017 के अनुसार अन्य देशों की तुलना में भारत में काम करने वाले व्यक्ति जिनकी उम्र 19 से 24 साल के बीच में हैं उनमें से मात्र 5% ने ही व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण की थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यावसायिक शिक्षा को लेकर इस बात को स्पष्ट किया गया है कि 2025 तक लगभग 50% विद्यार्थियों को विद्यालय एवं उच्च शिक्षा के माध्यम से व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी तथा व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा से अलग नहीं रखा जाएगा। विद्यार्थियों में व्यावसायिक क्षमता शैक्षिक विषयों के विकास के साथ–साथ विकसित की जाएगी। अगले 10 सालों के लक्ष्य के तौर पर व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग माध्यमिक स्तर पर बनाने पर बल दिया जाएगा। इस शिक्षा नीति में माध्यमिक विद्यालयों का आईआईटी पॉलिटेक्निक संस्थान और स्थानीय उद्यमों के साथ सहयोग के द्वारा विद्यार्थियों को कौशल सीखने में मदद करने का प्रावधान भी सुझाया गया है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को एनजीओ और स्थानीय उद्योगों की सहायता से चलाए जाने की बात कही गई है। उच्च शिक्षण संस्थान लोक विद्या के लिए लघु सर्टिफिकेट कोर्स भी शुरू कर सकते हैं जिनके द्वारा विद्यार्थियों को स्थानीय कौशलों और कार्यों का अनुभव मिल सके।

अपनी प्रगति जांचिए

7. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा को कब मंजूरी दी गई?
   (क) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1970 में (ख) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1980 में
   (ग) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में (घ) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1987 में
8. उदार शिक्षा जाग्रत करती है–
   (क) कई विषयों का व्यापक ज्ञान (ख) हस्तांतरणीय कौशल
   (ग) आजीवन सीखने की कला (घ) उपर्युक्त सभी

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ग)

टिप्पणी

4. (घ)
5. (घ)
6. (क)
7. (ग)
8. (घ)

4.7 सारांश

भारत में शिक्षा प्रणाली को अधिक यथार्थवादी और उत्पादक बनाने और शिक्षा और उत्पादकता के बीच की कड़ी को मजबूत करने के लिए स्कूली शिक्षा के सभी चरणों में कार्य को शामिल करने की आवश्यकता महसूस की गई। कार्य शिक्षा के द्वारा छात्रों में कौशल और मूल्यों के विकास की कल्पना को सार्थक रूप देने के लिए और छात्रों की भविष्य में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और उत्पादकता में सम्बन्ध स्थापित करने पर जोर दिया गया। उत्पादक कार्य शिक्षा सामुदायिक सेवा और सामाजिक कार्यों के माध्यम से देश के आर्थिक विकास को तेज करने में भी सहायक है।

भारत में शिक्षा को उत्पादक गतिविधि के माध्यम से कार्य शिक्षा के साथ जोड़ने की परिकल्पना राष्ट्रीय शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964–66 की गई। कमीशन द्वारा इस बात की सिफारिश की गई कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय विकास हेतु उत्पादकता के साथ जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। अतः भारतीय शिक्षा के ढांचे में कार्य अनुभव की अवधारणा को जोड़ा गया। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के अनुसार उस समय भारत में शिक्षा कुछ वर्ग विशेष के लोगों तक ही पहुंच में थी। उसे जनमानस तक पहुंचाने के लिए बहुत अधिक संसाधनों की आवश्यकता थी ऐसे में आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई कि यदि शिक्षा को उत्पादकता के साथ जोड़ा जाए तो राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी के कई विकल्प खुलेंगे जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा मिलेगा और अंततः संसाधनों की कमी भी कम या खत्म की जा सकेगी।

वर्तमान समय में संयोजकता और संज्ञानात्मक प्रौद्योगिकी के विकास के कारण काम की प्रकृति बदल रही है। संज्ञानात्मक प्रौद्योगिकियों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता में एक निरंतर प्रगति के कारण समाज की आवशयकताओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।विश्व विकास रिपोर्ट 2019 के अनुसार वर्तमान समय में कार्य की प्रकृति के बदलने का कारण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर विकास को माना जा सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि तकनीकी प्रगति से कार्य की प्रकृति में निरंतर बदलाव आता रहता है और उसी के अनुसार बाजार का विस्तार होता है और समाज विकसित होते हैं। प्रौद्योगिकी के विकास से कार्य करने के नए अवसर पैदा होते हैं तथा नए रोजगार का सृजन होता है। इसके साथ–साथ उत्पादकता बढ़ाने और प्रभावशाली सामाजिक सेवाएं प्रदान करने का मार्ग भी प्रशस्त होता है।

महात्मा गांधी विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने के पक्ष में थे, जिससे उनमें भारतीय संस्कार विकसित हो सकें तथा किसी भी प्रकार के काम के प्रति विद्यार्थी सम्मानपूर्वक भाव रखें। महात्मा गांधी ने विद्यार्थियों में हस्त कौशल विकसित करने को बढ़ावा दिया,

जिससे कि शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत विद्यार्थी सिर्फ नौकरी की ही तरफ न भागें अपितु स्वरोजगार के लिए अपने आसपास के संसाधनों के प्रयोग से शुरुआत कर सकें। गांधीजी ने शिक्षा को लघु उद्योग के साथ जोड़कर विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए जाने वाली वस्तुओं के विक्रय तथा मिलने वाली आमदनी को विद्यालय के विकास में लगाने का सुझाव दिया। भारत में शिक्षा को उत्पादक कार्य के साथ जोड़ने और विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ–साथ जीविका उपार्जन के भी कौशल विकसित करने का विचार महात्मा गांधी के द्वारा दी गई बेसिक शिक्षा की अवधारणा में देखने को मिलता है। बेसिक शिक्षा का सिद्धांत ज्ञान को कार्य से अलग होकर नहीं देखता है और इसी के आधार पर महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा की अवधारणा को सबके समक्ष रखा। बेसिक शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को कुशल और कार्य निपुण बनाने के लिए गतिविधि केंद्रित शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया। गांधीजी शिक्षा के द्वारा आत्मनिर्भर समुदायों का निर्माण करना चाहते थे जिससे कि विद्यार्थी आगे चलकर मेहनती, स्वाभिमानी और उदार बन सकें। बेसिक शिक्षा के माध्यम से स्थानीय शिल्प को शिक्षा के साथ जोड़ा गया जिससे कि विद्यार्थियों का सम्पूर्ण विकास संभव हो सके।

महात्मा गांधी का शिक्षा के साथ शिल्प कार्य को जोड़ने का तात्पर्य सिर्फ उत्पादकता से न होकर शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों के समाधान के साथ जोड़कर देखा गया। मनोवैज्ञानिक तौर पर भी इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि यह विद्यार्थियों को बौद्धिक और व्यावहारिक तत्वों के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है। विद्यार्थी जो कुछ भी बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करते हैं उसको यदि रचनात्मकता के साथ अपनी अभिव्यक्ति का उपयोग करके एक उत्पाद का रूप दे दें तो इस प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान श्रम की गरिमा के साथ–साथ विद्यार्थियों को आने वाले जीवन में जीविका कमाने के साधन ढूंढने में भी सहायक होगा।

पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का समायोजन छात्र–छात्राओं में काम के प्रति उचित दृष्टिकोण बनाने तथा कार्य मूल्यों को और कार्य कौशल विकसित करने में अत्यंत सहायक है पाठ्यक्रम में यदि छात्रों के दैनिक जीवन से संबंधित कार्य शिक्षा को सम्मिलित किया जाए तो इसका सीधा असर विद्यार्थियों में विश्लेषणात्मक कौशल विकसित करने में पड़ता है इसके द्वारा न केवल समाज की उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है अपितु छात्र आत्मनिर्भर बनने में भी सक्षम होते हैं पाठ्यक्रम में कार्य का महत्व इसलिए भी अधिक हो जाता है क्योंकि कार्य सम्मिलित होने के कारण छात्रों को अपने रुचि और योग्यता के अनुसार भविष्य में व्यवसाय चुनने में भी मदद मिलती है इस प्रकार कार्य शिक्षा छात्रों को एक सफल व्यस्त जीवन जीने के लिए प्रेरणा देती है।

शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य में शैक्षिक ज्ञान के साथ–साथ कौशल विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर भारतीय संस्कृति उच्च शिक्षा के माध्यम से जीवित रखने हेतु विद्यार्थियों को परंपरागत हुनर और रोजगार के माध्यम से सशक्त बनाने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में 21वीं शताब्दी के कौशलों के विकास के साथ–साथ विद्यार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने की भी आवश्यकता है जिसके द्वारा विद्यार्थी सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सके। कार्य कौशलों से युक्त शिक्षा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, स्व जागरूकता, निर्णय

टिप्पणी

लेने की क्षमता और उपलब्ध जानकारी का उचित प्रयोग करने में सक्षम है। भारत जैसे देश में जहां बेरोजगारी की समस्या एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी है ऐसी स्थिति में सामान्य शिक्षा के साथ यदि व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास के कार्यक्रमों को जोड़ा जाए तो एक सकारात्मक तरीके से समाज में व्याप्त समस्याओं का हल खोजा जा सकता है। सामान्य शिक्षा जहां एक ओर व्यक्ति में ज्ञान वर्धन और जीने की कला का नव संचार करती है वहीं व्यावसायिक शिक्षा कौशलों के माध्यम से छात्रों में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **अनुसंधान** : खोज।
- **तात्कालिक** : उसी समय का।
- **उन्मुख** : किसी विशेष दिशा की ओर जाता हुआ।
- **समक्ष** : सामने।
- **कार्यान्वयन** : किसी निश्चय को कार्यरूप में बदलना।
- **अभीष्ट** : रुचिकर।
- **निर्दिष्ट** : बतलाया हुआ।
- **अवांछित** : जिसकी इच्छा न की गई हो।
- **परिप्रेक्ष्य** : देखने अथवा सोचने की दृष्टि विशेष।
- **अनुशंसा** : सिफारिश

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. एक उत्पादक गतिविधि के रूप में कार्य शिक्षा का महत्व बताइए।
2. वर्तमान समय में कार्य की बदलती प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
3. पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का समायोजन विद्यार्थियों के लिए किस प्रकार से सहायक सिद्ध होता है?
4. व्यावसायिक शिक्षा से क्या तात्पर्य है?
5. भारत में व्यावसायिक शिक्षा का आरंभ किस प्रकार हुआ?
6. सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा के संयोजन का महत्व प्रतिपादित कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. महात्मा गांधी की उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा संबंधी धारणा की विवेचना कीजिए।
2. पाठ्यक्रम में कार्य शिक्षा का अभाव होने पर क्या परिणाम हो सकते हैं? विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।

3. टिप्पणी लिखिए–
   (क) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और व्यावसायिक शिक्षा
   (ख) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और व्यावसायिक शिक्षा
   (ग) उदार शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Aggarwal, J.C. 2010. *Theory and Principles of Education* (13th edition). Noida: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Sharma, G.R. 2003. *Trends in Contemporary Indian Philosophy of Education: A Critical Evaluation.* New Delhi: Atlantic Publishers & Dist.
- Samuel, Ravi. 2015. *Education in Emerging India*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd.
- Sharma, A.P. 2010. *Indian & Western Educational Philosophy*. New Delhi: Pustak Mahal.
- Aggarwal, J.C. 2005. *Teacher and Education in a Developing Society* (4th edition). New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Dhawan, M.L. 2005. *Philosophy of Education*. New Delhi: Gyan Books Pvt. Ltd.
- Brubacher, J. S. 1969. *Modern Philosophy of Education*. New Delhi: McGraw Hill.
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- अदिर कोहेन (1983), 'एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ मार्टिन बूबर', एसोशिएटिड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
- एन.आर. स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी (2008), 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- रमन बिहारी लाल (2007), 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार' रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- दास, आर.सी. (1984), 'करिकुलम एंड इवैल्यूएशन', एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1975), 'दस साल स्कूल के लिए पाठ्यक्रम – एक फ्रेमवर्क', नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1986), राष्ट्रीय एकता के दिशा निर्देशों के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या– एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
- एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक फ्रेमवर्क (संशोधित संस्करण), एनसीईआरटी।
- एनसीईआरटी (2000), स्कूल शिक्षा, नई दिल्ली के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा।

टिप्पणी

टिप्पणी